बैंगलोर में आपके भाषणों का प्रभाव समाज के लोगों पर विशेष रूप से पडा। वहां के लोगों ने प्रभावित होकर आपके प्रवचनों को हमेशा के लिए स्थायी रूप देने का दृढ़ सकल्प कर लिया। उक्त कार्य को मूर्त रूप देने के लिए अजमेर निवासी श्री धर्मपालजी मेहता को अजमेर से आमन्त्रित किया गया। वहां उन्होंने पांच मास पर्यन्त मुनि श्री की सेवा मे रहकर दैनिक प्रवचनों को संकेत लिपि मे अक्षरश लिपिबद्ध किया।

परन्तु लिपिबद्ध कर लेने में ही समाज का कल्याण निहित नहीं था। उक्त प्रवचनों का सम्पादन तथा प्रकाशन करवा कर ही समाज की भावना को सफलीभूत किया जा सकता था। अतएव समाज के उत्साही बन्धुओं ने इस कार्य मे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

फल स्वरूप प० श्री धर्मपालजी मेहता के द्वारा उक्त प्रवचन सपादित होकर श्री दिवाकर दिव्य-ज्योति कार्यालय, ब्यावर से यह "हीरक-प्रवचन" के नाम से पाचवा भाग पाठकों के सामने प्रकाश में लाया जा रहा है। आशा है पाठकगण 'हीरक-प्रवचन' के पांचवें भाग में प्रकाशित कतिपय प्रवचनों को पढ कर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करेंगे।

हम पं० मुनि श्री हीरालालजी म० के सदैव आभारी हैं जिन्होंने अधकार मे पड़ी हुई समाज की, अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा आखें खोल दी हैं। वास्तव मे आप जैसी महान विभूति ही जिनके हृदय में समाजोत्थान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है, समाज का कल्याण करने मे समर्थ हो सकती है। हमे आशा है कि जैन, अजैन सभी लोग इस भाग को पढ कर अपने जीवन को अधकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ला सकेंगे।

भवदीय—
इन्द्र मुनि

# :: दानदाताओं की शुभ नामावली ::

—:०:—

श्री मज्जैनाचार्य शांतिमूर्ति स्वर्गीय श्री खूबचन्दजी म० के गुरु भ्राता स्व० व्याक्ची प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म० के सुशिष्य श्रमण सघीय जैनागम तत्त्व विशारद प० रत्न मुनि श्री हीरालालजी का स० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर केन्टोनमेन्ट में श्री वर्ध० स्था० जैन श्रावक सघ की आग्रह भरी विनती से मोरचरी तथा सर्पींगसरोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित एव हृदयस्पर्शी होते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सर्व साधारण के सदुपयोग में लाने के लिए श्रीमान् धर्मपालजी मेहता द्वारा सकेत लिपि लिखवाए गए और उन व्याख्यानों का सपादन हो जाने पर 'हीरक प्रवचनादि' पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाने के लिए सावत्सरिक महापर्व के समारोह की खुशी में निम्नलिखित उदार महानुभावों एव महिलाओं ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए सहयोग प्रदान किया:—

## :: मानद् स्तम्भ ::

१११११) श्रीमन् सेठ मंगलजी भोजराजजी मेहता (पालनपुर निवासी) C/o विक्टरी टेडर्स रग्गापिल्लाई स्ट्रीट पांडीचेरी

१००१) श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूकड़, चिकपेट बैंगलोर २

## :: माननीय सहायक ::

४०६) श्री महिला समाज की ओर से बैंगलोर

४०१) श्री सेठ जसराजजी भवरलालजी सियाल चिकपेट ,, २

४००) ,, मंगलजी भाई मणीलाल भाई मेहता (पालनपुर निवासी) C/o ओवरसीज ट्रेडर्स २२ डूप्लेक्स स्ट्रीट पांडीचेरी

४००) श्री सेठ हरिलालजी लक्ष्मीचन्दजी भाई मोदी (पालनपुर निवासी) C/o एच०एल० मोदी वेशाल स्ट्रीट पांडीचेरी

४००) " शान्तिलालजी बछराज भाई मेहता (पालनपुरनिवासी) C/o एस. बछराज न० ६ लबोरहनी स्ट्रीट पांडीचेरी

३००) " गुप्तदान (एक बहिन की तरफ से) मामूली पैंठ बैंगलोर २

२५१) श्रीमती मंजुला बहिन C/o एम० एस० मेहता, बौरटन शौप महात्मा गांधी रोड़, बैंगलोर १

२५१) श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूनिया, मोरचरी बाजार, बैंगलोर १

२०२) " सेठ मगलचन्दजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

२०१) श्रीमती ताराबाई कालीदासजी मेहता C/o सेठ रजनीकान्तजी कालीदासजी मेहता २११ लिंगीचेट्टी स्ट्रीट मद्रास १

२००) श्रीमान् सेठ जशवंतसिंहजी सग्रामसिंहजी मेहता (जयपुर निवासी) C/o इम्पोर्ट एक्सपोर्ट कोरपोरेनश पोस्ट बोक्स न० २८ कोसेकड़े स्ट्रीट पांडीचेरी

१५१) " गुप्त दान (एक सज्जन की ओर से) हलसूर

१५१) " केसरीमलजी अमोलकचन्दजी आछा, कांजीवरम

१३१) " घेवरचन्दजी जसराजजी गुलेछा, रंग स्वामी टेम्पल स्ट्रीट, बैंगलोर २

१२१) " जुगराजजी खींवराजजी बरमेचा मद्रास

१०२) " जसराजजी रांका (राखी वाले) C/o सेठ रतनचंदजी रांका ३८ वीरप्पन स्ट्रीट मद्रास

१०१) श्री सेठ किशनलालजी फूलचन्दजी लूनिया,
दीवान सुरापालेन, बैंगलोर २

१०१) " मिश्रीलालजी पारसमलजी कातरेला,
मामूली पैंठ बैंगलोर २

१०१) " मगनभाई गुजराती, गांधी नगर बैंगलोर २

१०१) " गुलाबचन्दजी भंवरलालजी सकलेचा,
मलेश्वरम बैंगलोर २

१०१) " भभूतमलजी देवड़ा, बेनी मिल्स रोड़ बैंगलोर २

१०१) " पन्नालालजी रतनचन्दजी कांकरिया,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " उदयराजजी भीकमचन्दजी खींवसरा,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " पुखराजजी मूथा, सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " गणेशमलजी लोढ़ा सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " नेमीचन्दजी चांदमलजी सियाल,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " भवरलालजी घीसूलालजी समदड़िया,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) " हीराचन्दजी फतहराजजी कटारिया,
केवेलरी रोड़ बैंगलोर १

१०१) " मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा,
मारवाड़ी बाजार बैंगलोर १

१०१) " दुलराजजी भंवरलालजी बोहरा, अलसूर बैंगलोर ८

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्दजी लोढ़ा तिमिया रोड़ बैंगलोर ८

१०१) " जवानमलजी भवरलालजी लोढ़ा " बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ मिट्ठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड
तिमिया रोड़ बैंगलोर १

१०१) " मोतीलालजी छाजेड़ "

१०१) " भंवरलालजी बांठिया "

१०१) " जेवतराजजी भवरलालजी लूनिया "
भारतीनगर बैंगलोर १

१०१) " लक्ष्मीचन्द C/o मोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी
नं० ३२ D. अरुनाचलम मुदलियार स्ट्रीट बैंगलोर १

१०१) " पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नि श्रीमती गजरा बाई
चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) " जी० नेमीचन्दजी सकलेचा
ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंगलोर १

१०१) " लखमीचन्दजी खारीवाल स्वस्तिक इलेक्ट्रिक
हनुमान बिल्डिंग चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) श्री गुप्तदान ( एक सज्जन की ओर से ) शूले बाजार बैंग०

१०१) " रामलालजी माडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) " पुखराजजी मांडोत ब्लौक पल्ली " १

१०१) " पुखराजजी पोरवाल,
चिक बाजार रोड शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ अम्बूलालजी धर्मराजजी रांका,
एलगुण्ड पालियम बैंगलोर १

१०१) " चम्पालालजी रांका, ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंगलोर १

१०१) " केसरीमलजी मिश्रीमलजी गोठी,
५५ काशीमोर रायपुरम मद्रास १३

१०१) श्री सेठ जुगराजजी पुखराजजी खीवसरा,
सजोड़े अट्ठाई के उपलक्ष में
६/५८ बरकीट रोड़ टी नगर मद्रास १७
१०१) " कपूरचन्दजी एन्ड सुतरिया,
६८ मिन्ट स्ट्रीट साऊकार पेट मद्रास १
१०१) उगमबाई की तपस्या के उपलक्ष मे
C/o जी० रघुनाथमलजी ४१६ मेन बाजार वैल्लुर
१०१) श्री सेठ भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा,
नगरथ पैठ बैंगलोर २
१०१) " शान्तिलालजी छोटालालजी, एवेन्यु रोड बैंगलोर २
१०१) " हिम्मतमलजी माणकचन्दजी छाजेड,
अलसूर बाजार बैंगलोर
१०१) " घीसूलालजी मोहनलालजी सेठिया, अशोका रोड़ मैसूर
१०१) " मेघराजजी गदिया, अशोका रोड़ मैसूर
१०१) " गुलाबचन्द कन्हैयालालजी गदिया, आरकोतम् मद्रास
१०१) श्रीमती सरस्वती बहिन C/o मणिलाल चतुरभाई
नवरगपुरा एलोस ब्रिज बस स्टेन्ड के सामने, अहमदाबाद
१०१) श्री सेठ मिश्रीलालजी लूकड त्रिवल्लूर मद्रास
१०१) " मानमलजी भवरलालजी छाजेड़ "
पलुमर रोड़ उरगम के० जी० एफ०
१०१) " पुखराजजी अनराजजी कटारिया आरकोनम
१०१) श्रीमती अ०सौ०कंचनगोरी धर्मपत्नी श्री नवलचन्दजी डोसी
C/o बोम्बे आपटीक्लब १७ सी ब्रोडवे मद्रास १
१०१) श्री सेठ हेमराजजी लालचन्दजी सीघवी
नम्बर ११ बड़ा बाजार रायपेट मद्रास १४

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्द भंवरलाल विनायकीया,
१D२/१३६ माऊन्ट रोड़ थाऊजेन्ट लाईट मद्रास ६

१०१) ,, वरजीवन पी० सेठ, ठी० सुलतान बाजार
इन्द्र बाग हैदराबाद ( आंध्र प्रदेश )

१०१) ,, खिवराजजी चोरड़िया, नं० ३६ जनरल मुथैय्या स्ट्रीट
साहूकार पेठ मद्रास नं०१

१०१) श्रीमान् सेठ जवतमलजी मोहनलालजी चोरड़िया न० ७
बजार रोड़ मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, भाणजी भगवानदासजी ६४ मिन्ट स्ट्रीट जी०पी०ओ०
बोक्स नम्बर २८१ साहुकार पेट मद्रास १

१०१) ,, शम्भुमलजी मदनलालजी वैद्य नं० ८ बजार रोड़
मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, शम्भुमलजी माणकचन्दजी चोरड़िया न० १५ बजार
रोड़ मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, भिकमचन्दजी सुराणा न० ३३ पी०पी० वी० कोयल
स्ट्रीट मैलापुर मद्रास ४

१०१) ,, एच० सूरजमलजी जैन नं० ६७/१८ उसमान रोड़
टी नगर मद्रास १७

१०१) ,, गुलाबचन्दजी घीसुलालजी मरलेचा बाजार रोड़
पोल्लावरम

१०१) ,, सोजत रोड़ निवासी गणेशमलजी राजमलजी मरलेचा
रेडहिल्स मद्रास

१०१) श्रीमती चम्पाबाई और सामर बाई की ओर से C/o श्रीमान्
सेठ जुगराजजी पारसमलजी लोढ़ा २६ बजार रोड़
सेदा पेठ मद्रास १५

१००) ,, मनीलालजी एन्ड सन्स १७२ नेताजीबोस रोड़ मद्रास १

१०१) श्री सेठ एस० रतनचन्दजी चोरड़िया ५ रामाजियम आयर स्ट्रीट इलीफैन्ड गेट मद्रास १

१०१) „ एम० जेवतराजजी खिवेसरा नागलापुरम (तालुका) सतीवेड (जिला) चितुर

१०१) „ सी० चान्दमलजी टिन्डीवरम

१०१) „ गुलाबचन्दजी घीसुलालजी मरलेचा ४६ बाजार रोड पल्लावरम

१०१) „ दीपचन्दजी पारसमलजी मरलेचा चगलपेठ

१०१) „ बकतावरमलजी मिश्रीमलजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) „ गनेशमलजी जवन्तराजजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) „ सुजानमजी बोहरा की धर्मपत्नी शान्तिकवर के सजोड़े त्याग के उपलक्ष में C/o सेठ सुजानमलजी बोहरा गांव सियाली (जिला) तन्जावर

१०१) „ जशराजजी सिंघवी की धर्मपत्नी सायर बाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ जशराजजी देवराजजी सिंघवी गाव वलवानूर

१०१) „ विजयराजजी नेमीचन्दजी बोहरा „ „

१०१) „ प्रेमराजजी मह्यावीचन्दजी भडारी „ „

१०१) „ आईदानजी गोलेछा की धर्मपत्नी गोराबाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्यव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ आईदानजी अमरचन्दजी गोलेछा जवेलर्स विल्लूपुरम

१०१) „ चुन्नीलालजी नाहर के सजोड़े शीलव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o चुन्नीलालजी धरमीचन्दजी नाहर गाव अरगडनल्लूर (स्टेशन) तिरकोम्ल्लूर

१०१) श्री सेठ एच० चन्दनमलजी एण्ड को० नम्बर ६७ नयनापा-
नायक स्ट्रीट मद्रास ३

१०१) " एस बनेचन्दजी बीजराजजी भटेवड़ा नम्बर ४२४ मेन
बाजार वैलुर

१०१) " एन० गेवरचन्दजी सोवनराजजी भटेवड़ा नम्बर ४११
मेन बाजार वैलुर

१०१) " नेमीचंदजी ज्ञानचदजी गुलेछा न० ७५ " "

१००) " बाबूलालजी केशवलालजी शाह ( पालनपुर निवासी )
C/o इस्टर्न ट्रेडर्स सेन्ट थरेस स्ट्रीट पांडीचेरी

१००) " डायालाल मणीलाल शाह ( पालनपुर निवासी ) C/o
जेम्स एण्ड कम्पनी रंगापिल्लाई स्ट्रीट पाडीचेरी

१०१) " कान्तिलाल लालजी भाई भसाली (पालनपुर निवासी)
C/o चेरी ट्रेडर्स दी त्यागमुदली स्ट्रीट पाडीचेरी

१०१) " नन्दलालजी कोठिया C/o सेठ चीरजीलालजी महावीर
प्रसादजी जैन भरतपुर (राजस्थान)

११) " रसिकलालजी अमृतलालजी पारिख (पालनपुर निवासी)
C/o सेन्ट थैरस स्ट्रीटलेन पाडीचेरी

११) " नानालालजी फोजाभाई कोठारी ( पालनपुर निवासी )
C/o एन० एफ कोठारी १५/१२ सेन्ट थेरेस स्ट्रीटलेन
पाडीचेरी

११) " प्रवीणभाई चम्पकलालजी मेहता (पालनपुर निव
C/o जेम्स अण्ड कम्पनी रंगापिल्लाई स्ट्रीट पाडी

११) " बाबूलालजी दलछाचन्दजी शाह ( पालनपुर निवास
C/o एस. बछराजजी न ६ लब्रोरद्दनी स्ट्रीट पाडीचे

मीन
रोड
न १५
स १

११) श्री सेठ वैद्य केसरीमलजी भसाली ( पालनपुर निवासी )
C/o श्री अरविंद आश्रम पाडीचेरी

११) „ मनसुखलालजी पी० बोरा ( कच्छ निवासी ) C/o
शक्ति स्टोर्स पाडीचेरी

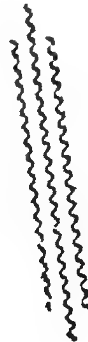
(११) „ प्राणलालजी देवराजजी डोशी न० ५० रंगापिल्लाई
स्ट्रीट पाडीचेरी



# :: विषयानुक्रमणिका ::







# बिना विचारे कार्य करने का दुष्परिणाम



*श्च्योतन्मदाविलविलोल कपोल मूल,*
*मत्तभ्रमद्भ्रमर नाद विवृद्ध कोपम् ।*
*ऐरावता भमि भमुद्र तमाप तं तं,*
*दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥*



भाइयो ! इस जगतीतल पर ऐसे भी अनेक लोग हैं जो किसी कार्य का प्रारभ करने से पहिले उसका अंजाम नहीं सोचते । वे बिना विचारे ही कार्य की शुरुआत कर डालते है। परन्तु अंत मे जब उसका बुरा नतीजा उनके सामने आता है तब वे सिर धुनने लगते है और पश्चाताप करने लगते हैं। यदि वे किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पहिले उसके परिणाम के विषय में भी ठडे दिल से सोच लेते तो उन्हें अन मे पश्चाताप करने के बजाय अजहद खुशी होती। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते है कि ऐ मानव ! तू बुद्धिशाली प्राणी है। तू हिताहित का भान रखता है। अतएव किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसके परिणाम के विषय मे भी सोच लिया कर। ऐसा करने से तेरा परिश्रम भी व्यर्थ नहीं जाने पाएगा और कार्य सम्पूर्ण होने पर तुझे अपनी सफलता पर प्रसन्नता भी होगी।

परन्तु मनुष्य इतना जल्दबाज है कि वह परिणाम को सोचे बिना ही किसी कार्य को प्रारम्भ कर डालता है। वह सोचता है कि यदि मैंने कार्य को शीघ्र प्रारम्भ नहीं किया तो उसके लाभ से वंचित रह जाऊँगा। परन्तु परिणाम यह होता है कि उसकी जल्दबाजी और लोभ के कारण वह अपने कार्य मे असफल हो जाता है। उसका सारा श्रम, समय और द्रव्य भी बेकार चला जाता है। तो जरा सी भूल के कारण यानि लाभ अलाभ का विचार नहीं करने के कारण उसे बहुत समय के लिए पछताना ही शेष रह जाता है।

फर्ज कीजिए, आपको कोई नया भवन निर्माण कराना है नया बिजनिस प्रारम्भ करना है या इसी प्रकार कोई नया कार्य प्रारम्भ करना है तो आपका परम कर्त्तव्य है कि आप सारी स्कीम पर पूर्ण रूप से शुरु से अंत तक स्वयं भी विचार कर लें और दूसरे अनुभवी व्यक्तियों से भी इस विषय मे परामर्श कर ले। इस प्रकार सोच-विचार कर आप जिस शुभ कार्य को प्रारम्भ करेंगे तो उसमे आपको अवश्यमेव सफलता प्राप्त हो जायेगी। परन्तु इसके विपरीत यदि आप विना विचार किए और परामर्श लिए ही कार्य क्षेत्र में कूद पड़ेंगे तो सफलता के बदले पराजय, निराशा, मनस्ताप और समय श्रम तथा धन का ह्रास ही पायेंगे। इससे आपको उम्र भर पश्चाताप करना पडेगा और भविष्य मे उन्नति मार्ग मे बाधा आजायेगी। इस लिए आप यदि अपने जीवन को सदैव उन्नत दशा मे देखना चाहते हैं तो आपको प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उसके हिताहित परिणाम के विषय में भी अच्छी तरह जानकारी कर लेनी चाहिए।

तो मैं समझता हूँ कि आप लोग भी जिस कार्य को प्रारम्भ करेंगे उसके हानि और लाभ दोनों पहलुओं पर पूर्णतया विचार करके ही कार्यक्षेत्र मे अवतीर्ण होंगे। यदि इस दृष्टिकोण से आप

अपना कार्य करेंगे तो इस ससार मे आप धन, यश और आत्म-सन्तोष प्राप्त करते हुए जीवन मे उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहेंगे।

श्रीमद् भक्तामर स्तोत्र के उक्त अडतीसवे श्लोक में दूरदर्शी भगवान् ऋषभदेव की प्रशसा करते हुए आचार्य मानतु ग ने कहा है कि हे नाथ! झरते हुए मद से जिसके गण्ड स्थल मलिन तथा चचल हो रहे है और उन पर उन्मत्त होकर भ्रमण करते हुए भौंरे अपने शब्दों से जिसका क्रोध बढ़ा रहे हैं ऐसे ऐरावत हाथी के समान आकार वाले, निरकुश तथा ऊपर आक्रमण करने वाले हाथी को देख कर आश्चर्य मे रहने वाले पुरुषों को भय नहीं रहता। अर्थात् अत्यन्त उच्छृङ्खल हाथी को देख कर भी आपके भक्त जन भयभीत नहीं होते।

भाई! उक्त श्लोक मे आचार्य श्री के कहने का यही आशय है कि भगवान के नाम में वड़ी भारी शक्ति रही हुई है। जैसे कोई पथिक अपने गांव से निकल कर किसी दूसरे गाव को जा रहा है। रास्ते मे सामने से आता हुआ कोई उन्मत्त हाथी, जिसके गड स्थल से मद चू रहा हो और भ्रमरों की टोलियां भी उन्मत्त होकर उस मद को ग्रहण करने के लिए अपने गु जारव से उसके क्रोध को वढ़ा रहे हों तो ऐसी परिस्थिति मे वह स्वच्छन्द बनकर और अकुश की भी परवाह किए विना, उस राहगीर को ही अपने क्रोध का शिकार बनाना चाहता हो, ऐसे समय में यदि वह पथिक भगवान ऋषभदेव को सच्चे हृदय से स्मरण करता है और "ओम् उसभ ओम् उसभ ओम् उसभ" नामोच्चारण कर लेता है तो वह उन्मत्त हाथी भी उसके सामने शान्तभाव से खडा हो जाता है। उस हाथी का मद उतर जाता है और वह भयभीत वना हुआ पुरुष निर्भय वन कर अपने गन्तव्य स्थान पर सकुशल पहुँच जाता है। कहिए! भगवान के नाम स्मरण मे भी कितनी अलौकिक शक्ति भरी हुई है।

सज्जनों ! ससार मे हाथी भी बड़ा बलवान और डील डौल वाला जानवर है। मैंने जयपुर मे दो चातुर्मास किए हैं। सवत् दो हजार सात की साल जब मैं वहां गया था तो उस समय वहा महाराजा का एक बड़ा पीलखाना भी था जिसमे बहुत से हाथी रहते थे। एक समय की बात है कि इत्तिफाक से एक हाथी बिगड गया अर्थात् उन्मत्त हो गया। यद्यपि वह बडी बडी साकलों से बधा हुआ होने के बावजूद भी उन्हें तोड़ डालने को प्रयत्नशील था। महावत लोग उसे शान्त करने के लिए उसके शरीर पर जगह जगह अकुश और भालों की तीखी नोंके चुभो रहे थे परन्तु वह किसी को कुछ परवाह किए बिना अपनी मस्ती में झूम रहा था। उसके शरीर से जगह जगह खून निकलने लगा था परन्तु फिर भी वह ठिकाने नहीं आ रहा था। उसकी उन्मत्त दशा को देखने के लिए कम से कम एक लाख आदमी इकट्ठे हो चुके थे। इस प्रकार आठ दिन तक वह अपनी पूर्ववत् दशा मे ही झूमता रहा। परन्तु ऐसा उन्मत्त हाथी भी भगवान का नाम स्मरण करने से शान्त हो जाता है। तो भगवान के नाम में भी इस प्रकार की अद्भुत शक्ति विद्यमान है।

मुझे एक और भी आश्चर्य जनक घटना स्मृति में आरही है। जब सवत् २००२ की साल ब्यावर में पूज्य खूबचन्दजी म० का स्वर्गवास हुआ तो स्थानीय समाज के लोगों ने आपस में विचार किया कि हमेशा तो उछाल ऊँट पर से होती रही है परन्तु इस बार हाथी पर से उछाल करनी चाहिए क्योंकि इस वक्त हाथी भी शहर मे आया हुआ है अत. उसे लाने का प्रयत्न करना चाहिए। उक्त प्रस्ताव सर्वानुमति से पास होगया। उस समय दूर-दूर से लोग पूज्य श्री के दाह सस्कार मे सम्मिलित होने के लिए आए हुए थे। तो समाज के पांच-दस प्रतिष्ठित व्यक्ति उक्त हाथी को लाने के लिए महन्तजी के पास पहुँचे। उन लोगों ने महन्तजी से कहा कि हमारे आचार्य श्री

का स्वर्गवास हो गया है अतएव उछाल करने के लिए आपसे हाथी की माग करने आए हैं। उन लोगों की बात सुन कर महन्तजी ने कहा– भाइयों! आपका कहना यथार्थ है और हाथी भी तैयार है परन्तु यह हाथी कुछ दिनों से बिगड़ा हुआ है। इसे अभी-अभी बदनौर के पहाड़ों से बड़ी मुश्किल से लेकर आए हैं। इसलिए मुझे अंदेशा है कि जुलूस मे जहा हजारों की सख्या में लोग इकट्ठे होंगे, कहीं वापिस बिगड़ कर यह कुछ नुकसान नहीं कर बैठे। फिर भी आप ले जा सकते हैं। परन्तु हम किसी भी तरह इसके लिए जिम्मेवार नहीं हैं।

तब लोगों ने कहा–महन्तजी! आप पर इसकी कोई जिम्मेवरी नहीं होगी। धर्म के प्रताप से सब कुछ मौके पर ठीक हो जायेगा। इस प्रकार वे लोग महन्तजी को विश्वास दिला कर हाथी को अपने साथ ले आए। और उस पर से हजारों रुपयों की उछाल की गई। उस हाथी के चारों तरफ हजारों आदमियों की भीड़ होने पर और जयनाद-भजन आदि का शोरगुल होने पर भी वह इतना सीधा और शान्त प्रकृति का हो गया कि उसने तनिक सी भी गडबड़ नहीं की। यहां तक कि उसके नीचे से बच्चे भी निकल गए परन्तु उसने किसी को भी नुकसान नहीं पहुँचाया।

इस प्रकार सारा कार्य-क्रम पूर्ण हो जाने पर जब लोग उस हाथी को वापिस पहुँचाने गए और सारी कैफियत महन्तजी को सुनाई तो इस माजरे को सुन कर वे भी बड़े आश्चर्य में पड़ गए और प्रभावित हुए।

तो कहने का आशय यह है कि त्यागी महापुरुषों के नाम में भी बड़ी भारी ताकत रहती है। अरे! जीवित महापुरुषों में तो

अनन्त शक्ति होती ही है परन्तु मोक्ष मे पधार जाने के बाद भी उनका नाम लेने से चमत्कार नजर आता है।

भाई ! यह तो शरीर धारियों के तनिक से त्याग और तपस्या का चमत्कार है परन्तु तीर्थङ्कर भगवान के नाम स्मरण मे तो वह अलौकिक शक्ति है कि जो सबसे जबर्दस्त काल रूपी हाथी है वह भी सच्चे हृदय से भगवान को याद करने पर वश मे हो जाता है। वह व्यक्ति उस काल रूपी हाथी पर भी विजय प्राप्त करके अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेता है। तो भगवान के नाम मे जबर्दस्त गुण रहा हुआ है। चू कि भगवान ऋषभदेव अतिशय गुण सम्पन्न थे अतएव उन्हीं के चरणों में हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

भाई ! भगवान को याद करने वाले के जीवन मे निर्भयता का सचार हो जाता है। परन्तु निर्भयता उसी के जीवन मे आती है जिसके अखूट पुण्य होते हैं।

मैंने कल के प्रवचन में यह बात आप लोगों को बताई थी कि सम्पूर्ण इंद्रियों की प्राप्ति भी अखूट पुण्य वाले को ही प्राप्त होती है। दूसरे मानवता भी अखूट पुण्य वाले के जीवन में आती है। और आर्य देश मे जन्म भी अखूट पुण्य के उदय से प्राप्त होता है। पुण्य के विना आर्य देश में जन्म होना भी मुश्किल है। क्योंकि भारत-वर्ष के बत्तीस हजार देशों मे कुल साढ़े पच्चीस देश ही आर्य माने गए हैं।

श्रीमद् ठाणागजी सूत्र में बताया है कि देवता देवलोक मे रहते हुए अपने भविष्य के लिए तीन बातों की इच्छा करते हैं। वे अपने मन मे विचार करते हैं कि हमे जो यह देव शरीर मिला है यह हमारे पूर्व जन्म के पुण्य सचय से प्राप्त हुआ है। इसी कारण

हमें ये देवलोक के भोगोपभोग साधन प्राप्त हुए हैं। परन्तु शेष पुण्य भोगने के पश्चात् जब हम यहां से च्यवन करें तो हमे मानव जीवन, आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल प्राप्त हो। तो देवता भी उपर्युक्त तीन बातों की प्राप्ति की वाछा करते हैं। क्योंकि मनुष्य जीवन प्राप्त किए बिना धर्म करनी करना असभव है और धर्म प्राप्ति की सुलभता भी आर्य देश मे ही हो सकती है। क्योंकि अनार्य देश मे हिंसात्मक प्रवृत्ति विशेषतया होने से वहां पर जन्म लेने वाले के सस्कार भी पापमयी बन जाते हैं और यह बात प्रकृति सिद्ध है कि जैसे सस्कारों मे प्रारभिक जीवन व्यतीत होगा वैसे ही उस वृक्ष के फल भी लगेंगे। तो पापमयी सस्कारों में पले हुए जीवन वृक्ष के फल भी दूपित ही लगेंगे। इससे वहा के लोगों की धार्मिक भावना होना भी मुश्किल है। दूसरे अनार्य देश के और आर्य देश के खान-पान, रीति रिवाजों मे भी अतर पाया जाता है। आर्य देश में जहां दया धर्म की प्ररुपणा की जाती है वहा अनार्य देश मे आद्योपान्त हिंसात्मक प्रवृत्तियों का बोल बाला होता है। भाई! दया और हिंसा मे छत्तीस के अक जैसा अन्तर है।

एक समय की बात है जबकि मैं दिल्ली शहर के चादनी चौक स्थित बारहदरी स्थानक मे ठहरा हुआ था। उस समय वहा एक स्वीडन निवासी पर्यटन के लिए आए हुए थे। वे सज्जन मेरे पास भी आए। चू कि मैं उनकी भाषा नहीं जानता था अतएव एक भाई ने हम दोनों के विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए दुभाषिए का कार्य किया। मेरी उन सज्जन से बहुत देर तक इस प्रकार बात चीत होती रही। बात चीत के दौरान मे मैंने उनसे कहा कि सच्चा जैन वही है जो मन, वचन और कर्म से किसी प्रकार की हिंसा नहीं करता, भूठ नहीं बोलता, चोरी नहीं करता, ब्रह्मचर्य का पालन करता और आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का सग्रह नहीं करता।

मेरी बात को सुनकर उन्होंने कहा कि महाराज ! हम जिस देश में रहते है वहां अन्न की कमी है और इसी कारण वहां मांस भक्षण का विशेष रूप से प्रचार है। और हमारे देश में जैन धर्म का प्रचार भी इसीलिए नहीं हो सका क्योंकि जैन धर्म मांस भक्षण का सर्वथा निषेध करता है। इसके बावजूद हमारे देश के लोग बौद्ध धर्मानुयायी इसलिए बन गए क्योंकि बौद्ध धर्म ने निस्संकोच भाव से मांस भक्षण की छूट दे दी है। जबकि भगवान महावीर का सिद्धान्त है कि जो जीवन मे मांस भक्षण करता है उसके दिल मे दया भावना नहीं रहती। और दया के अभाव मे धर्म नहीं टिक सकेगा। तो महाराज ! आपका कहना यथार्थ है परन्तु परिस्थितिएँ भी जीवन को दूषित बना देती हैं।

तो मैं कह रहा था कि आर्य देश मे जन्म लेना भी बहुत मुश्किल है। हमारा भारत-वर्ष यद्यपि दया प्रधान देश है परन्तु यहां भी अनार्य लोग बहुत बड़ी सख्या मे रहते हैं। इसलिए उत्तम कुल में जन्म लेने का विशेष महत्व बताया गया है। क्योंकि उत्तम कुल में जन्म लेने पर वहां के उच्च संस्कार जीवन में उतर आएंगे और यह जीवन भी पवित्र बन जायेगा। जब जीवन में पवित्रता आजायेगी तो धर्म करनी भी विशेष रूप से हो सकेगी। तो इसीलिए देवता भी आर्य देश, मानव जीवन और उत्तम कुल मे उत्पन्न होने की अभिलाषा किया करते हैं और शायद वे उक्त तीनों बातें भविष्य में प्राप्त कर सकें या नहीं भी कर सकें परन्तु भावना तो नित्य प्रति यही करते रहते हैं।

परन्तु आप भाई-बहनों को तो पुण्योदय से आर्य देश, मनुष्य जीवन और उत्तम कुल भी प्राप्त होगया है। अतएव इस जिंदगी मे आप जितना भी पराक्रम फोड़ना चाहें उतना ही फोड सकते हैं। परन्तु याद रखना ! यदि इस जीवन में भी पराक्रम नहीं फोड़ा तो

यह मानव जीवन प्राप्त करना और नहीं करना बराबर ही रहेगा। यह जिंदगी बार-बार मिलने वाली नहीं है अतएव इस देव दुर्लभ जिंदगी मे ऐसी धर्म करनी कर लो कि फिर जन्म-मरण धारण ही नहीं करना पडे। तो उत्तम कुल भी अखूट पुण्योदय से ही प्राप्त होता है।

इसके बाद आचार्य महाराज ने बताया है कि उत्तम जाति में पैदा होना भी मुश्किल है। यहा पर जाति का अर्थ आजकल की विभिन्न जातियों से नहीं है। परन्तु यहां जाति का अर्थ मातृ पक्ष की शुद्धता से लिया गया है। अर्थात् जिस माता ने स्वप्न मे भी पर पुरुष की इच्छा न की हो। ऐसी शुद्ध माता की कूख से उत्पन्न होने वाली सतान जाति सम्पन्न कहलाती है। तो उत्तम जाति मे पैदा होना भी अखूट पुण्य का कारण है। और जो जाति सम्पन्न होता है उसकी आखों मे शर्म होती है क्योंकि जिसकी आखों मे शर्म होगी वही पाप कर्म करने से भयभीत होगा। तो अखूट पुण्योदय से ही जाति सम्पन्नता प्राप्त होती है।

इसके बाद बताया गया है कि कुल सम्पन्न होना भी अखूट पुण्य का कारण है। यहां पर कुल सम्पन्न से अर्थ पितृपक्ष की शुद्धता से लिया गया है। अर्थात् जिसके पिता ने स्वप्न मे भी कभी पर स्त्री की इच्छा न की हो। तो उस शुद्ध पिता से उत्पन्न होने वाली सतान कुल सम्पन्न कहलाती है। जो कुलवान सतान होती है उसमे विनम्रता और विनय सम्पन्नता पाई जाती है। इस प्रकार जो नम्र और विनयी पुत्र होता है उसके मुश्किल से मुश्किल काम भी आसानी से पूर्ण हो जाते हैं। तो कुल सम्पन्नता भी अखूट पुण्योदय से प्राप्त होती है।

अब आगे आचार्य श्री फर्माते हैं कि उपरोक्त दुर्लभ बातों का योग मिल जाने पर भी तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा प्ररूपित सद् धर्म

का मिलना बहुत मुश्किल है। तो जिसके अखूट पुण्य होते हैं उसे ही तीर्थङ्कर भगवान का धर्म प्राप्त होता है। क्योंकि जिसके यहां जैसे सस्कार होते हैं उसके बच्चों पर भी उन्हीं सस्कारों का असर पड़ता है। तो वास्तविक धर्म के स्वरूप को समझ कर तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा बताए हुए विशुद्ध मार्ग को स्वीकार करना भी अखूट पुण्योदय से होता है। यदि कोई जैन धर्म मे अखूट पुण्योदय से उत्पन्न भी हो गया परन्तु तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रवण करना भी बहुत मुश्किल है। तो तीर्थङ्करों की अनमोल वाणी श्रवण भी अखूट पुण्य से होती है। और वाणी श्रवण किए बिना असत्य मार्ग से हट कर सत्य मार्ग पर गति नहीं की जा सकती।

भाई! महात्मा तुलसीदासजी ने भी संत महापुरुषों की वाणी का श्रवण करना दुर्लभ बताया है। उन्होंने अपनी चौपाई मे स्पष्ट रूप से कहा है —

*सुत, दारा और लक्ष्मी, पापी के भी होय।*
*सत समागम, हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥*

वे कहते हैं कि भाई! इस ससार मे पुत्र, स्त्री और सम्पत्ति तो पापी जीवों को भी थोड़े से परिश्रम करने पर ही प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु साधु पुरुषों की सुसगति और भगवद् कथा का श्रवण होना तो बहुत दुर्लभ है। किसी भाग्यशाली को ही संत समागम और भगवद् वाणी सुनने का लाभ प्राप्त होता है।

भाई! आप यदि अमेरिका, इगलेण्ड आदि विदेशों में जाकर देखें या वहा के लोगों के बारे में जानकारी हासिल करेंगे तो आपको मालूम होगा कि वहां के कतिपय लोगों की एक एक सैकिण्ड की भी

लाखों रुपयों की कमाई है। और मकान भी वहां के लोगों के इतने ऊंचे हैं कि वे आकाश से बातें करते हैं। अर्थात् वहां डेढ़ डेढ़ सौ मंजिल के भी मकान पाए जाते हैं तो इतनी ऋद्धि प्राप्त होने पर भी उन्हें सत समागम और हरिकथा की प्राप्ति होना तो बहुत मुश्किल है। जबकि इन दोनों बातों की प्राप्ति हुए बिना सब कुछ प्राप्त हो जाना भी व्यर्थ है। परन्तु जिन आत्माओं को सत समागम और महापुरुषों की कल्याणकारी वाणी की प्राप्ति हो जाती है वे बड़े भाग्यशाली हैं। तो पुण्य के बिना ये दोनों बातें प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए कहा गया है कि सत समागम और तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रवण करना भी अखूट पुण्य से ही होता है।

अरे! कोई कोई अखूट पुण्योदय से महापुरुषों की वाणी श्रवण करने को पहुँच भी जाते हैं परन्तु फिर भी वे वाणी श्रवण नहीं कर सकते। वे या तो आपस में वार्ते करते हुए समय व्यतीत कर देते हैं अथवा बैठे बैठे ऊंघने में ही समय बिता देते हैं। तो पूर्ण पुण्य के बिना वे भगवद्-वाणी का लाभ भी नहीं उठा सकते। क्योंकि पाप का उदय होता है तो धर्म स्थान पर पहुँच कर भी वाणी श्रवण के लाभ से वञ्चित रह जाते हैं। वे अपना अमूल्य समय बातें करने, ऊंघने या बच्चे-बच्चियों को खिलाने में ही व्यतीत कर डालते हैं।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

*सूत्र-वचन अभाग के, पडे न काना मांय।*
*के तो बात चलावसी, के ऊँघे के उठ जाय॥*

अर्थात्—जिसके अखूट पुण्य नहीं होते वह व्याख्यान में पहुँच कर भी ऊंघता रहता है, बाते करता रहता है या उठ कर चला

जाता है। तो जिसके अखूट पुण्य होंगे उसी को तीर्थङ्करों के वचन सुनने को मिल सकेंगे। और अखूट पुण्यवान ही वाणी श्रवण कर अपने जीवन को पवित्र बना सकेगा।

श्रीमद् रायचन्द्रजी सौराष्ट्र मे हो गए हैं। उनके कई उद्‌बोधन देने वाले पत्र पुस्तक मे प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने एक पत्र में लिखा है कि तीर्थङ्कर भगवान के अनमोल वचन जिस भव्यात्मा के कानों में पड़ जाते हैं तो समझ लो कि वे वचन उसके जीवन में विरेचन का काम कर डालते है। अर्थात् उन विशुद्ध वचनों को श्रवण कर उसकी आत्मा से कषाय रूपी मल निकल जाता है और उसकी आत्मा जन्म-मरण के रोग से स्वस्थ बन जाती है। जैसे कोई बीमार व्यक्ति जब किसी डाक्टर या वैद्य के पास पहुँचता है तो वह डाक्टर या वैद्य उस बीमार की नाडी परीक्षा करके उसे जुलाब देता है और उसके पेट की सफाई कर डालता है। तदनन्तर उसे वह दवा देकर स्वस्थ बना देता है। तो ठीक इसी प्रकार से जिस आत्मा के कानों मे भगवद् वचन पड़ जाते हैं वे उसकी पाप रूपी बीमारी को निकालने में विरेचन का काम करते हैं। इस प्रकार वह व्यक्ति शुद्ध होकर भोगों से उपराम हो जाता है। इस प्रकार का तीर्थङ्कर भगवान की वाणी में जादू रहा हुआ है।

भाई! तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का रसास्वादन करने के लिए निकटवर्ती भी भव्यात्माएँ पहुँचती है और दूरस्थ देवलोक से देवी-देवता भी आकर भगवान की वाणी श्रवण का लाभ उठाते हैं। वे सब एकाग्र चित्त से भगवान की निष्पक्ष वाणी को सुनकर उस पर मनन करते हैं और कहते हैं कि जो कुछ भगवान ने फर्माया है सब यथार्थ हैं।

वे कहते हैं कि—

*एस अट्ठे, एस परमट्ठे से से अनट्ठे।*

अर्थात्—यही अर्थ है, यही परम अर्थ है और बाकी सब अनर्थ है। भगवान की इस प्रकार की वैराग्य पूर्ण वाणी को सुनकर श्रोतागण भोगों से उपराम हो जाते हैं। सब अपनी अपनी शक्त्यानुसार त्याग-प्रत्याख्यान कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाते हैं। तीर्थङ्कर भगवान की वाणी सुनने के पश्चात भी जब वे लोग एक दूसरे से मिलते हैं तो आपस में भगवान के वचनों की प्रशसा करते हैं। क्योंकि बात दो या दो से अधिक व्यक्तियों में ही हुआ करती है। अकेला व्यक्ति कभी बात नहीं किया करता। और कहा भी है कि—

*पाव नहीं, अधसेर नहीं, नहीं रत्ती नही राई।*
*एक बिचारा क्या करे, दो मिल होती नाई॥*

उक्त दोहे मे प्रश्न किया गया है कि ऐसी कौन-सी चीज है जो दूसरे के बिना नहीं होती ?

तो इसके प्रत्युत्तर में कहा जाता है कि वह चीज वार्तालाप है जो कि दो व्यक्तियों के बिना नहीं हो सकती। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि मैं तो अकेला ही एकान्त में बैठ कर बातें कर लूँगा परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। यदि वह व्यक्ति धृष्टता करके एकान्त में बैठ कर अपने मुँह से कुछ बोलने भी लगता है तो उसे इस प्रकार बड़बडाता हुआ देखकर लोग यही कहते हैं कि कहीं यह पागल तो नहीं होगया है जो अकेला ही बडबडा रहा है। तो बात दो व्यक्तियों मे ही हुआ करती है। वे श्रावक लोग भी जब आपस मे मिलते हैं तो धर्म की ही बातें करते हैं और कहते हैं कि जो कुछ भगवान ने फर्माया है वही अर्थ है, परम अर्थ है और इसके अतिरिक्त दुनिया की सारी बातें अनर्थ हैं।

भाई ! यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा का कल्याण केवल धर्म की बातें करने और धर्माचरण करने में ही है। और तीर्थङ्कर भगवान के वचन सुनकर ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, त्याग, क्षमा, विनय, नम्रता, संतोष आदि-आदि गुण जीवन में धारण किए जा सकते हैं। और श्रावक लोग जो उपरोक्त धर्म की बातें करते हैं तो इस प्रकार की विचारधारा उनमें आई कहां से ? तो इसका सीधा सा उत्तर यही दिया जा सकता है कि उन्होंने तीर्थङ्कर भगवान के वचनों को ध्यान पूर्वक श्रवण किया है और इसी कारण वे आपस मे धर्म की बातें करते हुए दिखाई देते हैं।

क्योंकि सुनने से ही अपने भावों मे विशुद्धता आती है शास्त्र-कारों ने भी सुनने का फल बताते हुए कहा है कि.—

*सोच्चा जाणइ कल्याण, सोच्चा जाणइ पावग ।*
*उभयंपि जाणइ सोच्चा, ज सेवतं सभायरे ॥*

श्रीमद् दशवैकालिक-सूत्र के चौथे अध्ययन की उक्त ग्यारवीं गाथा मे बताया गया है कि भगवान तीर्थङ्कर की वाणी श्रवण करने से जानपणा होता है। क्योंकि उनकी वाणी में पुण्य और पाप दोनों तरह की बातों पर प्रकाश डाला जाता है। इस प्रकार श्रोताजन दोनों तरह की बातें सुनकर श्रेयस्कर बात को स्वीकार कर लेते हैं और आत्म घातक तत्त्वों को छोड देते हैं। तो यहां आचार्य महाराज भी यही कह रहे हैं कि जिसके अखूट पुण्य होते हैं उसी को जिनेन्द्र भगवान की वाणी सुनने को मिलती है। अन्यथा ससार चक्र को बढ़ाने वाली बातें तो दुनिया अनादि काल से सुनती ही चली आ रही है।

फिर बताया जाता है कि वाणी श्रवण करना तो मुश्किल है ही परन्तु वाणी श्रवण कर उस पर श्रद्धा-विश्वास लाना और भी मुश्किल है।

किसी कवि ने भी ठीक ही कहा है कि —

*सुनने वाला मिलिया घणा, सरधने वाले थोड़े।*
*सुणी सुणाइने लातां मारे, परजापत के घोड़े॥*

भाई! सुनने वाले तो फिर भी बहुत मिल जायेंगे परन्तु सुन कर उस पर विश्वास लाने वाले श्रद्धा करने वाले तो बहुत थोड़े व्यक्ति मिलते हैं। ऐसे श्रोताजन व्याख्यान सुन भी लेते हैं और सुनकर आलोचना भी कर डालते हैं। जैसे कि राजा का हाथी होता है और उसे खाने के लिए गन्ना डाला जाता है। उसे खाता देख कुछ गधे भी उधर से होकर गुजरे और वे भी गन्ना खाने की इच्छा से हाथी के पास खड़े होगए। यह देख हाथी ने विचार किया कि मेरे लिए किस बात की कमी है। यदि मैं दो-चार गन्ने इनकी तरफ भी फैंक दूँ तो मेरी खुराक मे कमी नहीं आ जायेगी। अतएव वह दो चार गन्ने उन गधों की तरफ भी फैंक देता है। वे गधे उन गन्नों को बड़े चाव से खाते हैं परन्तु खा चुकने के बाद अपनी प्रकृति के कारण उस हाथी पर दो चार लातें भी मार कर चले जाते हैं इसी प्रकार कुछ श्रोता ऐसे भी होते हैं कि वे सुन भी जाते हैं और अपनी निंदभ प्रकृति के कारण वक्ता की दो चार खोटें भी निकाल जाते हैं। जबकि उन्हें व्याख्यान सुनकर उसमें से अपने जीवनोपयोगी गुण ग्रहण करने चाहिए थे परन्तु ऐसा नहीं करके वे अवगुण ग्रहण कर लेते हैं। तो उनका सुनना और समय का देना दोनों ही बेकार चले जाते हैं। वे लोग यह नहीं विचार करते कि अव्वल तो जिनवाणी का श्रवण करना ही परम दुर्लभ है और यदि पुण्योदय से वाणी सुनने को

मिल गई है तो हमे सुनकर उस पर मनन करना चाहिए और श्रद्धा लाकर अपने जीवन में आचरण करना चाहिए।

आप यदि वकीलों के पास या डाक्टरों के पास जायेंगे और उनसे किसी विषय पर परामर्श लेना चाहेंगे तो आपको बात करने की भी फीस देनी पड़ेगी। बिना फीस लिए वे आप से बात भी नहीं करेंगे। तो दानों ही बात करने की फीस लेते हैं। यदि आपके पास फीस देने को पैसा नहीं है। तो आपसे बात करने को उनके पास फुर्सत भी नहीं है। तो जिनके पास कार्य की अधिकता है उनके पास समय की भी कीमत है और जो वेकार हैं उनके लिए समय की कोई कीमत नहीं है। ऐसे वेकार आदमी स्वय भी समय की कद्र नहीं करते और जो कार्य मे सलग्न हैं उन्हें भी बाधा पहुँचाते है।

परन्तु सन्त महापुरुष ही इस भूतल पर ऐसे परोपकारी पुरुष हैं जो अपना भी आत्म कल्याण करते हैं और अपने पास आने वाले श्रोताओं को भी विना किसी फीस के भेंट पूजा के ही तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का रसास्वादन कराते हैं। भाई! उन महापुरुषों के हृदय मे एकान्त रूप से दया का स्रोत उमड़ता रहता है। वे हृदय से चाहते हैं कि ये ससारी आत्माएँ जो अष्ट कर्मों के बन्धनों से जकड़ी हुई चौरासी लक्ष जीव योनियों मे परिभ्रमण कर रही हैं अतएव ये भगवान की भवनाशिनी वाणी सुनकर वन्धनों से मुक्त हो जांय। तो इसी एकान्त परोपकार की दृष्टि से वे महापुरुष अपनी छत्र छाया में विश्राम लेने वाले भव्यात्माओं को विविध प्रकार की जिनवाणी रूपी दवा का सेवन कराते है और उन्हें जन्म-मरण रूपी रोग से स्वस्थ वनाने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार वे अपने श्रोताओं को कभी तो मीठी दवा और कभी कडवी दवा का भी सेवन कराते हैं।

आपको मालूम है कि माता का हृदय भी अपनी संतान के प्रति कितनी वत्सलता लिए हुए होता है। वह अंतरंग हृदय से बच्चे को प्यार करती है। मां की ममता जगत्प्रसिद्ध है। वह अपनी संतान के सुख के लिए खाना पीना, सोना-बैठना वगैरह सब सुख छोड़ देती है और मौका पड़ने पर अपने सर्वस्व का त्याग करने में भी नहीं सकुचाती। परन्तु इतना ममत्व होने पर भी जब कभी बच्चा बीमार हो जाता है और डाक्टर या वैद्य उसे निरोग करने के लिए कडवी दवा देते है जिसे बच्चा लेना पसंद नहीं करता। वह दवा नहीं लेने के लिए कभी अपने हाथ-पैर उछालता है, मारता है और दवा भी ढुलवा देता है। परन्तु उस समय माता उसके हाथ पैर पकड़ लेती है और जबर्दस्ती से उसके मुँह मे दवा उढेल देती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बच्चा दवा लेने को मुँह नहीं खोलता तो वह उसके मुँह में बेलन या चम्मच डाल कर भी दवा उढेल देती है। भाई! माता का हृदय इतना कोमल होने पर भी वह उस समय इतनी कठोर बन जाती है और कडवी दवा का सेवन कराकर ही चैन लेती है। तो इतना सब कुछ वह किसलिए करती है? इसका सीधा सा उत्तर है कि वह माता अच्छी तरह जानती है कि यदि यह दवा नहीं लेगा तो यह निरोग कैसे होगा! परन्तु इतना सब कुछ भी वह एकान्त दया भावना से ही करती है। ठीक इसी तरह की दया भावना महापुरुषों की भी संसारी जीवों के लिए होती है। वे भी अपने भवरोग के बीमार श्रोताओं को उनकी बीमारी के मुताबिक कभी तो मीठी और कभी कडवी दवा का भी जबर्दस्ती से सेवन कराते हैं। इस प्रकार जिस श्रोता के गले से नीचे तीर्थङ्करों की वाणी रूपी दवा पहुँच जाती है वह हमेशा के लिए निरोग हो जाता है। उसका जन्म-मरण रूपी भयंकर रोग सदा के लिए मिट जाता है। तो भगवान की वाणी रूपी दवा विषय

विकारों का विरेचन करने वाली है। और जिसके अखूट पुण्य हैं उसी को यह जिनवाणी सुनने को मिलती है और वही सुन उस पर श्रद्धा कर सकता है।

स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० जिनवाणी की तारीफ करते हुए रहे हैं कि—

*सुन जिनवाणी रे, सुन जिनवाणी रे ।*
*मत धर्म बिना खोवे जिंदगानी रे ॥ टेर ॥*
*मनुष्य जन्म और आरज खेतर उत्तम कुल में आयो रे ।*
*दीर्घायु, तन निरोग इन्द्रिय,पूरण पायोरे ॥ सु० ॥ १ ॥*
*श्रमण माहण की सेवा करके, ज्ञानामृत रस पीजे रे ।*
*साची श्रद्धा धार धर्म में, पराक्रम कीजे रे ॥सुण॥२॥*
*ये दस बातां सबे जीव को, दुर्लभ श्री जिन भाखीरे ।*
*खोजी हो तो कर निर्णय, शास्तर है साखी रे ॥सु०॥३॥*
*मूढ हिताहित, सुकृत, दुष्कृत, कबहू नाहि विचार्यो रे ।*
*चिन्तामणि सम मनुष्य जन्म सब, फोकट हार्यो रे ॥सु०॥४*
*क्रूर कर्म हिंसादिक तजने, भली भावना भावो रे ।*
*मेरे गुरु नंदलाल मुनि को, है फरमावो रे ॥सु०॥५॥*

भाई ! मनुष्य की जिंदगी आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, ल आयुष्य, पांचों इन्द्रियों की पूर्णता एवं निरोगता, संतसमागम, जिन वाणी का श्रवण आदि आदि प्राप्त होना तो दुर्लभ है ही पर जिनवाणी श्रवण कर उस पर श्रद्धा लाना तो बहुत ही मुश्किल है तीर्थङ्करों की वाणी सुनकर उस पर श्रद्धा का उत्पन्न होना भी अ पुण्य का कारण है और श्रद्धा आए बिना धर्म करनी में प्रवृत्ति हो मुश्किल है। तो श्रद्धा के बिना कोई कार्य बनने वाला नहीं है। लिए शास्त्रकारों ने कहा है:—

सद्धा परम दुल्लहा।

अर्थात्–श्रद्धा–विश्वास उत्पन्न होना परम दुर्लभ है। तो जीवन मे श्रद्धा का लाना परमावश्यक है।

इसके पश्चात् आचार्य श्री ने फर्माया है कि श्रद्धा भी यदि जिन वचनों पर होगई परन्तु धर्माचरण करना परम दुर्लभ है। और धर्म करनी किए बिना आत्मोन्नति नहीं हो सकती। तो धर्म कार्य में पराक्रम फोड़ना भी अखूट पुण्य के द्वारा ही होता है।

इस प्रकार उपरोक्त दसों वातों की योगवाई उसी इन्सान को सुलभता से प्राप्त होती है जिसके अखूट पुण्य होते हैं। जबकि पापी जीवों को ये वातें प्राप्त होना मुश्किल है और यदि पुण्य योग से इनमे से अमुक अमुक वातों का योग मिल भी गया परन्तु जीवन में यदि मूढता बनी रही तो वह नहीं समझ सकेगा कि सुकृत क्या है और दुष्कृत क्या है। उसे यह भी भान नहीं हो सकेगा कि मैं कौन हूँ, कहा से आया हूँ कहा जाना है, क्या करना चाहिए और मैं यहां क्या कर रहा हूँ? और यदि इस प्रकार के विचार उसके जीवन में नहीं आए तव भी इस मानव जीवन की सार्थकता नहीं है। इसलिए मानव जीवन में अन्य वातों के साथ साथ ज्ञानवान होना भी आवश्यक है ताकि वह अपनी आत्मा के स्वरूप को पहिचान कर धर्माचरण कर सके। अन्यथा उसे जो यह मनुष्य जन्म रूपी चिंतामणि रत्न सहज भाव में प्राप्त होगया है वह व्यर्थ ही हाथ से निकल जाएगा। अत में पश्चाताप ही शेष रह जाएगा। परन्तु फिर पश्चाताप करने से भी भविष्य समुज्जवल नहीं वन सकता।

इसलिए सतसमागम में आकर और तीर्थङ्कर भगवान की वाणी सुनकर मानव जीवन रूपी चिंतामणि रत्न की कीमत कर लो।

जो कार्य मनुष्य जिंदगी मे लौकिक दृष्टि से या पारलौकिक दृष्टि से करना शोभास्पद नहीं है उसका त्याग कर देना चाहिए। और सद् विचारों को हृदय मे स्थान देना चाहिए। क्योंकि जब हृदय मे उन्नत विचार उत्पन्न हो जायेंगे तो कभी न कभी तुम्हारी आत्मा का उत्थान भी हो जायेगा।

भाई! जिन बातों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है वही वास्तव में जिनवाणी है और जिनराज का धर्म है। यह जिन धर्म भी पुण्यवानी के बिना प्राप्त होने वाला नहीं है। परन्तु आप लोग महान पुण्यशाली हैं जिन्हें सभी बातों की योगवायी मिल गई है। अब तो सिर्फ धर्म कार्य मे पराक्रम फोड़ने की ही आवश्यकता है।

एक कवि भी इसी विषय मे कह रहा है कि —

*दया धर्म पावे तो काई पुण्यवंत पावे।*
*पापी को दाय न आवे रे ॥ टेर ॥*

देखो! दया धर्म की बात सुनना और जीवन में धर्म की बातों को वही स्वीकार कर सकता है जो महान पुण्यशाली आत्मा होगा। सर्व साधारण के जीवन में इन बातों का प्रवेश होना बहुत मुश्किल है। तो जो अखूट पुण्य लेकर आता है उसे ही इस बातों की प्राप्ति होती है। परन्तु जो पापी मनुष्य होता है वह अपनी मूढता के कारण हिताहित का, कृत्या-कृत्य का और भक्ष्या-भक्ष्य का बोध प्राप्त नहीं कर सकता और इस मनुष्य जन्म रूपी चिंतामणि रत्न को विषय भोगों मे फँस कर बरबाद कर देता है।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐ मानव! यदि तुझे तेरे पुण्योदय से मनुष्य जीवन प्राप्त होगया है तो तुझे जीवन में विवेक रखना

चाहिए। यदि जीवन मे विवेक नहीं आएगा तो इस मानव जीवन की कोई कीमत नहीं है। विवेक के बिना मनुष्य और पशु जीवन में कोई अतर नहीं है। क्योंकि जितना ऐशोआराम मनुष्य करता है उतना ही पशु भी करता है। परन्तु मनुष्य और पशु जीवन में अतर इतना ही है कि मनुष्य में विवेक धर्म होता है जबकि पशु विवेक शून्य होता है।

भाई! मनुष्य मे विवेक की प्रधानता होने पर भी वह अपना विवेक सांसारिक व्यवहारों मे तो लगा लेता है परन्तु उसका जीवन किस धारा में बहता जा रहा है उसकी तरफ विचार नहीं कर पाता। और यही कारण है कि वह अपने जन्म-मरण के चक्र को और भी बढ़ाता जाता है। वह बिना विचारे कार्य कर डालता है अतएव उसे अतिम समय में पश्चाताप करना पडता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐ मानव! तुझे यह बेश कीमती मानव का शरीर मिल गया है तो बिना विचारे कार्य मत कर। क्योंकि कहा भी है —

*बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।*
*काज विगाडे आपणो, जग में होत हसाय॥*

देखो! यह मानव जीवन चिंतामणि रत्न के समान सहज भाव में प्राप्त होगया है अतएव विवेक पूर्वक कार्य करो। यदि इसे प्राप्त करके भी बिना विचारे कार्य करोगे तो भविष्य में पछताना पडेगा। इसलिए इस जीवन मे धर्म कार्य करना ही श्रेयस्कर है। यदि जीवन में धर्माचरण कर लिया तो तुम्हें मानव जीवन प्राप्त करने का आनन्द आ जाएगा। अन्यथा यह मानव शरीर नष्ट तो होने ही वाला है और मानव जीवन के विपरीत आचरण करोगे तो अत में पश्चाताप ही अवशिष्ट रह जाएगा।

*बिना विचारे करे नर कारज, आखिर सोच हुवे भरपूर।*
*नर तन उत्तम पाय कर, धर्म-धार कर तजो गरूर॥*

मैं अब आपको एक दृष्टान्त के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा कि मनुष्य को बिना विचारे कार्य करने पर किस प्रकार पश्चाताप करना पडता है।

भाई! एक समय की बात है कि इसी जंबूदीप के भरत क्षेत्र में पाडलीपुर नाम का नगर था। आज की भाषा में उसे ही पटना कहते हैं। पटना बिहार-प्रान्त की राजधानी है।

तो उस पाडलीपुर नगर में धनदत्त नाम का एक सेठ रहता था। वह एक समय विदेश में व्यापार के द्वारा धन कमाने की दृष्टि से बहुत तरह का सामान जहाज मे भर कर गगा नदी में होकर जाने लगा। जब उसका जहाज दरिया के मध्य मे पहुँचा तो वह जहाज पर बैठा हुआ दूर तक चारों तरफ दृष्टि डालने लगा। इस प्रकार दृष्टि डालते हुए उसकी दृष्टि अचानक आकाश की ओर चली गई। उसने उस समय देखा कि एक तोता उड़ता हुआ जा रहा है। परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह क्या देखता है कि तोता उसके जहाज के निकट ही उड़ता हुआ आ रहा है। ज्योंही तोता उसके नजदीक आया तो सेठ ने उसकी तरफ ध्यान से देखा और देखने पर ज्ञात हुआ कि वह बहुत थक चुका है और अब विशेष समय तक उड़ने के काबिल नहीं रहा है। शायद वह समुद्र मे गिर कर प्राण भी गवा सकता है। तो ऐसी परिस्थिति देख कर सेठ के दिल मे दया आ गई। उसने उस तोते को बचाने का दृढ़ विचार कर लिया। इसी दृष्टिकोण से उसने उसकी तरफ अपना डुपट्टा जोर से फैंका और वह तोता मूर्च्छित अवस्था मे उस पर गिर पड़ा। फिर सेठ ने बड़ी सावधानी से डुपट्टे को अपनी ओर खींच कर उस तोते को उठा लिया।

भाई ! सेठ भी मनुष्य था और उसमे मानवता कूट कूट कर भरी हुई थी। चू कि मानवता का गुण है कि किसी दुखी प्राणी को देख कर उसका दुख निवारण करना। अतएव सेठ ने भी इस मानवता के नाते उसे अपनी ओर खींच लिया। फिर सेठ ने उस पर हवा की, और थोडी देर बाद उसकी मूर्च्छा दूर होगई। इस प्रकार जब वह होश में आ गया तो उसकी घबराहट दूर होगई। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

उस तोते के मुँह में दो आम थे। उसने उन्हें जमीन पर गिरा दिए। इसके बाद वह मनुष्य की भाषा में अपने जीवन-दाता सेठ से कहने लगा कि सेठ ! तुमने मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकार किया है। मैं तुम्हारे इस एहसान को जिंदगी भर भी नहीं भूल सकता। यदि तुम मुझे आज दया लाकर नहीं बचाते तो मैं दरिया मे पड कर प्राण समाप्त कर देता तुमने मेरे ही प्राण नहीं बचाए हैं परन्तु मेरे माता-पिता के प्राणों की भी रक्षा कर ली है। इसलिए तुमने मेरे ऊपर द्विगुणित उपकार किया है। मैं तुम्हारे इस दुगुने उपकार का वदला चुकाने मे सर्वथा असमर्थ हूँ।

भाई ! पक्षी भी अपने उपकारी का किस प्रकार एहसान मानते हैं ! पक्षी को पाल कर उसे जैसा सिखाया जाता है वैसा ही कार्य करने लगता है और बोलने लगता है। मैंने परसों के अखबार में पढा था कि जब आसाम के राज्यपाल मर गए तो उनके यहा जो मैना पाली हुई थी वह पिंजरे में से बोलने लगी कि—उठो ! नींद से उठो। क्योंकि उसे मालूम था कि राज्यपाल अभी तक सो रहे हैं। अतएव वह मनुष्य की भाषा मे उन्हें जगाने का प्रयत्न करने लगी। तो कहने का सारांश यह है कि पक्षी भी सिखाने पर कार्य करते हैं। आपने वड़े वड़े सरकसों मे हाथी, घोड़े, ऊँट, कुत्ते, तोते आदि

आदि पशु-पक्षियों को बड़े बड़े कार्य करते हुए देखे होंगे। तो पशु पक्षी भी सिखाने पर बड़े बड़े कार्य करते हैं।

उस तोते ने भी अपने प्राण रक्षक सेठ के एहसान का बदला चुकाने के लिए अपनी चोंच में एक आम उठाया और सेठ को सबोधन करते हुए कहने लगा—सेठ! तुम मुझ पर कृपा करके यह आम ले लो।

तोते के इस प्रकार कहने पर सेठ बोला—भाई! यह तेरी खुराक है। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रकार कह कर उसने उसे खाने को दाखें, अंजीर और फल दिए और कहा कि इन्हें खाले।

तब तोते ने प्रत्युत्तर में कहा—सेठ! मैं आपके द्वारा दी हुई चीजें तो खालूंगा परन्तु आपको यह आम तो लेना ही पड़ेगा। इस आम में बड़ा जबर्दस्त गुण है। इसके जैसा आम आपको कहीं भी मिलने वाला नहीं है।

सेठ ने पूछा—तोते! इसमें ऐसा कौन-सा विशेष गुण रहा हुआ है?

वह तोता कहने लगा—सेठ! मैं आपके सामने इस गुणकारी आम को प्राप्त करने का इतिहास रख रहा हूँ। आप ध्यान पूर्वक मेरा परिचय और इस आम के गुण को सुनने की कृपा करें।

महाराज! विंध्याचल नाम का एक पर्वत है। उस पर्वत पर अनेक तरह के वृक्ष लगे हुए हैं। उन्हीं वृक्षों में से एक वृक्ष पर एक तोता तोती का जोड़ा रहता है। वे दोनों ही पक्षी आंखों से अंधे तथा शरीर से वृद्ध हैं। उनके शरीर में रोग भी व्याप्त हो गया है।

और मैं उन्हीं असहाय, अशक्त एव रोगी माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ। मैं ही उन्हें उड़ कर जगह-जगह से फल लाकर देता हूँ। इस प्रकार उन वृद्ध माता-पिता का मैं ही एकाकी पालन-पोषण करने वाला हूँ। मुझे इस प्रकार उनकी सेवा-सुश्रूषा का भार उठाते हुए जब काफी समय व्यतीत हो गया तब एक दिन उसी वृक्ष के नीचे गुरु और चेले के एक जोडे ने विचरण करते हुए रात्रि मे विश्राम किया। रात्रि शाति पूर्वक व्यतीत हो जाए इसलिए वे दोनों आपस में बातें करने लगे। इस प्रकार बात-चीत के दौरान में गुरु ने अपने चेले से कहा—चेले! मैं तुझे एक अनोखी बात सुनाता हूँ। वह बात तेरे जीवन में कभी उपयोगी हो सकती है। इस वक्त तेरे सिवाय वह गुप्त बात दूसरा सुनने वाला भी नहीं है अतएव उसे सुना देना उचित समझता हूँ।

तब चेले ने कहा—गुरुजी! आपकी मुझ पर असीम कृपा है। आप कृपा कर वह अनोखी बात अवश्य सुनाइए।

तो सेठ! उस निस्तब्ध निशा मे वृक्ष के नीचे तो गुरु और चेला बैठे हुए थे और वृक्ष की शाखा पर हम बैठे हुए थे। इसके सिवाय उनकी बात सुनने वाला वहां कोई भी नहीं था।

तब गुरु ने अपनी बात प्रारम्भ करते हुए कहा—चेले! समुद्र के मध्य मे एक कवि नाम का पर्वत है। उस पर एक आम का वृक्ष लगा हुआ है। वह बारह मासी फल देता है। परन्तु उस अम्र वृक्ष के फलों मे एक विशेष गुण मौजूद है। वह गुण यह है कि जो कोई अधा व्यक्ति उस आम को खा लेता है वह पुन नेत्र ज्योति प्राप्त कर लेता है और यदि उसे कोई रोगी आदमी खा ले तो उसकी असाध्य से असाध्य बीमारी भी क्षण मात्र में दुर हो जाती है।

जब चेले ने गुरूजी के मुँह से उक्त आम्र फल के गुणों के सम्बन्ध में जानकारी कर ली तो वह कहने लगा—गुरूजी ! आपने यद्यपि मुझे एक अनोखी बात कही है और इससे दूसरों का उपकार हो सकता है परन्तु हमारा जीवन तो निवृत्ति मार्ग पर चल रहा है। अतएव होगा ! आम का वृक्ष ! हमें उससे क्या लेना-देना है। हमें तो भगवद् भजन कर अपनी आत्मा का कल्याण करना है।

इस प्रकार आपस मे बातें करते हुए दोनों गुरू और चेला निद्रावस्था में लीन होगए। जब प्रातःकाल हुआ तो वे दोनों आगे के लिए रवाना होगए।

वे दोनों अतिथि मुनि तो रवाना होगए, परन्तु हे सेठ ! मैंने उन दोनों की बात सुनकर हृदयगम कर ली। मुझे उनकी बातों पर पूर्णतया विश्वास होगया। क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि साधु पुरुष कभी मिथ्या भाषण नहीं करते। चूंकि मेरे माता-पिता अंधे और रोगी भी है अतएव मैंने विचार किया कि जब सहज भाव मे साधु पुरुषों ने यहां आकर बात ही बात मे कष्ट निवारण के लिए औषधि बना दी है तो फिर उन आमों को लाकर अपने माता-पिता को निरोग क्यों न बना लूँ।

इस प्रकार दृढ निश्चय के साथ अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर मैंने वहां से उडान भरी। मुझे पूर्ण श्रद्धा थी कि मैं अवश्यमेव आमों को लाकर अपने माता-पिता को स्वस्थता प्रदान कर सकूंगा।

भाई ! दुनियां में श्रद्धा से ही सब काम सफल होते हैं। बिना श्रद्धा के मनुष्य किसी भी कार्य मे सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। लौकिक कार्यों मे तो विश्वास की पूर्ण रूप से आवश्यकता है ही

परन्तु तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रवण कर उसमें भी श्रद्धा लाओगे तभी यह जीवन उन्नत बन सकेगा। बिना श्रद्धा लाए सुन लेने मात्र से जीवनोद्धार सम्भव नहीं है।

तो मैं भी अपने हृदय मे श्रद्धा के अंकुर प्रस्फुटित कर वहां से उड़ता हुआ अपने गन्तव्य स्थान पर अर्थात् दरिया के मध्य में जो कपि पर्वत था वहां पहुँच गया। वहां उन गुरूजी के कथनानुसार आम्र-वृक्ष भी मिल गया। उस आम्रवृक्ष से मैंने अपनी चौंच मे दो आम ले लिए। इस प्रकार मैं पुन अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए उड़ पडा। परन्तु दुर्भाग्यवश उड़ते उडते दरिया के मध्य में मैं इतना थक चुका था कि अब मुझ मे और आगे उडने की शक्ति न रही। मुझे चक्कर आने लगे और मैं घबराने लगा कि कहीं मैं अपने माता पिता को निरोग किए बिना ही दरिया में डूब कर न मर जाऊॅ। परन्तु मेरे माता-पिता के भाग्य अच्छे थे और मेरी जिन्दगी भी अवशिष्ट थी अतएव ज्योंही मैं गिरने वाला था कि आप श्रीमान् की मुझ पर दया दृष्टि पड गई और आपने डुपट्टा फैंक कर मेरी जान बचा ली। इसलिए हे प्राणदाता सेठ! चूंकि आपने मेरी और मेरे माता-पिता की रक्षा की है अतएव इस आम्र-फल को स्वीकार करो। यह फल आपके बहुत काम आएगा। आपका मुझ पर महान उपकार है और उसके बदले में, मैं आपको इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे सकता। हे सेठ! यह तो सुसाधु के वचन का प्रताप है अन्यथा ऐसी बात बताता ही कौन है। परन्तु उन गुरुदेव के वचन मेरे कानों में सहज भाव मे पड़ गए और मैं उनके वचनों पर प्रतीति कर ये आम लेकर आया हूँ। यद्यपि मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपकी सेवा के मुकाबले मे यह फल कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता परन्तु फिर भी आप इस फल को स्वीकार कर मुझे आपके ऋण से उऋण होने का मौका दीजिए।

तब सेठ ने उक्त तोते के आग्रह भरे वचनों को सुनकर दि में विचार किया कि इस फल के द्वारा और भी किसी का उपकार किया जा सकता है अतएव इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। इस प्रकार उसने उस आम्र फल को स्वीकार कर लिया। जब सेठ ने तोते से आम ले लिया तो वह बचे हुए एक आम को चोंच में लेकर उड़ गया। वह उड़ता हुआ अपने माता-पिता की सेवा मे पहुँचा और वहां पहुँच कर उसने सारा वृतान्त उन्हें कह सुनाया। उसकी इस बात को सुनकर वे दोनों भी अत्यधिक प्रसन्न हुए और बोले—बेटा! तूने अपने प्राणदाता सेठ को आम्र फल देकर बडी समझदारी क कार्य किया है। इस प्रकार उस तोते ने अपने माता-पिता को वा आम खिला कर निरोग बना दिया।

इधर उस सेठ ने आम्र फल को अपने हाथ में लिया और उस पर गभीरता पूर्वक विचार करने लगा। उसने सोचा कि तोते ने मुझे यह कीमती फल तो दे दिया परन्तु यदि मैं इसे खा लूँगा तो इससे क्या बनने वाला है! हां, यदि मैं इस फल को अपने देश के राज को खाने के लिए दे दूँ तो वह इसे खाकर हमेशा के लिए निरोग हो जायेगा और अपनी प्रजा का अत्यधिक उपकार कर सकेगा क्योंकि राजा प्रजा प्रतिपालक है और इससे बढ़ कर उपकार औ क्या हो सकता है! और नीतिकारों ने भी कह दिया है कि जो कुछ स्वय खा लिया वह तो खो देने के बराबर है परन्तु जो दूसरों को दे दिया वही साथ में जाने वाला है। इससे बढ़ कर प्राप्त किए हुए पदार्थ का सार नहीं निकल सकता।

भाई! मुझे इसी विषय पर एक घटित घटना याद आ रही है। उसे आपकी जानकारी के लिए कह देना उचित समझता हूँ तो घटना इस प्रकार घटी कि जोधपुर में उस समय महारा

जसवंतसिंहजी राज्य कर रहे थे। वे स्वय भी बड़े विद्वान और दूर-दर्शी थे तथा दूसरे विद्वान पडितों की भी इज्जत करते थे। एक समय की वात है कि वे राज्य सभा में सिंहासन पर वैठे हुए थे। अन्य राज कर्मचारी गण भी अपने अपने स्थान पर बैठे हुए थे। सभा में चारण-भाट और अन्य राजकर्मचारियों के द्वारा महाराज की प्रशंसा के गीत गाए जा रहे थे। महाराज उन सवकी विरदावलियां सुन-सुन कर बडे प्रसन्न हो रहे थे। परन्तु साथ ही साथ वे अपने मन में विचार भी करते जाते थे कि ये लोग मेरे समक्ष तो मेरी प्रशसा के बड़े वड़े पुल वांध रहे हैं परन्तु भविष्य में ये मेरी आज्ञा का पालन कर सकेंगे या नहीं अतएव इसकी भी मुझे अभी से परीक्षा कर लेनी चाहिए।

यह विचार कर उन्होंने भरी सभा में सवोधन करते हुए कहा कि ऐ सभासदो! आप लोग यह तो भली भांति जानते ही हैं कि जो जन्मा है उसे एक दिन अवश्य ही मरना होगा और इसी निश्चित सिद्धान्त के अनुसार मुझे भी एक दिन यहां से सव कुछ छोड़ कर जाना होगा। परन्तु मैं आप लोगों को अभी से एक हिदायत कर देना चाहता हूँ कि जव मैं परलोक सिधार जाऊँ तो उस समय मेरे शरीर पर जो भी शाही पौशाक हो और जितने भी कीमती आभूषण शरीर पर धारण किए हुए हों उन्हें उतारना मत, परन्तु उसी लिबास में मेरा अग्नि संस्कार करा देना। देखो! यदि तुम लोगों ने मेरे कथनानुसार ही आचरण किया तव तो ठीक, नहीं तो मैं तुम्हारा दामनगीर होऊँगा और तुम लोगों को भूत बनकर दुख दूँगा।

जव यह प्रस्ताव सभासदों के सामने रखा गया तो सभी ने एक स्वर से महाराज के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा—हां, महाराज! हम आपकी आज्ञा का अक्षरश. पालन करेंगे। आप इस

विषय में किसी प्रकार की आशंका को अपने हृदय में स्थान न दें। इस प्रकार सबके मुँह से विधेयात्मक शब्द सुनकर महाराज ने सभा विसर्जित कर दी।

इस प्रकार उक्त प्रस्ताव को रखे हुए जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो महाराज ने विचार किया कि मैंने जो शब्द अपने राज-कर्मचारियों के सामने रखे थे उनका यथा योग्य पालन ये लोग कर सकेंगे या नहीं इसकी परीक्षा मुझे जीवित दशा में ही कर लेनी चाहिए। अतएव एक दिन उन्होंने प्रात काल जल्दी ही स्नान-मज्जन कर लिया। और शाही वस्त्राभूषण शरीर पर धारण कर दरबार में आकर राज्य सिंहासन पर आरूढ होगए। सारे दरबारी लोग भी यथा समय दरबार में उपस्थित होकर यथास्थान बैठ गए। आज दरबार खचाखच भर गया था। चारण-भाट वगैरह महाराज के यशोगान गा रहे थे। शाही बैण्ड भी महाराज को सलामी देने के लिए बजाया जा रहा था। आज चूंकि मारवाड़ के सभी गांवों के ठाकुर उमराव मुसद्दी वगैरह विशेष आमत्रण देने पर हाजिर हुए थे अतएव उन सबका आतिथ्य सत्कार, इत्र-पान वगैरह किया जा रहा था। इस प्रकार आज दरबार में आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था।

ऐसे महान आनन्द के समय महाराज ने परीक्षा लेने की दृष्टि से योगाभ्यास के द्वारा अचानक अपने प्राणों को दो चार घटों के लिए ऊपर की ओर चढा कर मुर्दे के समान बन गए। इस प्रकार जब एकदम उनका हिलना चलना, देखना, बोलना वगैरह सब कार्य बन्द होगए और आंखें भी ऊपर की ओर चढ गई, तो सभा मे एक-दम सन्नाटा छा गया। ऐसी परिस्थिति देखकर सबके होश फाख्ता होगए और रंग मे भंग होगया। उस समय सभी सभासद् आपस मे कहने लगे कि महाराज का तो हार्टफैल होगया है। इस प्रकार सब लोग शोक मग्न होकर बैठ गए।

महाराज के अचानक स्वर्गवासी हो जाने के समाचार जब महलों मे पहुँचे तो वहां भी रोना-पीटना प्रारम्भ होगया। रानियां भी शोक मग्न होकर कोने में बैठ गईं।

अब सभी दरबारी लोग आपस में मशवरा करने लगे कि महाराज की गादी पर अमुक को आसीन कर दिया जाय। इस प्रकार जब नए राजा का चुनाव कर लिया गया तब मत्री ने आज्ञा दी कि अब महाराज के शव का अतिम किया कर्म किया जाये। ज्योंही मत्री ने आज्ञा दी तो कुछ दरबारियों ने कहा कि हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि महाराज ने एक साल पूर्व यह भी कहा था कि मेरा अतिम अग्नि सस्कार शाही लिबास में ही किया जाना चाहिए और उनकी बात का सारे सभासदों ने एक स्वर से समर्थन किया था। अतएव अब हमारा परम कर्तव्य है कि महाराज का उनकी इच्छानुसार इसी शाही लिबास मे अग्नि संस्कार करा देना चाहिए।

परन्तु कुछ अन्य दरबारियों ने इसमें एतराज प्रकट करते हुए कहा कि हमे महाराज की आज्ञा का पालन अवश्यमेव करना ही चाहिये परन्तु ऐसा करने मे हमारे सामने एक आपत्ति भी आ रही है और वह आपत्ति यह है कि यदि हम महाराज को इसी-शाही लिबास मे जला देते हैं तो नवीन राजा का राज्याभिषेक करने के लिए हमारे पास इससे बढ़कर दूसरी पौशाक और आभूषण नहीं है। अतएव अब इस समस्या पर भी ज़रा गभीरता से विचार कर लेना आवश्यक है।

जब सब लोगों के सामने यह समस्या उपस्थित हो गई तो कुछ देर सबने मिल कर इस विषय पर विचार-विमर्ष किया। अत में वे सब इसी निर्णय पर पहुँचे कि हमें ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे सांप भी मर जाय और लाठी भी नहीं टूटे और उक्त समस्या

का हल इस प्रकार किया जा सकता है कि ऐसी ही दूसरी नकली पौशाक बनवाई जाय और असली आभूषणों के स्थान पर ऐसे ही नकली आभूषण धारण करा दिए जांय। इससे नवीन राजा को शाही पौशाक और आभूषण भी धारण कराए जा सकेंगे और महाराज के कथनानुसार रस्म भी अदा कर दी जायेगी। उनकी आत्मा को भी दुख नहीं होगा। इस प्रकार सर्व सम्मति से उक्त निश्चय करके महाराज के शव यात्रा की तैयारी की जाने लगी। मांडी बनाई जा रही है, बैण्ड बाजे भी तरह तरह के बज रहे हैं, और नकली पौशाक तथा नकली आभूषण भी महाराज को धारण कराने के लिए लाए जा रहे है। इस प्रकार सारी तैयारिएँ की जाने लगीं।

परन्तु इसी बीच में महाराज की समाधि के पूर्ण होने का समय भी आ चुका था अतएव महाराज ने अपने प्राणों को नीचे उतारे। ऐसा करते ही महाराज के शरीर में प्राणों का सचार हो गया श्वांस चलने लगी और शरीर के अगों-पांगों में हरकत होने लगी।

उक्त परिस्थिति देखते ही सब लोग घबराने लगे। वे सोचने लगे कि कहीं महाराज की आत्मा भूत बन कर तो शरीर मे प्रविष्ट नहीं होगई! इस प्रकार सब लोग शान्त भाव से अपने अपने स्थान पर बैठ गए। महलों में रोना-पीटना भी बद होगया और चारों तरफ प्रसन्नता का वातावरण फैल गया।

परन्तु ज्योंही महाराज ने आंखे खोल कर अपने शरीर की ओर दृष्टिपात किया तो वास्तविक पौशाक और आभूषणों के स्थान पर उन्हें सब चीजें नकली ही दिखाई दिए। तब उन्होंने अपने कर्मचारियों से पूछा कि जो वस्त्राभूषण मैं राज्य सभा मे पहिन कर आया था वे कहां चले गए? और उनके स्थान पर दूसरे वस्त्राभूषण कहां से आ गए?

महाराज के मुँह से उक्त प्रश्न सुनते ही सारे सभासद् डर के मारे कापने लगे। क्योंकि उन लोगों ने महाराज के हुक्म की अदुली की थी। परन्तु जब किसी ने भी प्रश्न का प्रत्युत्तर नहीं दिया और सब नीचा मुँह करके बैठ गए तब महाराज ने पुन उन लोगों से पूछा—अरे! तुम लोग चुप क्यों होगए! अब जबाब क्यों नहीं देते हो? आखिर! बात क्या है? कुछ तो मुँह से जबाब दो!

जब महाराज के मुँह से उत्तेजनात्मक शब्द सुने तब सब लोगों ने सोचा कि अब तो सब कुछ सत्य सत्य कह देना चाहिए अन्यथा महाराज नाराज हो जायेंगे। तब उन लोगों ने खडे होकर विनम्रता पूर्वक कहा—महाराज! आपने तो एक वर्ष पूर्व फर्मा दिया था कि मुझे शाही लिबास में ही जला देना परन्तु जब आपका हार्ट फैल होगया और आपके अग्नि सस्कार की तैयारियां करने लगे तो सबने मिलकर विचार किया—नए राजा को पहिनाने के लिए इससे बढ कर वस्त्राभूषण नहीं है अतएव सर्व सम्मति से यह निश्चय किया गया कि महाराज के शरीर पर धारण की हुई सारी अमूल्य चीजें उतार लेनी चाहिए और उनके स्थान पर वैसी ही नकली चीजें धारण करा देनी चाहिए। इससे अमूल्य चीजें राख होने से भी बच जायेंगी और नए राजा को पहिनाने के काम में भी आ जायेंगी। अतएव इसी विचार से आपके शरीर पर नकली वस्त्राभूषण धारण करा दिए हैं। हे अन्न-दाता! आप हमारी इस हुक्म अदुली को क्षमा करेंगे।

यह सुनते ही महाराज के दिल मे बडा विचार उत्पन्न होगया। उन्होंने सोचा कि ओहो! यह ससार भी कितना स्वार्थी है। जब तक शरीर मे प्राण है तभी तक हम ससारी पदार्थों को अपना कह सकते है। परन्तु मरने के पश्चात् इस ससार मे मेरा कोई नहीं है।

अतएव इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने एक दोहा बनाकर अपने आंतरिक भाव प्रकट कर दिए।

उस दोहे में ससार की निस्सारता वताते हुए कहा गया है कि —

*खाया सो तो खो दिया, और दिया सोई सत्थ।*
*जसवत घर पोढाविया, माल पराए हत्थ ॥*

अर्थात्—इस ससार में सब नाशवान पदार्थ हैं। जो अपने उपभोग मे ले लिया गया है वह तो खोए हुए के समान है परन्तु जिन पदार्थों का दूसरों के लिए उपयोग हो चुका है खिला दिया गया है वही साथ में चलने वाला है। क्योंकि मरने के बाद उसी सम्पत्ति पर दूसरों का अधिकार हो जाने वाला है और उनमे से इस आत्मा के साथ कुछ भी चलने वाला नहीं है। इसलिए जीवित दशा में अपने हाथ से जो परोपकार मे द्रव्य खर्च कर दिया जाता है वही अपने साथ चलने वाला माना जा सकता है। बाकी मेरा मेरा करना सब व्यर्थ की बातें हैं

भाई! आपने शेखावाटी के निवासी श्री सोहनलालजी दूगड का नाम तो अच्छी तरह सुना ही होगा। उनका सारा जीवन प्राय. कर सट्टे मे ही निकला है। उन्होंने अपने जीवन मे लाखों नहीं परन्तु करोड़ों ही रुपया कमाया है। परन्तु उदारता भी उनके जीवन मे कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने अभी तक एक करोड से भी अधिक का दान दे दिया है। अपने द्वार पर आए हुए को निराश नहीं करना ही उनके जीवन का मूल-मत्र है।

एक समय जब वे कलकत्ते में निवास कर रहे थे तो उनसे किसी ने प्रश्न किया कि सेठजी! आपके पास कितनी सम्पत्ति है? तब उन्होंने प्रश्नकर्ता के प्रश्न का जवाब देते हुए कहा—भाई! जो

कुछ मैंने अपने हाथ से शुभ कार्य मे दे दिया है वही मेरी निज की सम्पत्ति है और वही सम्पत्ति मेरे साथ जाने वाली है। बाकी जो सम्पत्ति वर्तमान मे मेरे अधिकार मे है वह मेरी नहीं है। वह यहीं रह जाने वाली है और उसका दूसरा ही उपभोक्ता बनने वाला है। कहिए! उन्होंने कितनी मार्मिक बात कह डाली! और वास्तव में देखा जाय तो इन्सान जो कुछ भी अपने हाथों से परोपकार में सम्पत्ति का सदुपयोग कर देता है वही उसकी निज की सम्पत्ति है। इसके अतिरिक्त उसके साथ कुछ भी चलने वाला नहीं है।

तो दूगडजी के तो इस प्रकार के विचार हैं परन्तु आपके शायद ये विचार होंगे कि हमने अपने पुरुषार्थ के द्वारा जो सम्पत्ति एकत्रित कर तिजोरियों मे बंद कर दी है वही हमारी है और जो कुछ दूसरों को खिला दिया है या परोपकार मे खर्च कर दिया है वह हमारी नहीं है। परन्तु इस प्रकार का यदि आप लोगों का विचार है तो वह मिथ्या है और भ्रांति है। भाई! आपके साथ वही सम्पत्ति जाने वाली है जिसका आपने परोपकार में सदुपयोग कर दिया है और उसी के जरिए आप अगले जन्म मे मालामाल बन सकते हैं।

देखो! जब मैंने जयपुर मे चातुर्मास किया था तो किसी कारण से सेठ सोहनलालजी का संतों के पास आना जाना कम होगया था। हो सकता है शायद किसी ने कुछ बोल दिया होगा और बड़े आदमियों के कान भी कच्चे हुआ करते हैं। तो पैसे वालों को कुछ सुन लेने पर मान भी हो जाया करता है जब किसी ने मुझ से पूछा कि महाराज! आजकल सेठजी नहीं आते हैं! तब मैंने उससे कहा– भाई! मैं ही स्वय इसके लिए कोशिश करूँगा इस प्रकार जब मैं जगल गया तो एक दिन उधर ही उनसे मुकाबला होगया। तब बात

चीत के दौरान में मैंने उनसे कहा—सेठजी ! आप भी दूगड़ हैं और संसार पक्ष में मैं भी दूगड़ हूँ। इसलिए आपको किसी के कहने पर किसी प्रकार का विचार कर आना जाना बन्द नहीं कर देना चाहिए। बस ! उनके हृदय से वह मलाल और गलत फहमी दूर होगई और उन्होंने आना जाना प्रारभ कर दिया।

भाई ! दूगडजी पहिले केवल तेरहपथी आचार्य श्री कालूरामजी स्वामी के ही अनन्य भक्त थे। वे उस समय तक किसी दूसरे साधु के पास नहीं जाते थे। परन्तु एक समय जब स्व० आचार्य श्री जवाहरलालजी म० का यहां शुभागमन हुआ तो स्वप्न में इन्हें किसी ने संकेत किया कि "साहनलाल ! तेरे यहा आचार्य श्री आए हुए हैं और तू उनकी सेवा में नहीं जाता !" इस आवाज को सुनकर वे म० श्री के पास आने जाने लगे।

और जब वे मेरे पास पुन आने जाने लगे तो एक दिन मैंने उनसे कहा—सेठजी ! आपने बहुत से साधुओं के दर्शन तो किए हैं परन्तु अभी तक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० के दशन नहीं किए हैं अतएव अवश्य ही एक बार दर्शन करने का समय निकालिए और अभी अभी कोटे में म० श्री की जयती मनाई जाने वाली है अतएव उनसे मिलने का और दर्शन करने का यह सबसे अच्छा मौका है। इसलिए आपको ऐसे मौके पर अवश्यमेव पहुँच जाना चाहिए।

मेरे कहने पर सेठजी ने कहा-महाराज ! आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही करने को तैयार हूँ। मैं अवश्य ही म० श्री के दर्शनार्थ कोटा जाऊँगा। तो जब वे जाने वाले थे उससे पूर्व वे मेरे पास आए और कहने लगे महाराज ! मैं कल कोटा के लिए रवाना होने वाला हूँ परन्तु मेरा भाई बीमार है ! अब मुझे ऐसी परिस्थिति में

क्या करना चाहिए ? तब मैंने कहा—आप किसी प्रकार की चिंता न करें। सब कुछ ठीक हो जाएगा।

वे फिर दूसरे दिन मेरे पास मोटर में बैठ कर आए और कहने लगे—महाराज ! आज मैं कोटा जारहा हूँ। फिर दूसरे लोगों से कहने लगे—मैं महाराज श्री को जयपुर लाने के लिए आप लोगों की तरफ से विनती करूँगा। तब सब लोगों ने कहा—हां-हा सेठजी ! आप अवश्य ही जोरदार विनती करके जयपुर फरसने की मजूरी लेकर पधारें।

इस प्रकार सेठजी रवाना होकर कोटा पहुँच गए। उस वर्ष कोटा मे तीन सम्प्रदाय के साधुओं का चातुर्मास था। परन्तु तीनों ही सम्प्रदाय के साधुओं के दिलों मे संगठन का वह प्रेम बीज अकुरित होगया था कि तीनों ही सम्प्रदाय के साधु एक साथ बैठ कर मानव मेदिनी के सामने उपदेश फर्माते थे। भाई ! मैंने सेठजी से जाते वक्त यह भी कह दिया था कि कोटा में इस साल तीन का सम्मेलन है परन्तु अगले साल तुम जयपुर में चार सम्प्रदाय के महारथियों को चातुर्मास करवाने का प्रयत्न करना।

जब सेठजी कार के द्वारा कोटा पहुँचे तो स्थानीय लोगों ने इनका भव्य स्वागत किया। दूसरे दिन वे व्याख्यान श्रवण करने के लिए गए। उन्होंने व्याख्यान समाप्त हो जाने पर खड़े होकर कहा—महाराज ! हीरालालजी म० ने फर्माया है कि आप जयपुर अवश्य पधारें ! इस प्रकार विनती करके अपने निवास स्थान पर आगए। वे वहां तीन चार दिन तक ठहरे। इसी बीच में उन्होंने म० श्री से बातचीत की और सेवा का लाभ भी लेते रहे। म० श्री की तर्क शक्ति वाक्पटुता तथा तपस्तेज से वे इतने प्रभावित होगए कि उन्होंने एक बार और म० श्री से कहा कि—महाराज ! अब आप मेरे कहने से

विनती स्वीकार कर लीजिए और जयपुर को पावन कीजिए। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि म० श्री जयपुर नहीं पधार सके और चातुर्मास के बाद ही उनका वहां स्वर्गवास होगया।

परन्तु मेरे कहने का यहां मतलब यही है कि यदि आप यहां दोगे तो आगे के लिए वही रिजर्व बैंक मे जमा हो जाएगा। जैसे किसान उदारता पूर्वक खेत मे बीज डाल देता है परन्तु वह बिखेरा हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता। उसका कई गुना अन्त समय आने पर धरती माता से बदले मे मिल जाता है। तो इसी प्रकार परोपकार में खर्च किया हुआ द्रव्य भी भविष्य मे तुम्हारे साथ चलने वाला है। इसके अलावा लाखो-करोड़ों की सम्पत्ति यहीं रह जाने वाली है।

तो उक्त दृष्टान्त के द्वारा मैं आप लोगों को यह बात बतलाने जारहा हूँ कि किस प्रकार बिना विचारे कार्य करने से मनुष्य को पश्चाताप करना पड़ता है।

हां, तो मैं कह रहा था कि सेठ ने वह आम तो ले लिया परन्तु वह विचारने लगा कि यदि मैं इसे खा लूँगा तो इससे दुनिया को क्या लाभ पहुँचने वाला है। परन्तु यदि इस आम को मैं अपने देश के राजा को दे दूँगा तो मेरी प्रतिष्ठा भी बढ़ जायेगी और राजा के सदैव निरोग रहने पर उसके द्वारा प्रजा का कल्याण हो सकेगा। यह विचार कर उसने उस आम को हिफाजत के साथ अपने पास रख लिया।

इस प्रकार वह सेठ कई देशों मे व्यापार करता हुआ और काफी धनराशि कमा कर स्वदेश को लौट पड़ा। जब उसका जहाज भद्र गांव के निकट पहुँचा गया तो दरिया के किनारे लगर डाल दिए गए। सेठ जहाज से नीचे उतरा और कीमती वस्त्राभूषण धारण कर

अपने कर्मचारियों के साथ राजा की सेवा में आम्र फल भेंट करने के लिए रवाना होगया। उसने उस आम को एक रत्न जटित रकेबी में रख दिया। जब वह राज महल के निकट पहुँच गया तो उसने बहुत स थालों को मिष्टान्न, मेवा, फल, फूल और वस्त्राभूषणों से सुसजित किए और उन्हें अपने आदमियों के हाथ मे देकर राज्य सभा मे प्रविष्ट हुआ। दरबार हॉल मे पहुँचते ही उसने राजा को विधिवत प्रणाम किया और भेंट की वस्तुओं से सजे हुए थाल राजा के सामने रख दिए गए। सेठ ने राजा को भेंट इसलिए भी दी कि राजा उससे प्रसन्न होकर माल पर लगने वाली चुंगी माफ कर दे।

जब राजा की दृष्टि अन्य भेंट की वस्तुओं के साथ साथ रकेबी में रखे हुए आम्र फल की ओर पडी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने अपने मन में विचार किया कि सेठ ने एक ही आम रखकर कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं किया है। क्योंकि आम तो काफी तादाद मे मिल सकते थे। फिर इसने इस रकेबी मे केवल एक ही आम क्यों रखा है। यह विचार कर राजा ने सेठ से प्रत्यक्ष में पूछा—सेठजी! आपने अन्य वस्तुओं के साथ साथ सिर्फ एक ही आम भेंट मे कैसे रखा? क्या इसमें भी कोई रहस्य हो सकता है?

तब सेठ ने प्रत्युत्तर मे हाथ जोड कर कहा—हां! महाराज! अपनी शानी का यह सिर्फ एक ही आम है। यह दिखने में तो अवश्यमेव अकेला ही नजर आरहा है परन्तु इसमें विशिष्ट गुण रहा हुआ है। अन्नदाता! इस आम की भी विचित्र कहानी है। जब मेरा जहाज बीच दरिया मे पहुँच चुका था तब अचानक मुझे आकाश मे एक तोता उडता हुआ दिखाई दिया। मैं उसकी तरफ टक टकी लगा कर देखने लगा। परन्तु मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह थक चुका है घबरा रहा है और अभी दरिया मे गिर कर मर जाने

वाला है। तब मैंने दया लाकर उसके प्राण बचाने की दृष्टि से उस पर अपना डुपट्टा फैंक दिया। वह डुपट्टे पर गिर पड़ा। फिर मैंने उसे बड़ी होशियारी से अपनी ओर खींच लिया। उसका उपचार किया गया और वह थोडी देर बाद होश में आगया। इस प्रकार मैंने उसके प्राणों की रक्षा की। जब वह तोता होश में आगया तो उसने मेरी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा। वह अपनी चौंच में दो आम भी लाया था जिन्हें उसने मेरे सामने डाल दिए। तब उनमे से उसने एक आम उठाया और कहने लगा—सेठजी! आज आपने मेरे ही प्राणों की रक्षा नहीं की है वरन मेरे वृद्ध माता-पिता के प्राणों की भी रक्षा कर ली है। मैं इसका बदला किसी प्रकार भी चुकाने में असमर्थ हूँ। परन्तु फिर भी इस उपकार के वदले मे मैं यह आम आपको दे रहा हूँ। इसमें एक विशेष गुण है और वह यह है कि जो कोई अधा व्यक्ति इसे खाले तो नेत्र ज्योति प्राप्त कर ले और असाध्य से असाध्य बीमारी वाला व्यक्ति भी इसे खाकर हमेशा के लिए स्वस्थ बन सकता है। इस गुणकारी आम को मैंने संत-महापुरुषों की वदौलत प्राप्त किया है। अतएव आप यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर मुझे अनुग्रहीत करें।

इसे प्रकार हे राजन्! उसके अत्याग्रह करने पर मैंने इस आम को स्वीकार कर लिया। मैंने इसे ले तो लिया परन्तु मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि यदि मैंने इसे खा लिया तो मेरे द्वारा दुनिया का भला नहीं हो सकेगा। अतएव मुझे इस गुणकारी आम्र फल को महाराज की सेवा में भेंट कर देना चाहिए। ताकि वे हमेशा के लिए निरोग रह कर प्रजा की विशेष रूप से भलाई कर सकेंगे।

सो इसी दृष्टिकोण से मैं यह आम आपकी सेवा में लेकर हाजिर हुआ हूँ। आशा है आप इसे स्वीकार कर प्रजा की बहुत दिनों तक भलाई करते रहेंगे।

सेठ के आग्रह भरे वचनों को सुनकर राजा ने उस आम को ग्रहण कर लिया और उसके बदले मे प्रसन्न होकर राजा ने सेठ को कर से मुक्त कर दिया। सेठ महाराज से बिदा होकर अपने स्थान को लौट आया।

इधर राजा ने उस आम को लेकर अपने मन में विचार किया कि सेठ ने तो मुझे यह आम परोपकार की दृष्टि से लाकर दिया है परन्तु अब मेरा क्या फर्ज है इस विषय मे भी तो मुझे सोचना चाहिए। देखो! सेठ कितना परोपकारी है जिसने इस आम को स्वय नहीं खाकर प्रजा की भलाई के लिए मुझे खाने को दिया है! अन्यथा ऐसी अनमोल चीज कब किसी को देता है! यह तो सेठ की ही परोपकारमय वृत्ति है जिसने मुझे लाकर भेंट कर दिया। परन्तु अब यदि इसे मैं स्वयं खा लेता हूँ तो इसका गुण यहीं तक समाप्त हो जाएगा। इसका लाभ हरेक अस्वस्थ और नेत्र हीन को प्राप्त नहीं हो सकेगा और फिर मैं तो प्रजा रक्षक कहलाता हूँ अतएव मेरा फर्ज है कि मैं ऐसा उपाय करूँ जिससे इसका लाभ सारी प्रजा उठा सके. और इसके लिए मुझे ऐसा करना चाहिए कि इसे जमीन मे उगवा देना चाहिए ताकि बडा होने पर जब इसमें अनेक फल लग जायेंगे तो अधिक से अधिक लोग फायदा उठा सकेंगे। इस प्रकार अनेक दु.खी लोगों के दुख निवारण हो जायेंगे।

देखो! सेठ की परोपकारी भावना के जरिए राजा की भावना भी विशुद्ध होगई। उसका दिल भी विशाल होगया। उसने स्वार्थ-वृत्ति को छोडकर सामूहिक उपकार की भावना पर दृष्टिपात किया। तो राजा की भावना फल वढाने की हुई न कि स्वय खाकर उसे समाप्त कर देने की।

राजा ने इसी दृष्टिकोण से अपने बागवान को बुलवाया और उसे हिदायत की कि देखो! जमीन को उत्तम खाद डाल कर तैयार करो और जब जमीन तैयार हो जाय तो शुभ मुहूर्त में इस आम्रफल को बो देना। इस प्रकार पानी देते हुए जब उसमें से अंकुर निकल आए तो फौरन मुझे सूचना देना।

उस माली ने राजा के द्वारा दिए हुए आम फल को ग्रहण कर लिया और जमीन को उसके उपयुक्त तैयार करके शुभ मुहूर्त में उसे बो दिया। इस प्रकार दो चार दिन समय पर पानी पिलाते हुए जब उसमें से अंकुर निकल आया तो उसने फौरन राजा की सेवा में पहुँच कर खुश खबरी सुना दी। राजा भी इस खुशी के समाचार को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह अपने राजकर्मचारियों के साथ वहां पहुँचा और उसे अंकुरित हुआ देखकर उसका दिल बाग बाग होगया उसे अपनी आशा फलवती होती हुई नजर आने लगी। उसने माली से कहा—देखो! इसकी रक्षा अपने प्राणों से भी अधिक तवज्जे के साथ करना और जब इसमें फल लगने लगें तो इसकी सूचना मुझे आकर देना। राजा सूचना देकर अपने स्थान को लौट आया। वह माली भी राजा की आज्ञानुसार उस आम्र वृक्ष को सर्दी, गर्मी वगैरह से अच्छी तरह रक्षा करने लगा। वह भी इसी इन्तजारी में समय व्यतीत करने लगा कि कब इसमें फल लगें और कितनी जल्दी राजा को खुश खबरी सुना कर इनाम ग्रहण करूँ।

अब किस प्रकार उस आम्र वृक्ष में फल लगते हैं और किस प्रकार राजा बिना विचारे कार्य करने पर पश्चाताप करता है यह सब कुछ आगे सुनने से ज्ञात हो सकेगा।

भाई! बिना विचारे कार्य करने से मनुष्य को हमेशा के लिए पछताना पड़ता है। इसलिए प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करने से पहिले

उसके अच्छे और बुरे अंजाम को जरूर सोच लेना चाहिए। इस प्रकार सोच विचार कर यदि आप अपने जीवन मे कार्य करेंगे तो पश्चाताप नहीं करना पडेगा और इस लोक तथा परलोक मे सुखी बन जायेंगे।

बैंगलोर (केन्टोन्मेन्ट)
ता० २६-८-५६
बुधवार



# ✻ सच्चे-गुरु ✻

卐

*भिन्ने भकुंभगल दुज्ज्वल शोणिताक्त,*
*मुक्ता फल प्रकर भूषित भूमि भाग ।*
*बद्धक्रम. क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,*
*नाक्रामति क्रम युगाचल संश्रित ते ॥*

卐

भाइयो ! संसार में सच्चे गुरुओं का समागम होना भी महान दुर्लभ है। जिसके अखूट पुण्य होते हैं उसी को सच्चे गुरु के दर्शन तथा उनकी वाणी का परम लाभ प्राप्त होता है। वेषधारी साधु तो संसार में अनेक मिल जायेंगे परन्तु सच्चे त्यागी, निस्वार्थी और एकान्त परमार्थी साधु तो विरले ही दिखाई देंगे।

सच्चा गुरु वही कहलाता है जो परम वैराग्य के साथ अपनी लाखों-करोडों की संपत्ति को नाक के मैल के समान तथा माता-पिता पुत्र-पुत्री, स्त्री, मित्र और अन्य कुटुम्बी जनों के मोह को क्षणमात्र में त्याग कर वीतराग देव के धर्म मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार विश्व बन्धुत्व की भावना को अपनी आत्मा में ओत-प्रोत कर संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक पैदल विहार कर वह सच्चा

गुरू ससारी जीवों को उपदेशामृत का पान कराकर अपना और दूसरों का कल्याण करता है। वह अपने आत्मोत्थान के साथ-साथ दूसरों को भी मोक्ष की राह पर लाकर खड़ा कर देता है।

परन्तु आज के युग मे आपको सच्चे गुरुओं के दर्शन मुश्किल से प्राप्त होंगे। क्योंकि आज के साधु, साधु नहीं रह कर स्वादु बन गए हैं। आज कई लोगों ने तो अन्नाभाव के कारण या सरकार के कानून की गिरफ्त से अपने आपको बचाने के लिए साधु वेष धारण कर लिया है। तो इस प्रकार के वैराग्यहीन वेषधारी साधु अपने आपको तो धोखा देते ही हैं परन्तु अपने काले कारनामों के द्वारा समाज की निगाहों मे भी कलंकित और दोषी साबित हो रहे हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वे जितने अपराधी हैं उससे कहीं अधिक अपराधी शिष्य लोलुपी गुरू हैं जो बिना परीक्षा किए ही ऐसे लपटी, विषयी और दुराचारियों को शिष्यत्व पद स्वीकार करा कर अपना अहोभाग्य समझते हैं। किंतु जब उसी विष वृक्ष के जहरीले फल लगते हैं तो उन गुरुओं को भी समाज में अपमानित होकर अपने किए पर पश्चाताप करना पड़ता है।

तो मैं कह रहा था कि संसार मे समाज का कल्याण करने वाले परोपकारी सच्चे गुरुओं की संख्या दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। फिर भी आज के जमाने में जो सच्चे गुरू हैं उनकी बदौलत ही समाज का आत्म-कल्याण हो रहा है। आज की विषम परिस्थिति में सच्चे गुरुओं की नितान्त आवश्यकता है।

आज हम देख रहे हैं कि समूचे ससार में राग द्वेष का दावानल प्रज्जवलित होरहा है। एक देश दूसरे देश का संहार करने पर तुला हुआ है। चारों तरफ घृणा, द्वेष, अहमवृत्ति और एक दूसरे

को अपने आधीन करने के बादल मडरा रहे हैं। ऐसी भीषण परिस्थिति मे यदि दुनिया को सच्ची राह दिखा सकते हैं तो वे सच्चे गुरू ही हो सकते है। वे परमार्थी सत ही अपने त्यागमयी वचनों के द्वारा दुनिया को रागद्वेष, घृणा, अहमूभाव और एक दूसरे को हथियाने की आग से बचा कर प्रेम, संगठन और शांति की अमर छाया मे ला सकते है।

आज ससार में हम जो यत्किंचित सदाचार, प्रेम, सगठन, धर्म भावना, श्रद्धा-भक्ति आदि सद्विचारों के दर्शन करते है यह सब कुछ सच्चे गुरुओं की ही कृपा का फल है। यदि ससार मे सच्चे गुरुओं का अभाव हो जाय तो समझ लो कि प्रलय-काल ही सन्निकट है।

तो सच्चे गुरुओं के दर्शन और उनकी पवित्र वाणी के द्वारा हम अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं। ऐसे सच्चे गुरु चिरकाल पर्यन्त ससार मे जीवित रहकर जगज्जीवों को अपने उपदेशामृत का पान कराकर सद्राह दिखाते रहें, यही शुभकामना करते हैं।

भक्तामर स्तोत्र के उक्त उनचालीसवें श्लोक मे भगवान ऋषभ देव की स्तुति करते हुए आचार्य श्री मानतु ग कह रहे हैं कि हे भगवन्! आपके नामस्मरण मे वह अद्भुत शक्ति है कि आठ महान भयों मे से यदि दूसरा शेर का भय किसी मनुष्य के सामने उपस्थित हो जाय तो सच्चे हृदय से आपका स्मरण करते ही वह क्रूर सिंह भी आक्रमण की भावना का त्याग कर पालतू कुत्ते की तरह सीधा बन जाता है।

हे प्रभो! विदीर्ण हाथियों के मस्तकों से जो खून भरे हुए उज्जवल मोती गिरते हैं उनके समूह से जिसने पृथ्वी के भा

शोभित कर दिए हैं ऐसा तथा आक्रमण करने के लिए बाधी है चौकडी (छलाग) जिसने ऐसा सिंह भी पजे में पडे हुए आपके दोनों चरण रूपी पर्वतों का आश्रय लेने वाले मनुष्य पर आक्रमण नहीं कर सकता है। अर्थात्—आपके चरणों का आश्रय लेने वाले भक्त-जनों पर भयानक सिंह भी आक्रमण नहीं कर सकता है।

तो उक्त श्लोक मे आचार्य श्री के कहने का यही आशय है कि यदि कोई व्यक्ति जगल मे जा रहा है परन्तु उस भयानक अटवी मे उसे सामने से आता हुआ एक सिंह जिसने अपने नाखूनों से हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर दिया है और उसके मस्तक मे से खून तथा मोतियों के विखरने से आस-पास की जमीन भर गई है, तो ऐसा क्रोधित सिंह भी यदि उस राहगीर के ऊपर आक्रमण करने को झपटता है परन्तु उस व्यक्ति के उस समय भगवान के चरण रूपी पहाड़ों का आश्रय लेने पर वह उद्धत सिंह आक्रमण की भावना को छोडकर उसे रास्ता दे देता है। कहिये! भगवान के नाम स्मरण मे कितनी अद्भुत शक्ति विद्यमान है!

भाई! सच्चे हृदय से भगवान का नाम स्मरण करने से यदि कोई व्यक्ति खूख्वार शेर के आक्रमण से बच जाता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जबकि भगवान की वाणी रूपी पहाड़ी का आश्रय लेने पर तो कोई भी मनुष्य कर्म रूपी शेर के आक्रमण से भी सदा के लिए मुक्त हो जाता है। तो भगवान का नाम मनुष्य को कर्म वन्धनों से छुड़ाकर अजर-अमर पद दिलाने वाला है।

देखो! सिंह भी ससार मे एक खूख्वार प्राणी है। वह जगल का राजा कहलाता है। जब वह भूखा होता है या दूसरे व्यक्ति के द्वारा छेड़ा जाता है तभी वह किसी पर आक्रमण करता है अन्यथा यदि कोई उसके पास से होकर भी गुजर जाता है तब भी वह कुछ

नहीं कहता। परन्तु यदि जंगल में जाते हुए ऐसी विकट परिस्थिति उपस्थित भी हो जाय तो उस समय भगवान का नाम सच्चे हृदय से लेने पर वह सिंह आक्रमण का इरादा त्याग कर शांत भाव से पड़ा रहता है।

एक सच्ची घटना का वर्णन जिसे स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने अपनी कविता मे किया है वही आपको सुनाने जा रहा हूँ।

*लक्ष्मीचंद ख्यात, रामपुरा जात, बिच सिंह वद जात से भेट भया।*
*गिनके नवकार, मारी ललकार, सिंह भगा जिवार, काम सिद्ध किया॥*

मालवा प्रान्त मे रामपुरा एक शहर है। वहां लक्ष्मीचन्दजी रहते थे वे कजेडे से रामपुरा घोड़े पर सवार होकर आ रहे थे ज्यों ही वे जगल मे से होकर गुजरे उन्हे दूरी पर रास्ते मे बैठा हुआ एक शेर दिखाई दिया और ज्योंही घोड़े को शेर की बू आई त्योंही वह वहीं रुक गया। वह बहुतेरा प्रयत्न करने पर भी अपने स्थान से टस से मस भी नहीं हुआ। तब सेठ ने इधर-उधर दृष्टि डाली और उसे कुछ दूरी पर एक शेर बैठा हुआ दिखाई दिया। उसे देखते ही सेठ ने घोड़े के रुकने का कारण समझ लिया। अब सेठ ने सोचा कि आज तो हम दोनों के प्राण चले जायेंगे।

परन्तु सेठ को भगवान के नाम पर पूर्ण रूप से श्रद्धा थी और आत्म विश्वास भी था। अतएव उसने उस समय भगवान को अत करण से याद किया और साहस पूर्वक शेर को ललकार कर कहा— वनराज! मेरे चउविहार का नियम है और रामपुरा पहुँचना जरूरी है। अतएव या तो तुम मुझे रास्ता दे दो या मुझे मार दो। इतना बोलते ही शेर अपने स्थान से उठ कर जगल में चला गया।

इस प्रकार जब सेठ ने देखा कि भगवान के नाम से शेर ने रास्ता साफ कर दिया है तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुए और आनन्द पूर्वक अपने स्थान को चले गये। जब वह सुरक्षित रूप से अपने घर पहुँच गये तो उन्होंने उक्त सारी घटना महाराज श्री को कह सुनाई। सेठ के मुँह से उक्त घटना का वर्णन सुनकर महाराज श्री ने उसे कविता बद्ध कर दिया।

तो भगवान का नामस्मरण करने से द्रव्य शेर तो शांत हो ही जाता है परन्तु भगवान की वाणी का आश्रय लेने से तो मृत्यु रूपी शेर भी वश में हो जाता है। भाई! काल रूपी शेर जिस समय आक्रमण करने आएगा उस समय भी भगवान का नाम ही तुम्हें बचाने मे समर्थ हो सकेगा। भगवान की वाणी का आश्रय लेकर तुम हमेशा के लिए मृत्यु रूपो सिंह को पराजित कर सकते हो।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के तेरहवें अध्ययन की बाईसवीं गाथा में शास्त्रकारों ने भगवान के नामस्मरण की शक्ति का वर्णन करते हुए कहा है कि —

*जहहे सीहो व मियं गहाय, मच्चु नरं नेइ हु अन्त काले।*
*न तस्स माया, व पिया व भाया, कालम्मि तम्म सहराभवन्ति ॥*

उक्त गाथा मे बताया गया है कि ऐ मानव! तू जिस परिवार मे रह रहा है और जिन माता पिता, पुत्र, स्त्री, भाई, बहिन आदि कुटुम्बी जनों को मेरा-मेरा कह रहा है परन्तु अन्त समय में जब काल रूपी शेर आकर तुझ पर आक्रमण करेगा और तेरा गला दबोचेगा तब इनमे से कोई भी तेरा मददगार नहीं होगा। जैसे जंगल में बहुत से मृग रहते हैं और वे सब सामूहिक रूप से स्वतंत्रता पूर्वक चौकड़ी भरते हुए विचरण करते हैं। परन्तु जब कोई सिंह

अपने शिकार की तलाश में घूमता हुआ मृगों की टोली में किसी एक मृग को बरबस पकड़ कर ले जाता है उस समय वह मृगों की सारी टोली भी अपने साथी को शेर के चंगुल से बचाने मे असमर्थ हो जाती है। क्योंकि वे सब मिलकर भी शेर की शक्ति के सामने नहीं टिक सकते। इस प्रकार वह शेर अपने शिकार को ले जाकर अपनी क्षुधा की पूर्ति कर लेता है।

तो ठीक इसी प्रकार जब इस आत्मा रूपी मृग को काल रूपी शेर पकड़ कर ले जाएगा उस समय सारा परिवार मिलकर भी अपने प्रिय स्वजन को बचाने में असमर्थ हो जाएगा। परन्तु हां! ऐसे समय पर जो भगवान की शरण मे चला जायगा और भगवान का नामस्मरण करेगा वह अवश्यमेव काल रूपी शेर के भय से निर्भीक बन जाएगा और एक दिन उस पर विजय प्राप्त कर लेगा।

तो भगवान के नाम में इस प्रकार की शक्ति रही हुई है। जो मानव भगवान का नाम सदैव अंतःकरण मे धारण किए हुए रहता है उस पर काल रूपी शेर का कभी आक्रमण ही नहीं होने पाता। तो भगवान का नाम सब प्रकार के भयों को मिटाने वाला है और ऐसी ही शक्ति के धारक भगवान ऋषभदेव थे। अतएव उन्हीं भगवान के चरणों मे हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

आज मैं आपके समक्ष पुनकुला नामक ग्रन्थ की दूसरी गाथा के भावार्थ को समझाने जा रहा हूं। वह निम्न प्रकार है.—

*जिन चरण-कमल सेवा, सुह गुरु पाय पज्जुवासणाचेव।*
*सज्झाय वावऽत्त, लब्भन्ति पभूय पुन्नेहिं ॥ २॥*

कल मैं आपके समक्ष इसी ग्रन्थ की प्रथम गाथा के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन कर चुका था। उसमें बताया गया था कि जिन

आत्मा के पूर्वोपार्जित अखूट पुण्य होते हैं उसी को मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल-जाति, पांचों इन्द्रियों की पूर्णता एवं निरोगता और तीर्थङ्कर भगवान का धर्म आदि छ बातें सहज भाव में प्राप्त हो जाती हैं।

अब उक्त गाथा मे आचार्य श्री बता रहे हैं कि जिनेश्वर भगवान के चरण-कमल की सेवा भी उमी मनुष्य को प्राप्त होती है जिसके अखूट पुण्य होते हैं। मैं आपको पहिले बता चुका हूँ कि जिन भगवान भी तीन प्रकार के होते हैं—अवधि ज्ञानी जिन, मन. पर्यवज्ञानी जिन और केवल ज्ञानी जिन। और तीनों प्रकार के ज्ञानी जिन भगवान की सेवा उस पुण्यशाली मानव को प्राप्त हो जाती है। अन्यथा पुण्यहीन प्राणियो को जिन भगवान की सेवा का लाभ होना महान दुर्लभ है। परन्तु धन्य है भगवान गौतम स्वामी को जिन्हें भगवान महावीर जैसे गुरु की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तो अखूट पुण्य से ही जिन भगवान की सेवा का परम लाभ प्राप्त होता है।

इसके बाद बताया गया है कि सद्गुरु के चरणों की सेवा मिलना भी परम दुर्लभ है। जिसके अखूट पुण्य होते हैं उसी को सद्गुरु के चरणों की सेवा का परम लाभ प्राप्त होता है। भाई! गुरु शब्द के पहिले सद् उपसर्ग लगाने से सद्गुरु होगया जिसका अर्थ होता है सच्चे गुरु। तो संसार मे गुरु नाम धराने वाले और साधु-वेष धारण करने वाले तो बहुत मिल जायेगे परन्तु सच्चे गुरु तो बहुत थोडे ही मिलेगे। ऐसे तो आज भारतवर्ष मे गुरु नाम धराने वालों की सख्या बावन लाख की मानी गई है परन्तु उनमे से अधिकाश वेषधारी गुरु ऐसे हैं जिनके पास दुनियादारों की तरह स्त्री, पुत्र, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़े, शस्त्र, जमीन, जायदाद, मठ,

रुपिया-पैसा वगैरह सब कुछ मौजूद है परन्तु फिर भी वे दुनिया के सामने गुरुओं की श्रेणि मे सुशोभित होरहे हैं। मैं पूछूं आप से कि जब वे गुरु दुनिया वालों की तरह ही मोह-माया मे फसे हुए हैं तब फिर वे भक्तजनों का उद्धार कैसे कर सकते हैं? दुनिया का उद्धार करने में तो निस्स्वार्थी गुरु ही समर्थ हो सकते हैं।

भाई! वेषधारी गुरुओं का सिर्फ यही सिद्धान्त रहता है कि—

*कान्य-मान्या कुर तू चेला मैं गुरं।*
*रुपिया, नारियल धर, चाहे डूबे चाहे तरं॥*

तो इस प्रकार का कानों मे गुरु मत्र सुनाने वाले गुरुओं की ससार में कमी नहीं है। परन्तु वास्तविक आत्म कल्याण का मत्र सुनाने वाले सच्चे गुरु तो थोड़े ही मिलेंगे। वे नाम धारी स्वार्थी गुरु थोडी-सी भेंट मिल जाने पर एक पापी से पापी व्यक्ति को भी स्वर्ग और मोक्ष की चिट्ठी काटते देर नहीं करते। बस! जिसे अपना उद्धार कराना हो वे ऐसे वेषधारी गुरुओ के चरणों मे भेंट लाकर रख दें। भेंट प्राप्त होते ही वे तुम्हारा उद्धार कर देंगे। परन्तु जिनके पास भेंट देने को कुछ भी नहीं है तो उद्धार नहीं हो सकता। उसकी आत्मा तो ससार में भटकती ही फिरेगी। तो ऐसा सिद्धान्त बना कर दुनिया को ठगने वाले तो बहुतेरे गुरु मिल जायेंगे परन्तु वास्तविक गुरु का नाम सार्थक करने वाले सत्गुरु तो बहुत थोडे मिलेंगे।

देखो! एक समय हमारे प्रधान मत्री प० श्री जवाहरलालजी नेहरु ने भी राजकोट मे मानव मेदिनी के बीच अपने भाषण के दौरान मे कहा था कि आज भारतवर्ष में साधु का वेष धारण कर गुरु कहलाने वाले तो बहुत बड़ी सख्या मे मौजूद हैं परन्तु वास्तव

में अन्तर्हृदय से साधुवृत्ति का आचरण करने वाले बहुत थोड़े हैं और इसी कारण उन वेषधारी साधुओं के काले कारनामों को देख-देख कर आज का शिक्षित वर्ग उनसे नफरत करने लगा है। वह उनके प्रति विश्वास रखने को भी तैयार नहीं है। आज हमारी भारत सरकार को भी बढ़ती हुई खाद्य समस्या की कमी को हल करने के लिए इन साधुओं के लिए कड़ा कदम उठा कर भिक्षा-बिल पास करना पड़ा। अब वे ही लोग भिक्षा वृत्ति से जीवन गुजार सकेंगे जिनके पास सरकार का प्रमाण पत्र होगा। अरे! आज के वेषधारी साधुओं की परिस्थिति देखकर तो कई मन चले यहां तक बोल देते हैं कि आज हमारे देश मे हट्टे-कट्टे साधुओं की एक बहुत बडी जमाअत मौजूद है। इन्हें देश रक्षा के लिए फौज मे भरती कर लेना चाहिए। क्योंकि ये लोग देश के लिए भार स्वरूप हैं। आज देश को इन वेषधारी साधुओं से जितना लाभ नहीं उससे कहीं अधिक नुकसान पहुँच रहा है।

परन्तु फिर भी मै कहूँगा कि दुनिया के लोगों को सही मार्ग पर लाने के लिए सच्चे गुरुओं की आवश्यकता रही थी, रही है और भविष्य में रहेगी। सच्चे गुरु का सारा जीवन ही ऐसा जीवन है जो अपने मन, वाणी और कर्म के द्वारा स्वय का कल्याण करते हुए दुनिया को भी सद् राह दिखाकर उन्नत अवस्था में ला सकता है। वे सत्गुरु अपनी पवित्र वाणी के द्वारा लोगों को गलत मार्ग से हटा कर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर करा देते हैं।

आज सरकार भी अपने कानून के द्वारा जिन-जिन बुराइयों को दूर कराने मे असमर्थ रहती है परन्तु उन्हीं बुराइयों को एक सत्गुरु अपने प्रेम, सद्भावना और उपदेश के द्वारा समाज के अंदर से दूर करना चाहता है। जबकि नामधारी साधुओं से देश, जाति और

समाज के कल्याण की आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि आज आए दिन हम समाचार पत्रों में पढ़ते है अमुक जगह अमुक साधु ने अमुक व्यक्ति से इतने हजार रुपये ठग लिए और अमुक साधु अपने साधु वेष में अमुक व्यक्ति की स्त्री को भगा कर ले गया अथवा अमुक व्यक्ति के बच्चे को उडा कर ले गया। इसी प्रकार अमुक साधु चोरी करके भाग गया। तो इन काली करतूतों के कारण आज का साधु समाज प्राय कर बदनाम सा होगया है और इन्हीं हरकतों से लोगों की भावनाओं में भी परिवर्तन होगया है। वे ऐसे नामधारी लम्पटी साधुओं से नफरत करने लगे हैं।

भाई! जो साधू साधू नाम धराकर भी इस प्रकार की बदमाशी के कार्य करते हैं वे समस्त साधु समाज को कलंकित और अपमानित करने का कार्य कर रहे है। वे एक प्रकार से सकल साधु समाज पर कुठाराघात कर रहे हैं। अरे! ससार मे लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि "एक मछली सारे तालाब को गदा कर देती है।" तो ऐसे नामधारी साधू अपने दुराचरण के द्वारा अपने प्रति तो समाज का विश्वास खोते ही जा रहे हैं परन्तु दूसरे सच्चे साधुओं को भी बदनाम कर रहे है।

अरे! विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं की तो बात जाने दीजिए परन्तु यदि हम अपने ही घर को टटोलें तो हमे ज्ञात होगा कि आज हमारी समाज मे भी कई ऐसे वेषधारी साधु मौजूद हैं जिन्होंने बाहर से साधुवेष को अवश्यमेव धारण कर रखा है परन्तु अतरग मे साधुता की तरफ लक्ष्य नहीं है। तो वे भी समाज की दृष्टि में अश्रद्धा के भाजन बन गए है।

परन्तु आज जो सद्गुरु अतर्हृदय से साधुता के रंग में रगे हुए हैं वे ही जनता की सच्चे हृदय से सेवा कर रहे हैं और उसे

गलत रास्ते से हटा कर सद्मार्ग पर लाने का सतत् प्रयत्न कर रहे हैं। अरे! सरकार तो भय दिखाकर ही जनता को सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न करती है परन्तु निस्स्वार्थी सत्गुरु तो प्रेम के द्वारा लोगों को हमेशा के लिए सदाचारी बना देते हैं।

एक समय जब स्व० जैन दिवाकरजी म० ने उदयपुर में चातुर्मास किया था तो वहां के महाराणा फतहसिंहजी ने भी एक दिन महलों मे व्याख्यान फर्माने के लिए म० श्री को आमत्रित किया। महाराज श्री महलों में व्याख्यान देने को पधारे। उस समय उपदेश देते हुए म० श्री ने राणाजी को सम्बोधित करते हुए कहा—राणाजी! आपके कानून तो राज्य की रक्षा कर ही रहे हैं परन्तु मैं भी आपके राज्य की रक्षा कर रहा हूँ।

यह बात सुनकर महाराणाजी आश्चर्य में पड़ गए और हाथ जोड़कर पूछने लगे—महाराज! आप मेरे राज्य की किस प्रकार रक्षा कर रहे हैं?

तब महाराज ने कहा—राणाजी! आप तो अपने कठोर कानूनों के द्वारा जनता के अदर फैली हुई बुराइयों को दूर करवाते हैं परन्तु मैं तो उपदेश के द्वारा सामूहिक रूप से जनता के हृदय में बुराइयों के प्रति घृणा पैदा करा कर उनसे यावज्जीवन के लिए जुआ, चोरी, डकैती, मास, मदिरा, परस्त्री गमन, वैश्यागमन आदि सातों प्रकार के कुव्यसनों का त्याग करवा देता हूँ। महाराणा! शायद आपके कानून के शिकजे में फसकर तो कोई व्यक्ति कुछ समय के लिए उस बुराई को छोड़ कर पुन उसमे सलग्न भी हो जाय परन्तु मेरे द्वारा नियम करा देने पर तो वह हमेशा के लिए उस बुराई को छोड़ कर पवित्र आत्मा बन जाता है। तो अब आप ही कहिए कि मैं प्रेम के द्वारा आपके कानून की रक्षा करवाता हूँ या नहीं?

म० श्री की अकाट्य तर्क को सुनकर महाराणा ने कहा—हां, महाराज! आपका कहना यथार्थ है आप जैसे निस्स्वार्थी सन्त ही प्रेम से लोगों के दिलों को जीत कर उन्हें सही रास्ते पर ला सकते हैं। हमारे कानून के जरिए तो लोग अपनी बुराइयों को छोडे या न भी छोडे परन्तु आपके उपदेश को सुन कर तो एक पत्थर का दिल भी अपनी बुराई को हमेशा के लिए अंत. करण से छोडने को तैयार हो जाता है।

तो कहने का मतलब यही है कि सच्चे गुरु अपने आपकी बुराइयों को तो आत्मा से अलग कर ही देते हैं परन्तु दूसरे व्यक्तियों के जीवन को भी पवित्र बना देते हैं। तो उक्त गाथा मे भी आचार्य श्री ने बतलाया है कि सत्गुरु की सेवा का परम लाभ प्राप्त होना भी अखूट पुण्य का फल है और ऐसे संत महापुरुषों की क्षण मात्र की संगति भी संसार के अंदर दु खों से भरे दरिया को पार करने के लिए नौका के सदृश कारगर सिद्ध होती है। वह मानव सत्गुरु के चरणों का आश्रय लेकर संसार के दुख रुपी सागर के पार हो जाता है।

भाई! इस संसार में एक नहीं परन्तु अनेकों व्यक्ति ऐसे होगए है जिनका प्रारंभिक जीवन बड़ा दूषित रहा था परन्तु जैसे ही उन्हें सत्गुरुओं की संगति प्राप्त हुई वैसे ही उनके जीवन मे सद् गुणों का प्रकाश जगमगाने लगा! उनके जीवन मे वह परिवर्तन हुआ कि वे अधर्मी से धर्मात्मा बन गए और आज तक उन महापुरुषों के नाम इज्जत के साथ लिए जा रहे है।

राजा परदेशी का इतिहास भी प्रारंभ मे ऐसा ही अपवित्र रहा है। उसके हाथ हमेशा खून से भरे हुए रहते थे। परन्तु जिस समय अखूट पुण्योदय से उसे केशी स्वामी की सत्संगति में आने

का सुअवसर प्राप्त हुआ और उनके अनमोल वचन कानों मे पड़े तो एक ही क्षण मे उसका हृदय परिवर्तित होगया। केशी स्वामी के वचनामृत का पान करके वह इतना धर्मात्मा बन गया कि भविष्य मे एक भव करके मोक्ष गति को प्राप्त कर लेगा। तो भाई! जीवन में परिवर्तन होते भी कोई देर नहीं लगती। देखो! कुसगति के कारण एक व्यक्ति अधर्मी बन जाता है जबकि सच्चे गुरु की सत्सगति प्राप्त होते ही वह दुरात्मा से धर्मात्मा भी बन जाता है। तो जीवन मे परिवर्तन लाने वाली मुख्य चीज है सच्चे गुरु की सगति।

सत्सगति ही एक मानव को पाप रूपी कीचड से निकाल कर-धर्म रूपी वाटिका मे पहुँचा देती है। सुसगति के कारण ही मनुष्य उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ एक दिन नर से नारायण के पद को भी प्राप्त कर लेता है।

वैष्णव समाज के धर्म ग्रन्थों मे भी लिखा है कि सत्सगति के प्रताप से मनुष्य हैवान से इन्सान और इन्सान से देवता की कोटि में पहुँच जाता है। सत महापुरुषों की संगति जीवन मे वह रग जाती है कि उसका जीवन फिर किसी भी पाप के रग मे नहीं रगा जा सकता। वह सदैव धर्म रग मे रगाता हुआ ही चला जाता है।

सत्सगति की महिमा बताते हुए चद्र कवि ने अपनी कविता में लिखा है कि —

*पानी खींचते खींचते भाइयों! घिस जाता पाषाण।*
*ऋषि सग से शीघ्र हुआ वो, वाल्मीकि गुणवान ॥४॥*
*सदा तुम करते रहोजी, सत्पुरुषों का सग ॥ टेर ॥*

चद्र कवि अपनी कविता के द्वारा मानव मात्र को सुसगति में आने के लिए आह्वान कर रहा है। सत्पुरुषों की सगति मे आने से

तुम्हारा जीवन यशस्वी बन जायेगा। तुम्हारे जीवन से सारी बुराइयें दूर होकर सद्गुण प्रविष्ट हो जायेंगे। जैसे कुए पर लगी हुई पत्थर की सख्त पट्टियां भी कोमल रस्सी की बराबर रगड़ खाते-खाते दरार वाली बन जाती हैं ऐसे ही पापी से पापी मनुष्य भी सच्चे गुरुओं की सत्सगति मे पहुँच जाने के बाद पूर्ण धर्मात्मा का अवतार बन जाता है।

उदाहरण के लिए आपने महर्षि वाल्मीकि का नाम तो सुना ही होगा। जिन्होंने अपने जीवन काल मे सस्कृत भाषा मे रामायण की रचना की है। तो वही वाल्मीकि अपने प्रारंभिक जीवन मे भील जाति से सबन्ध रखते थे। उनका पैशा था भयानक जगल में राहगीरों को लूट कर अपना तथा अपने कुटुम्बियों का भरण-पोषण करना। इस प्रकार लूट-खसोट करना ही उनकी आजीविका उपार्जन का मुख्य साधन बन गया था। उस समय उनका जीवन अमानुषिक कार्यों में ही व्यतीत होता था। ऐसा करते हुए उन्हें बहुत काल व्यतीत होगया परन्तु जीवन मे कोई परिवर्तन नहीं आया।

परन्तु जब उसी अधर्मी जीवन मे परिवर्तन होने का समय आया तो एक दिन योगानुयोग उसी जगल में से होकर सात ऋषियों का गुजरना हुआ। जब वाल्मीकि ने उन ऋषियों को उधर से जाते हुए देखा तो इन्होंने उनका रास्ता रोक कर पूछा—राहगीरो! तुम किधर जारहे हो? जरा ठहर जाओ। और तुम्हारे पास जो कुछ भी धन-माल हो वह मुझे दे दो।

वाल्मीकि के मुँह से आतंक भरे शब्दों को सुनकर वे ऋषि वहीं ठहर गए और उन्होंने अपनी सारी वस्तुएँ एक तरफ रख दी। इसके बाद उन्होंने मीठे शब्दों में उनसे प्रश्न किया—भाई! तुम इन

चीजों को तो ले लेना परन्तु यह तो बताओ कि जो तुम यह अनुचित कार्य कर रहे हो वह किसलिए कर रहे हो ?

तब वाल्मीकि ने ऋषियों के प्रत्युत्तर में कहा—ऋषियों ! मैं यह कार्य अपने तथा अपने कुटुम्ब के भरण पोषण के लिए करता हूँ। कहिए ! आपको इस विषय में और भी कुछ कहना है ?

यह सुनकर ऋषियों ने कहा—भाई ! तुम जो यह कार्य कर रहे हो सो तो ठीक ही है परन्तु एक बात बताओ कि जो तुम निर्दयता लाकर राहगीरों को इस प्रकार दुख देते हो, उनका धन लूट लेते हो और कभी कभी उनके अनमोल प्राण भी लूट लेते हो तो क्या तुम कभी राजा के द्वारा दंडित नहीं हो सकते ? जब लोग तुम्हारे आतंक से आतंकित होकर राजा के पास जाकर शिकायत करेंगे तो राजा भी क्रोध में आकर अपने सिपाहियों को तुम्हें पकड़वाने की आज्ञा दे सकते हैं और जब वे सिपाही वारंट लेकर तुम्हें पकड़ लेंगे और तुम पर मुकद्दमा चला कर फांसी की सजा सुनायेंगे तब तुम्हारे कुटुम्बियों में से इस दुख में कौन कौन शरीक होगा ? क्या उस समय तुम्हारे दुख में कोई शरीक होने वाला है ?

यह सुनते ही बाल्मीकि ने कहा—महाराज ! मेरे दुख में शरीक होने वाले मेरे माता-पिता, स्त्री और अन्य कुटुम्बी जन हैं जो समय आने पर साथ देंगे। मुझे उन पर पूर्ण रूप से विश्वास है कि वे अवश्यमेव मुझे दुख से मुक्त कराने का प्रयत्न करेंगे।

परन्तु ऋषियों ने कहा—भाई ! तुम कैसे विश्वास के साथ कह सकते हो कि वे तुम्हारा साथ देंगे ही ? क्या तुमने कभी उनसे इस विषय में पूछताछ भी की है ? हो सकता है कि वे समय आने पर

तुम्हें धोखा भी दे जाय। तुम्हें अपने कुटुम्बियों की इस विषय में परीक्षा अवश्यमेव कर लेनी चाहिए।

तब वाल्मीकि ने कहा—नहीं महाराज! मैंने उनसे इस विषय में कभी पूछा तो नहीं है। परन्तु मुझे उन पर विश्वास अवश्यमेव है कि वे वक्त आने पर मेरी मदद जरूर करेंगे।

यह सुनकर ऋषियों ने कहा—अच्छा! हम यहीं पर बैठे हुए तुम्हारे आने तक इन्तजारी करेंगे। तुम हम-पर विश्वास रखो—हम कहीं भी नहीं जायेंगे। अब तुम अपने घर जाकर इस विषय में निर्णय करके आओ कि तुम्हारे दुख में तुम्हारा साथ देने वाले कौन-कौन हैं।

जब ऋषियों के मुँह से वाल्मीकि ने इस प्रकार की बात सुनी तो उन्होंने अपने मन में विचार किया कि आज तक तो मुझे इस प्रकार कहने वाला कोई भी नहीं मिला। खैर! ये ऋषिगण ऐसी बात कह रहे हैं तो आज मुझे भी अपने कुटुम्बियों की अवश्यमेव परीक्षा कर लेनी चाहिए। इस प्रकार दृढ विचार कर वे अपने घर पर पहुँचे और सबसे पहिले उन्होंने अपने पिता के सामने ही उस समस्या को रख दी। वे अपने पिता से पूछने लगे—पिताजी सरकार ने मुझे पकड़वाने को मेरे पीछे सिपाही भेज दिए हैं। अब मैं किसी भी तरह उनकी पकड़ से नहीं बच सकूँगा और जब पकड़ लिया जाऊँगा तो सरकार मुझे फांसी की सजा का हुक्म सुना देगी। इस प्रकार निकट भविष्य में मुझे मेरे अपराधों के बदले फांसी हो जायेगी। परन्तु आपकी सेवा में एक निवेदन है कि आज तक मैंने लूट-खसोट कर आपकी प्रतिपालना की है अतएव अब मेरे बदले में आपको फांसी पर चढना होगा। क्या आप खुशी-खुशी मेरे प्राणों के बदले अपने प्राण निछावर कर सकेंगे?

अपने पुत्र के मुँह से इस प्रकार की बात सुनकर उनका पिता अवाक रह गया। उसने कहा—बेटा! तूने जो कुछ भी जुल्म करके हमारा भरण-पोषण किया वह तो तेरा फर्ज था। परन्तु हम तो माल खाने मे ही तेरा साथ दे सकते हैं—मार खाने मे हम तेरे साथ नहीं है।

इस प्रकार वाल्मीकि अपने पिता के मुह से निराशाजनक प्रत्युत्तर सुनकर अपने मन मे विचार करने लगे कि ऋषियों ने जैसा कहा था वही सामने नजर आरहा है। खैर! पिता ने यदि ऐसा उत्तर दे दिया तो क्या हुआ! मेरी माता तो मुझ पर अत्यधिक स्नेह रखती है अतएव उससे भी पूछ लेना चाहिए। शायद मेरी माता मेरे बदले मे दुख सहन करने को तैयार हो जाये।

इस प्रकार अपने मन में उत्साह लाकर वे अपनी माता की सेवा मे पहुँचे और निवेदन किया—माताजी! आज मेरे ऊपर सकट के बादल मडराने वाले हैं। मैं सरकार के सिपाहियों द्वारा पकड लिया जाऊँगा और मुझे फासी की सजा हो जायेगी। क्या तुम मेरे बदले मे दुख भोगने को तैयार हो?

यह सुनते ही माता ने भी अपने वही भाव प्रदर्शित किए जो कि उसे अपने पिता के मुँह से सुनने को मिले थे। जब वाल्मीकि अपने माता-पिता की तरफ से निराश होगया तो उसने अपने भाई-बहिन के सामने भी वही प्रस्ताव रखा परन्तु उनकी तरफ से भी यही प्रत्युत्तर मिला कि—हम खाने में तो तेरे साथ हैं परन्तु मार खाने में हम तेरा साथ देने वाले नहीं हैं।

इस प्रकार जब वह सबकी तरफ से निषेधात्मक वचन सुन कर निराश होगया तो विचार करने लगा कि ऋषियों ने जैसा कहा था

वही बात प्रत्यक्ष मे साबित होरही है। खैर! अन्य सभी ने तो इन्कार कर दिया परन्तु मेरी प्राण प्यारी पत्नि जो मुझे दिलो जान से चाहती है और मुझ से प्रेम करती है अतएव उससे भी पूछ लेना उचित है। शायद वह मेरे दुख मे शरीक होने को तैयार हो जाय।

तो इस प्रकार विचार करके वे अपनी स्त्री के पास पहुँचे और कहने लगे—प्रिये! मैं आज तक तुझे अपनी अर्धांगिनी मानता हुआ चला आरहा हूँ और तेरी हर इच्छा को मैंने अभी तक पूर्ण किया है। परन्तु आज तुझे मेरी तमन्ना पूर्ण करनी होगी। आज मैं सिपाहियों के द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा और मुझे सरकार की तरफ से फांसी की सजा सुना दी जायेगी। अतएव मैं चाहता हूँ कि तू मेरे बदले मे फांसी की सजा भुगत लेना। क्या तू मुझे फांसी की सजा से बचाने को तैयार है?

जब उनकी धर्मपत्नि ने अपने पति के मुँह से मौत के मुँह में जाने के वचन सुने तो वह भी एकदम तनक कर बोली—पतिदेव! मैं आपकी अर्धांगिनी तो अवश्यमेव हूँ परन्तु तुम्हारे बदले में अपने प्राण देने को किसी भी तरह तैयार नहीं हो सकती। चूंकि पाप कर्म तुमने किया है अतएव उसका फल भी तुम्हें ही भोगना चाहिए। यदि आप अपने पापों का फल भोगते हुए मर भी गए तो मैं कुछ दिनों तक तुम्हारी याद में रोकर शान्त हो जाऊँगी और फिर दूसरे व्यक्ति को अपना प्राणाधार बना लूंगी।

इस प्रकार जब सभी कुटुम्बीजनों के मुँह से उन्होंने निराशाजनक वचन सुन लिए तो वे अपने मन में विचार करने लगे कि ऋषियों ने जैसा कहा था वही प्रत्यक्ष मे दृश्य दिखाई दे रहा है। ये सब लोग सुख के साथी हैं। परन्तु दुख में साथ देने को कोई भी तैयार नहीं है। अब मुझे भी इन लोगों से सम्बन्ध विच्छेद

करके ऋषियों की शरण में चला जाना चाहिए। मुझे उन्हीं की सेवा में रहकर वास्तविक शांति प्राप्त हो सकती है।

अतएव वे अपने सभी कुटुम्बीजनों को एकत्रित कर उनके सामने हाथ जोड़कर कहने लगे—कुटुम्बी जनों। मैंने तुम सबकी प्रतिपालना के लिए निरपराधी लोगों को लूटा खसौटा और निर्दयता पूर्ण व्यवहार किया और यहां तक कि धन के लिए मैंने कइयों को जान से मार दिया। परन्तु सब कुछ पापकर्म करके भी मैंने तुम्हें अच्छी तरह खिलाया पिलाया और सब तरह से सुख-सुविधा पहुँचाई। किन्तु जब आज मुझ पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा है और मुझे फांसी हो जाने वाली है तब उस दुख में शरीक होने के लिए तुम मे से कोई तैयार नहीं है। तुम सब मिल कर भी मुझे मौत के मुँह मे धकेल देना चाहते हो। अतएव तुम सब लोग भी कान खोलकर सुन लो कि आज से मैं तुम्हारा नहीं और तुम मेरे नहीं। मैं तुम लोगों से इसी समय से पृथक हो रहा हूँ। अब तुम मुझ से भविष्य मे किसी प्रकार की आशा मत रखना। अब मैं कभी भी तुम्हारे पास लौटकर नहीं आऊँगा।

आखिर वे इस प्रकार कह कर और सब से सम्बन्ध विच्छेद करके उल्टे पैरों वहा से निकल कर जंगल मे पहुँच गए। उन्हे लौटता हुआ देख सारे कुटुम्बीजन विलापात करने लगे परन्तु उन्होंने किसी की तरफ ध्यान नहीं दिया।

इस प्रकार वे वहां से लौटकर सीधे उस स्थान पर पहुँचे जहां कि सातों ऋषिगण बैठे हुए अपने लुटेरे का इन्तजार कर रहे थे। परन्तु अब वाल्मीकि पहिले जैसा वाल्मीकि न रह कर कुछ और ही रूप में लौटकर आया था। उन्होंने वहा पहुँचते ही ऋषियों के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया।

यह दृश्य देखते ही ऋषिगण आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने सोचा कि कल का लुटेरा आज कुछ ही क्षणों मे नतमस्तक कैसे होगया ! इसमे भी अवश्य ही कोई भारी रहस्य होना चाहिए।

तब उन ऋषियों ने प्रत्यक्ष मे उनसे पूछा—भाई ! अपने घर-वालो की तरफ से क्या विशेष खबर लेकर आए हो ? क्या वे तुम्हारे बदले मे दुख भोगने को तैयार होगए है ?

जब उक्त ऋषियों के मुखारविन्द से बाल्मीकि ने वचन सुने तो वे हाथ जोड कर कहने लगे—ऋषिराज ! आज मेरे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दिवस है कि आप जैसे परमार्थी सन्तों के दर्शन होगए। आज आपने मेरी अदर की आंखे खोल दी है। मैं अभी तक जो यह समझता आया था कि मेरे कुटुम्बी मेरे ही है और सकटकालीन स्थिति उत्पन्न होने पर वे मेरा साथ अवश्य ही देंगे परन्तु वह कल्पना मिथ्या और भ्रमपूर्ण थी। महाराज ! मैंने आप से विदा होकर घर पर अपने माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री और अन्य कुटुम्बियों के पास जा-जाकर एक एक के सामने यही प्रस्ताव रखा कि मुझे फांसी की सजा होने वाली है अत मेरे बदले मे क्या तुम फांसी की सजा भुगतने को तैयार हो ? परन्तु प्रत्येक ने यही जवाब दिया कि हम तो माल खाने मे शरीक है न कि मार खाने मे। चूंकि तुमने ही पाप कर्म किया है अतएव तुम्हीं फासी की सजा भी भुगतो। हे महात्मन ! अब मैं अपने कुटुम्बियों से घबरा कर और शांति की खोज मे आपके पास आया हूँ। अब आप ही मुझे इन दुखों से छुडा सकते है।

यह सुनते ही मानो ऋषिगण कहने लगे—भाई ! तुम्हारी वैराग्य भरी वाणी सुनकर तो हमे और भी आश्चर्य होने लगा है। तुम एक लुटेरे प्राणी हो और तुम्हारी तथा तुम्हारे कुटुम्ब की

आजीविका इसी कार्य पर निर्भर है अतएव यह सामान ले जाओ और अब हमको यहां से जाने की इजाजत दो।

तब वाल्मीकि कहने लगे—नहीं महाराज! इस ससार में कोई किसी का नहीं है। सब स्वार्थ के सगे है। मैने अपने कुटुम्ब की अच्छी तरह परीक्षा कर ली है। अब मैं तो आपके चरणों की सेवा मे ही रहना चाहता हूँ। कृपा करके आप मुझ लुटेरे को अपनी सेवा मे रखकर मेरा उद्धार कीजिए।

आखिर वाल्मीकि उमी क्षण से उन ऋपियों के साथ हो लिए। भाई! मनुष्य की जब अतरग आखे खुल जाती हैं तो उसे सारे बाह्य पदार्थ क्षण भगुर दृष्टि गोचर होने लगते हैं और उसे अपने शरीर से भी ममत्व नहीं रहने पाता। तो वे उन सतों की सेवा मे रहते हुए एक दिन प्रकाण्ड विद्वान होगए। बाद मे उन्होंने सस्कृत भाषा मे रामायण की रचना की जो वाल्मीकि रामायण के नाम से आज भी प्रसिद्धि मे आरही है। इस प्रकार सच्चे गुरुओं की सत्संगति मिल जाने से उनका नाम भी अमर होगया। आज उनके द्वारा रचित वाल्मीकि-रामायण के सस्कृत श्लोकों का सगत अर्थ लगाना विद्वानों के लिए भी कठिन सा हो गया है। कहिए! सत्सगति मे कितना विशिष्ट चमत्कार है कि जिसने कल के लुटेरे वाल्मीकि को महर्पि वाल्मीकि के नाम से दुनिया मे प्रसिद्ध कर दिया।

तो मैं कह रहा था कि सच्चे गुरु की सगति से दुरात्मा के हृदय मे भी परिवर्तन आ जाता है। यदि आप लोग भी सदैव सत पुरुषों की सुसगति मे आते जाते रहेंगे तो आपके जीवन मे भी परिवर्तन आए बिना नहीं रहेगा। मैंने कई ऐसे व्यक्तियों को देखा है जिन्होंने जैन-कुल मे जन्म तो अवश्यमेव लिया परन्तु आज तक सत्सगति में नहीं आने के कारण उनके जीवन का मोड़ दुर्गुणों की

तरफ ही रहा। परन्तु जब उन्हें सच्चे गुरुओं की संगति में आने का सुअवसर प्राप्त हो गया तो उनका जीवन धर्मात्मा के रूप में प्रवाहित होने लगा। तो सज्जन पुरुषों का समागम होते ही जीवन में भारी परिवर्तन आए विना नहीं रहता।

सज्जन पुरुषों की संगति करने से जीवन में क्या क्या विशेषताएँ आती हैं इसी बात को दर्शाते हुए कवि कह रहा है कि.–

*सत्पुरुषों की संगति का जी, क्या कोई करे बखान।*
*सत्संगति से सदाचार और, होता है कल्याण ॥१॥*
*सदा तुम करते रहोजी, सत्पुरुषों का संग ॥ टेर ॥*

भाई! कवि के कहने का यही आशय है कि यदि तुम अच्छे पुरुषों की संगति में जाओगे तुम्हारे जीवन में भी सदाचार की प्रवृत्ति होने लगेगी और इससे तुम्हारी आत्मा का कल्याण हो जाएगा। तो इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि सच्चे गुरुओं की संगति का लाभ मिलना भी महान दुर्लभ है। सत्संगति भी महान पुण्य के उदय से प्राप्त होती है।

भाइयों! मैं तो सदैव अपने भाग्य की सराहना करता रहा हूँ कि असीम पुण्योदय से मुझे महान पुरुषों की सेवा में रहने का सुअवसर प्राप्त होगया और मेरे पिता ने मुझे भी अपने साथ सत्संगति में लेकर मेरे ऊपर बड़ा भारी एहसान किया है। यही नहीं परन्तु भगवती दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात मुझे स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० की सेवा में रहने का परम लाभ भी प्राप्त हो गया जिससे आज मैं यत्किंचित अपने विचार आपके सामने रखने को उद्यत हो सका हूँ। आप में से कइयों ने पूज्य श्री के भव्य दर्शन किए ही होंगे। वे भी सैकड़ों साधुओं में एक ही साधु थे। उनके

शान्त मुद्रा, उन्नत विचार, शास्त्र ज्ञान और उच्च कोटि की क्रिया आदि सद्गुणों की छाप मेरे अन्त करण मे घर कर गई। यद्यपि आज वे इस ससार मे नहीं हैं परन्तु उनके यश की सौरभ चारों तरफ फैली हुई है। उनका बडा ही आदर्शमय जीवन था। उनकी सेवा मे रहने वाले साधक के जीवन मे भी वे सद्गुण प्रवेश कर जाते थे। तो सद्गुरु की सेवा का लाभ मिलना भी बहुत मुश्किल है।

भाई! गुरु की सेवा का लाभ तो किसी भाग्यशाली को ही मिलता है। तो गुरु की सेवा का लाभ तो जीवन में बहुत समय बाद प्राप्त होता है परन्तु प्राथमिक जीवन तो माता-पिता, भाई-बहिन और अन्य कुटुम्बियों की सेवा मे निकलता है। यदि उन कुटुम्बीजनों को भी सत्सगति मिल जाती है तब भी जीवन मे आनन्द प्राप्त हो जाता है। परन्तु सांसारिक पक्ष मे भी सत्सगति किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है और सत्सगति नहीं मिलने के कारण ही आज के बालक चोर-जुआरी गुडागिरी और साधुओं की शक्ल देखते ही नफरत करने वाले बन जाते हैं। तो जैसी सगति बच्चों को प्राप्त होगी वैसा ही उनके जीवन का निर्माण हो जाएगा। यदि बच्चों का प्रारभिक जीवन सुसंस्कारित हो जाता है तो भविष्य का जीवन भी परम उज्जवल बन जाएगा। ये बच्चे ही भविष्य में जाति, समाज और देश के बनने वाले कर्णधार हैं। अतएव प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को कुसगति से बचाकर सुसगति मे लाने का प्रयत्न करें ऐसा करने से बच्चों का भविष्य तो समुन्नत होगा ही परन्तु वे अभिभावक भी यशस्वी बच्चों के कारण यश के पात्र बन जायेंगे।

तो धर्म पक्ष में गुरु आचार्य, उपाध्याय, गणावच्छेदक या स्थविर साधु कहलाते हैं और ससार पक्ष में गुरु, माता-पिता, भाई

या दूसरे बुजुर्ग लोग तथा शिक्षण देने वाले अध्यापक होते हैं। तो ससार पक्ष में भी यदि सत्सगति मिल जाती है तो मनुष्य जीवन की नींव सुदृढ हो जाती है। फिर आप उस पर कितने ही मजिल का भवन निर्माण करना चाहें तो हो सकता है। वह बचपन में बनाया गया सुसस्कारित जीवन सारी जिंदगी भर आनन्द का देने वाला है। इस प्रकार से सुसस्कारित बच्चे सत समागम में भी श्रद्धा पूर्वक भाग लेते हैं और जाति समाज में भी अग्रणी बनकर उन्नति का कार्य कर डालते हैं।

जब प्राथमिक माता-पिता और शिक्षकों की सगति से बच्चों का जीवन पवित्र और सदाचारी बन जाता है तो फिर धर्म गुरुओं की सत्संगति में जीवन को विशेष रूप से परिमार्जित करने का नबर आता है। इस प्रकार जब जीवन रूपी सोना सच्चे गुरु की सत्सगति रूपी अग्नि में पड जाता है तो जीवन में सारी बुराइयाँ निकल जाती है और यह जीवन कुन्दन के समान निर्मल बन जाता है। तो इसी जीवन सुधार की भावना से प्रेरित होकर गाव या शहर के लोग अपने यहां साधु-मुनिराजों को चातुर्मास के लिए विनती करते हैं और तन मन तथा धन से सच्चे गुरुओं की सेवा का लाभ लेते हैं। वे लोग विचार करते हैं कि अपने यहां चार मास पर्यन्त मुनिराज रहेंगे तो हमको सहजभाव से उनकी सेवा का परम लाभ प्राप्त हो जाएगा। और जो-जो बुराइयां हमारे जीवन में प्रवेश कर गई हैं वे भी सदुपदेश के द्वारा दूर हो जायेगी। क्योंकि सतमहापुरुषों की सेवा करने से जीवन में कुछ न कुछ परिवर्तन आए बिना नहीं रहता। भाई ! जो जो सच्चे गुरुओं के निकट में आते हैं और निस्वार्थमय उपदेशामृत का पान करते हैं तो उनके विपाक जीवन में भी बडा भारी परिवर्तन हो जाता है।

देखो! सत्सगति मे आने के पश्चात् पहिले के चोर, जुआरी, शराबी, शिकारी, मासाहारी वेश्यागामी, परस्त्री-गामी, बदमाश, निंदक आदि आदि अपमानित व्यक्ति भी उन-उन असत्कार्यों को छोड कर तथा धार्मिक-क्षेत्र मे प्रवेश कर निर्मल जीवन बिताने लगते हैं। वे सामायिक प्रतिक्रमण मुनिदर्शन और व्याख्यान श्रवणादि धार्मिक कार्य नियमित रूप से करते रहते हैं। इस प्रकार क्रमश उनके जीवन का विकास होता जाता है। और सत्सगति में आने के बाद पातकी से पातकी और दुराचारी से दुराचारी मनुष्य भी सदाचारी तथा धर्मात्मा बन जाता है। तो यह सब कुछ सच्चे गुरुओं की सेवा का ही तो सद्परिणाम है न! इसलिए प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है कि वह स्वय भी सतों की सगति मे अपने जीवन के कुछ क्षण अर्पित कर दे और दूसरों को भी सत्सगति मे लाने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से अपनी आत्मा का भी उत्थान हो जाएगा और परमार्थ भी हो जाएगा

दूसरे आपको मालूम होना चाहिए कि अनादि काल से जो यह पृथ्वी मर्यादा मे टिकी हुई है समुद्र अपनी मर्यादा में रह रहा है और सूर्य-चद्र अपनी मर्यादा में मर्यादित हैं तो यह सब सच्चे गुरुओं के त्याग और तपस्या का ही प्रभाव है। इस पृथ्वी पर जितने भी त्यागी महापुरुष निवास कर रहे हैं उन्हीं के त्याग और सद्प्रवृत्तियों के कारण सभी कुदरती चीजे अपनी मर्यादा मे रह रही हैं। और श्रावक-श्राविकाएँ जो देश से त्यागी हैं तो यह भी कारण है कि सब मर्यादा मे हैं। यदि ससार में धर्म न रहे और त्यागी महापुरुष न हों तो यह समुद्र भी मर्यादा छोड़ कर सारे ससार को जलमग्न कर सकता है, पृथ्वी भी मर्यादा छोड़कर जगज्जीवों को अपने अदर नष्ट कर सकती है और सूर्य चद्र भी अमर्यादित होकर सारे ससार को जलाकर भस्मसात कर सकते हैं। परन्तु ये सब

अपनी-अपनी मर्यादा मे रहे हुए है तो उसका मुख्य कारण है कि संसार में अब भी त्यागी महापुरुष विद्यमान हैं। उनके त्याग के कारण समुद्र, पृथ्वी और सूर्य-चद्र भी मर्यादा मे स्थित है।

भाई! इस पृथ्वी पर कई महापुरुष आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं, कई मानव जाति की निस्स्वार्थ भावना से सेवा कर रहे हैं कई उच्च कोटि के व्रत-नियमादि का पालन कर रहे हैं, और कई लोग विविध प्रकार की धर्म क्रियाएँ कर रहे हैं। तो उनके त्याग-तपस्या की वजह से सब अपनी अपनी मर्यादा मे है। परन्तु फिर भी मानव समाज के ऊपर जो आपत्तियों के बादल मडरा रहे हैं तो उसका कारण यही है कि दुनिया मे त्याग-तपस्या की मात्रा कम होती जारही है। ससार मे सच्चे गुरुओं की बहुत कमी होती जा रही है। लोगों मे अनैतिकता, अत्याचार, अनाचार और दुष्ट प्रवृतियों का बोलबाला होता जारहा है इसी वजह से आज का ससार दुख सागर मे गोते लगा रहा है।

देखो! यह भारतवर्ष भी बहुत लम्बा चौड़ा देश है। इसमें हजारों की सख्या मे शहर और गांव है और उन शहरों तथा गांवों में रहने वाले करोडों की सख्या मे स्त्री-पुरुष निवास कर रहे हैं। वे सब लोग सच्चे गुरुओं की सेवा करने की भावना रखते है। परन्तु फिर भी सेवा का सुअवसर कतिपय लोगों को ही मिल पाता है। सबको एक साथ गुरुओं की सेवा का लाभ मिलना बहुत मुश्किल है। यद्यपि पुण्यशाली भव्यात्माएँ हृदय से चाहती हैं कि हमें सद्गुरुओं की सेवा प्राप्त हो और तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रवण करने का लाभ मिले परन्तु सबको वह सुअवसर नहीं मिलने पाता। क्योंकि इस भारतवर्ष में विचरण करने वाले सच्चे साधुओं की संख्या भी तो बहुत थोड़ी है। अतएव वे कनक कामिनी के त्यागी और पंच

विचरण करने वाले सन्त सर्वत्र पहुँच कर मोह-माया के अंधकार में फंसे हुए प्राणियों को अपने सदुपदेश के द्वारा, ज्ञान-प्रकाश के द्वारा आत्म कल्याण भी तो नहीं कर सकते, और यही कारण है कि कुछ लोग तो सच्चे गुरुओं की सेवा का लाभ ले लेते हैं और बाकी सब उस लाभ से वंचित रह जाते हैं।

भाई! मैंने कलकत्ते मे दो चातुर्मास किए हैं। वहां की आबादी करीब सत्तर-अस्सी लाख की है। तो इतनी बडी आबादी वाला शहर होने के बावजूद भी वहा हम केवल छ सात साधु ही लोगों की नजरों मे आरहे थे। तो इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि सच्चे साधुओं का समागम होना और उनकी पवित्र सेवा का सुअवसर प्राप्त होना महान दुर्लभ है। यह सेवा का लाभ तो अखूट पुण्य वालों को ही प्राप्त हो सकता है। अन्यथा साधु समागम होने पर भी कई लोग सेवा के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

देखो! सच्चे साधुओं की सेवा करना भी परम धर्म है। जो पुण्यवान व्यक्ति शुद्ध हृदय से ऐसे महापुरुषों की सेवा का लाभ ले लेता है वह अपनी आत्मा को हल्की बनाकर उच्च गति का अधिकारी बन जाता है। मैं रतलाम शहर मे भी अपने पूज्य गुरुदेवों की सेवा में बहुत समय तक रहा हूँ। वहा श्री गुलाबचदजी सुराना नाम के एक सुश्रावक होगए हैं। उन्होंने अपने जीवन काल मे स्व० पूज्य उदयसागरजी म०, स्व० पू० श्री लालजी म० और अनेक पूज्यवरों तथा ज्ञानी साधुओं की सेवा का परम लाभ किया था। वे कंदोई (हलवाई) का धधा करते थे। परन्तु उनका दिल उदारता से परिपूर्ण था। उन्होंने मनोबद मिठाइयां भक्तिभाव से साधुओं के पात्र में बहरा दी होंगी। वे अस्सी वर्ष की आयु मे स्वर्गवासी हुए थे। वे कहते थे कि मुझ से सेठ अमरचन्दजी पीतल्या कहा करते थे कि

गांव मे यदि संत-मुनिराज पधारे हुए हों तो दिन मे चार वक्त उनकी सेवा करनी चाहिए। अर्थात प्रथम तो सवेरे दर्शन, दूसरे व्याख्यान श्रवण, तीसरे दोपहर को सुख शाति पूछना और फिर रात्रि मे धर्म चर्चा आदि करने जाना चाहिए। तो श्रावक का कर्तव्य है कि वह दिन में चार वक्त मुनिराजों की सेवा और सार-सभाल करे। परन्तु जो भाग्यशाली होगा वही चार वक्त सेवा का लाभ ले सकेगा। अन्यथा कई लोग तो एक वक्त भी मुनिराजो की सेवा से वचित रह जाते है।

अरे! जब कोई व्यक्ति अपना मुँह भी साधुओ को नहीं दिखाएगा तब वह उनकी सार-सभाल तो करेगा ही कैसे? इसलिए मेरा तो आप लोगों से यही कहना है कि जब कभी भी आपके पुण्योदय से यहा सत-मुनिराज पधार जावे तो उनकी तन मन से सेवा का लाभ लो और सार सभाल करो। चूकि आप लोग श्रावक है और श्रावक का परम धर्म है कि वह चार वक्त नहीं तो दो वक्त तो अवश्यमेव सेवा का लाभ ले। आपको दोपहर मे आकर पूछना चाहिए कि महाराज! आपको किसी चीज की आवश्यकता तो नहीं है। और यदि आवश्यकता हो तो उसकी जोगवाई का यथायोग्य निर्दोषता पूर्वक प्रबन्ध करना चाहिए। क्योंकि श्रावक वर्ग को तीर्थङ्कर भगवान ने साधुओं के लिए माता-पिता के स्थान पर घोषित किया है। अतएव उनकी सार-सभाल करना भी आप लोगों का फर्ज हो जाता है। परन्तु इस प्रकार से सार-सभाल तो कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही करेगा और दूसरी बात यह है कि सघ के मुखिया को तो कम से कम दो वक्त अवश्य ही साधुओं की सेवा मे पहुँच कर सार-संभाल लेनी ही चाहिए। इस प्रकार की प्रवृत्ति करते हुए जब दूसरे लोग देखते हैं तो लोगों की श्रद्धा भी मजबूत होती है। देखो! कलकत्ते में सेठ कानजी पानाचन्द सघ के मुखिया थे। वे इतने बड़े सेठ होकर

भी हम लोगों की दोनों टाइम नियमानुसार सार-सभाल करते थे और ऐसे भी पूछते रहते थे। ऐसा करने से साधुओं के हृदय पर भी उनकी धर्मानुरागिता और विवेकशीलता की छाप जम जाती है।

भाई! ऐसे तो शहर तथा गावों मे हजारों-लाखो लोग रहते हैं परन्तु प्रसंग आने पर उसी व्यक्ति का आदर की दृष्टि से नाम लिया जाता है जो किसी के सुख-दुख मे काम आता है। अजी! आपको दूर जाने की आवश्यकता नहीं परन्तु आप अपने घर में ही इस बात की आजमाइश कर लीजिए कि जो आपके परिवार मे मुखिया होता है और वह यदि अपने आधीनस्थ सदस्यों के सुख-दुख मे उनकी आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखता है तो उसे सभी घर के लोग चाहते है और उसकी प्रशंसा सारे शहर मे फैल जाती है। तो इसी तरह आपने हमे आग्रह भरी विनती करके बुला दिया और हम भी आपकी भक्तिभाव से प्रसन्न होकर यहा चार मास के लिए आ भी गए परन्तु यदि आप समय समय पर हमारी सार-सभाल नहीं लेंगे तो फिर कैसे काम चलेगा ?

इसलिए श्रावक के गुणों का बखान करते हुए स्व० पूज्य श्री खूबचन्दजी म० ने अपनी कविता मे वर्णन किया है कि—

*श्रमणोपासक के सदा गुण ऐसे होना चाहिए।*
*अनुराग रक्खा धर्म मे गुण, ऐसे होना चाहिए ॥टेर॥*
*आवश्यक करके सुवह, गुरुदेव के दर्शन करे।*
*बाद फिर शास्तर सुने, गुण ऐसे होना चाहिए ॥१॥*

उक्त कविता मे पूज्य श्री ने श्रमणोपासक के गुणों का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है कि एक सच्चा श्रावक जडोपासक नहीं परन्तु चैतन्योपासक होता है। ऐसे तो समस्त स्थान वासी समाज श्रमणो

पासक कहलाता है परन्तु वास्तव मे श्रमणोपासक वही है जो सच्चे देव, गुरु और धर्म के प्रति पूर्ण रूप से अनुराग रखता है। उसे अपने कर्तव्या कर्तव्य का अच्छी तरह भान रहता है। श्रमणोपासक सुवह और सायकाल दोनों वक्त सामायिक-प्रतिक्रमण करता है और अपने पापों की आलोचना करके प्रायश्चित लेता है।

जिस प्रकार घर मे बहिनें दोनों वक्त झाडू लगाकर मकान से कूडा कचरा बाहर फैंक कर उसे साफ-सुथरा बना देती है उसी प्रकार श्रमणोपासक भी मन मे यही विचार करता रहता है कि ग्रहस्थ मे रहते हुए और घरवालों का भरण-पोषण करने मे दिन-रात आश्रव (पाप) का बध होता रहता है और जो दरवाजा खुला रहने से जीवन में बुराइयां आ जाती है पापी रूपी कूडाकर्कट इस आत्मा रूपी मकान मे प्रवेश कर जाता है तो उसे दोनों वक्त सामायिक प्रतिक्रमण करके विशुद्ध बना लेनी चाहिए।

तो श्रावक का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह दोनों टाइम सामायिक-प्रतिक्रमण करके आत्म-मन्दिर मे झाडू लगाकर उसे साफ सुथरा कर लिया करें। ऐसा करने से पहिले का इकट्ठा हुआ कचरा साफ भी हो जाएगा और भविष्य मे मकान साफ-सुथरा रह सकेगा।

इसके बाद श्रमणो पासक का दूसरा आवश्यक कर्तव्य है कि जिस स्थान पर सत-मुनिराज विराज रहे हों वहा जाकर नियमित रूप से प्रात कालीन दर्शन करें और उनके मुख से मांगलिक-मंत्र सुने। फिर तीसरा परम कर्तव्य है कि अपने अमूल्य समय मे से कुछ समय निकाल कर आत्मा की खुराक हासिल करने के लिए व्याख्यान श्रवण करे। जिस प्रकार इस पार्थिव शरीर को टिकाए रखने के लिए इसे आवश्यक खाद्य पदार्थ देना पडता है उसी प्रकार आत्मा को भी विशुद्ध बनाने के लिए तीर्थङ्कर भगवान के वचन रूपी

भोजन का करना भी आवश्यक है। तो श्रमणोपासक को नियमित रूप से व्याख्यान-वाणी भी श्रवण करना चाहिए।

और भी श्रमणोपासक के आवश्यक कर्तव्यों का वर्णन करते हुए पूज्य श्री फर्मा रहे हैं कि —

*गुरुदेव आवें द्वार पर तब ऊठ कर आदर करे।*
*दान दे निज हाथ से, गुण ऐसे होना चाहिए ॥२॥*

व्याख्यान समाप्त हो जाने के पश्चात जब गुरु महाराज आहार के लिए अपने स्थान से निकले तो उन्हे अपने मकान पर आता हुआ देखकर आपका कर्तव्य है कि भावभक्ति सहित सात-आठ कदम उनके सामने जांये और रसौडे मे जो भी सामग्री सूझती हो उसे श्रद्धा पूर्वक वहराऐं। परन्तु इतनी भी धृष्टता और लापरवाही नहीं होनी चाहिए कि गुरु महाराज तो आपके द्वार पर पहुँच जाये और आप अपने स्थान से नहीं उठते हुए अपने नौकर-नौकरानियों को आज्ञा दे दें कि देखो! महाराज आए हैं। इन्हें भोजन दे देना। तो इस प्रकार का कार्य एक श्रमणोपासक का नहीं होता। परन्तु श्रमणोपासक को तो यह समझना चाहिए कि आज मेरा अहोभाग्य है कि धर्म रूपी जहाज मुझे ससार सागर से पार उतारने को आई है अतएव मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने हाथों से सुपात्र दान देकर भव-सागर से पार हो जाऊँ। तो श्रावक को अपने हाथो से यत्नापूर्वक भोजन वहरा कर लाभ लेना चाहिए। यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो अपने लिए हुए वारहवे-व्रत मे दूषण लगता है। अर्थात् अपने हाथों से श्रद्धा पूर्वक गुरु महाराज के पात्र मे शुद्ध दान देता है तब तो वह भूषण स्वरूप है अन्यथा दूषण रूप हो जाता है।

भाई! आप अभी-अभी सुख विपाक-सूत्र मे सुवाहुकुमार के जीवन के सम्बन्ध मे सुन चुके हैं। उन्होंने भाव भक्ति सहित अपने

हाथों से पूर्व भव मे सुपात्र को दान दिया था जिसके फल स्वरूप वे सुबाहुकुमार बने। इसी प्रकार आपने कई महापुरुषों के मुखारविन्द से धन्ना-शालिभद्र के विषय मे भी रसीला चरित्र सुना होगा। उन्होंने भी अपने ग्वाले के भव मे भक्ति भाव से सुपात्र को खीर का दान दिया था जिससे वे सुभद्रा सेठानी के यहां शालिभद्र के रूप में उत्पन्न हुए। तो उनके इतना समृद्धिशाली बनने का एक मात्र कारण यही था कि उन्होंने श्रद्धा पूर्वक अपने हाथो से सुपात्र को दान दिया था। यदि वे इस प्रकार दान नहीं देते तो क्या वे इतने ऊँचे पद को प्राप्त कर सकते थे? कदापि नहीं। तो अपने हाथ से दान देने का जिसका लक्ष्य होता है वही श्रावक कहलाता है।

श्रावक के इतने ही कर्तव्य नहीं होते परन्तु श्रावक अपने स्वधर्मी बन्धु के प्रति भी उदार भावना रखता है। वह स्वधर्मी बन्धु के प्रति क्या फर्ज अदा करता है?

*धर्म से डिगते हुए को, साम्क देकर स्थिर करे।*
*उदास रहे ससार से, गुण ऐसे होना चाहिए ॥२॥*

भाई! ससार में बहुत से ऐसे धर्म को पालने वाले स्वधर्मी बन्धु है जो धर्माचरण तो बराबर करते है परन्तु दुर्भाग्य से जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई है। इस कारण वे अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करने मे असमर्थ हो जाते है और संभव है—"बुभुक्षित किम्न करोति पाप" इस सिद्धान्त के मुताबिक वे एक दिन अपना धर्म परिवर्तन करने को भी तैयार हो सकते हैं। तो ऐसी स्थिति मे श्रावकों का परम कर्तव्य है कि वे अपने स्वधर्मी बन्धुओं की यथाशक्ति सहायता करके उन्हे धर्म से विचलित न होने दें और उनकी आजीविका का प्रबन्ध करके उन्हें धर्म में स्थिर रहने का मौका दें। क्योंकि आज भारतवर्ष मे लोभ देकर अपने धर्म मे मिलाने

वाले बहुत से धर्म प्रचलित हैं। यदि आपने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया तो वे स्वधर्मी बन्धु आपकी संख्या को घटा कर दूसरे धर्म में मिल जायेंगे और आपकी तथा आपके धर्म की निंदा करने पर उतारू हो जायेंगे।

आपको मालूम है और इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब इस भारतवर्ष मे ईसाइयों का आगमन नहीं हुआ था उस समय यहा हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातिया निवास कर रही थी। परन्तु जब ईसाइयों का भारतवर्ष पर साम्राज्य कायम होगया तो उन्होंने विचार किया कि यदि हमे अपने साम्राज्य को लबे समय तक कायम रखना है तो हमारा कर्तव्य है कि हम भारतीय लोगों को अधिक से अधिक सख्या मे ईसाई बनाने का प्रयत्न करें। तब इसी दृष्टिकोण से उन्होंने जगह-जगह मिशनरियां कायम कर दी और उनके पादरी गांवों-गावों में जाकर उन गरीब, असहाय और नीच जाति के लोगों को खाना, कपडा, मकान, शिक्षा आदि का प्रलोभन देकर हजारों की सख्या मे ईसाई बनाने लगे। ईसाई धर्म मे आने के बाद वे ही नीच और घृणित लोग शिक्षा प्राप्त कर कट्टर ईसाई बनने लगे और बडी-बडी नौकरिया प्राप्त कर उच्च जाति के लोगों से हाथ मिलाकर बराबरी में सम्मान के साथ बैठने लगे। तो उसी लोभ का परिणाम है कि आज भारतवर्ष मे भी दो करोड़ से ऊपर ईसाई धर्म के मानने वालों की सख्या हो चुकी है। आज भी दिन प्रति दिन अंग्रेजों की हुकूमत नहीं रहने के बावजूद भी ईसाइयों की सख्या बढती ही जारही है और उनकी सहायता के लिए विदेशों से आज भी करोड़ों रुपयों की मदद पहुँचाई जा रही है। तो हम लोगों के द्वारा नफरत की दृष्टि से देखने के कारण वे लोग न तो हिन्दू रहे और न मुसलमान बल्कि ईसाई बन गए। तो यह हमारी भूल का

परिणाम है कि हमने उन्हें अपनी आंखों के सामने ही ईसाई बनने को मजबूर कर दिया।

परन्तु धन्य है महात्मा गांधी को जिन्होंने देश भक्ति के रंग मे अच्छी तरह रंग कर अपनी सूझ-बूझ के द्वारा हरिजनो द्धार का नारा बुलन्द किया। उन्होंने अपने भाषणों मे कहा —ऐ हिन्दवासियों ये हरिजन भी आपकी ही तरह इन्सान है और उसी परम दयालु भगवान की सन्तान है ये लोग आपकी सेवा करते है परन्तु बदले मे आपके द्वारा नफरत की दृष्टि से देखे जाते है। जबकि यह मानवता के प्रतिकूल कार्य है। यदि आपने अब भी इसी प्रकार इन्हें ठुकराया तो ये सारे के सारे हरिजन एक दिन ईसाई धर्म को स्वीकार कर लेंगे और हमे आजादी प्राप्त करने मे बडी भारी कठिनता हो जायेगी। इसलिए आप इन्हे अपना ही भाई समझें और इनसे घृणा-द्वेष करना छोड़ दे। इस प्रकार महात्माजी ने हरिजनो को गले से लगा कर उन्हें धर्म परिवर्तन करने से बचा लिया।

भाई! यह बात तो मैंने राजनीति से ताल्लुक रखने वाली कही है परन्तु अब यदि आप अपने घर की ओर मुड कर देखें तो आपको मालूम होना चाहिए कि प्राचीन काल मे इसी भारतवर्ष में हम जैनियों की चालीस करोड की संख्या मानी जाती थी। हमारा एक दिन समस्त भारतवर्ष पर प्रभुत्व था और जैन धर्म की जय-जयकार हो रही थी। परन्तु जब समय ने पलटा खाया और हम लोगों के हृदय मे घृणा-द्वेष आदि के अंकुर प्रस्फुटित होगए तो धीरे धीरे मदद नहीं करने के कारण और अपने पापी पेट की आग बुझाने के लिए हमारे ही बहुत से भाई अन्यान्य धर्मों मे दीक्षित हो गए। बस! तभी से घटते-घटते आज हमारी संख्या अनुमानतः पच्चीस-तीस लाख की रह गई है। अब आप ही बताइए! कि

आपने अपनी मूल पूंजी को कायम रखी या खोई ? तो इसका एक मात्र आप और हमारे पास यही उत्तर है कि हमने बहुत कुछ खो दिया। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी के शासन की हमने सुरक्षा नहीं की बल्कि गद्दार बनकर नमक हरामी की।

परन्तु इतना सब कुछ खोकर भी हमारी वही पुरानी परिणति चल रही है। मानो हमे इसका कोई गम ही नहीं है। हम तो अब भी यही समझे बैठे हैं कि हमारा अपना घर सलामत है तो सब घर सलामती मे हैं। परन्तु इस प्रकार की कल्पना करना निरी मूर्खता है। वह लपटों से भरी हुई आग कभी हमारे घर तक भी पहुँच सकती है और हमे भी भस्मसात कर सकती है। इसलिए अब भी हम आंखें खोल कर जाग गए और अपने दर्द मन्द भाइयों को गले से लगा लिया तब भी हमारा अस्तित्व इस दुनिया मे रह जाएगा। अन्यथा दुनिया से जैन नाम ही गायब हो जायगा।

तो श्रमणो पासकों का कर्तव्य है कि वे धर्म से विचलित होने वाले गरीब स्वधर्मी बन्धुओं की सार-सभाल लें और उन्हें यथोचित सहयोग प्रदान करें। परन्तु इतना उपदेश देते हुए भी आप लोगों पर कोई असर नहीं पड़ रहा है। आप तो अभी तक भी अपनी बुरी आदतों को छोडने को तैयार नहीं हैं। तो पूज्य श्री इसी बात को दर्शाते हुए कह रहे हैं कि —

*साधर्मी की सार न पूछे, उलटो अवगुण गावे।*
*धार्यो हुओ धर्मादो वो भी, आप हजम कर जावे ॥१॥*
*होगए नीत हीन कितनेक कलु के मानवी ॥ टेर ॥*

आज कितना घोर कलिकाल आगया है कि सब प्रकार से साधन सपन्न होते हुए भी लोग अपने स्वार्थ मे इतने अंधे होगए हैं

और पैसे के बल पर इतने अभिमानी बन गए हैं कि वे नीचे की ओर देखना ही पाप समझने लगे हैं। अरे! आज स्वधर्मी बन्धुओं की सहायता करना तो दूर रहा परन्तु उन्हें बुरा-भला कह कर और गालिएँ देकर घर से निकाल देते हैं। उन गरीब लोगों के साथ पशुओं की तरह व्यवहार किया जाता है और जब शुभ कार्य के लिए हजारों-लाखों का चंदा एकत्रित किया जाता है तो वह उन साधन-सम्पन्न श्रीमत लोगों के यहां जमा करवा दिया जाता है। परन्तु उनका पेट इतना विशाल होता है और नीयत इतनी खराब होती है कि वह धर्मादे की सारी की सारी रकम हजम हो जाती है और उन्हें डकार तक नहीं आती। तो इस प्रकार की परिस्थिति जब हमारे जैन समाज के लोगों की होरही हो तो उनसे भविष्य में जैन शासन की उन्नति की आशा कैसे की जा सकती है।

भाई मैं तो कहूँगा कि जो भी धर्मादे की रकम इकट्ठी हो उसे उन मोटे पेट वालों के पास जमा न रख कर उसे फौरन उसी शुभ काम में खर्च कर देनी चाहिए। ऐसा करने से उस रकम का सदुपयोग भी हो जाएगा और लोगों की नीयत खराब होने का मौका भी नहीं आएगा। यदि इसी प्रकार आचरण किया गया तब तो ठीक ही है अन्यथा देने वालों को तो लाभ हो ही जायगा परन्तु लेने वालों ने यदि उसका सदुपयोग नहीं किया और कहीं वह दबी ही रह गई तो उसका भार उनके सिर पर रह जायेगा इसलिए जमा करने वालों को भी पाप के भार से बचने के लिए उस रकम को फौरन शुभ काम में लगाकर लाभ उठा लेना चाहिए।

आज कई प्राचीन मन्दिरों की पेढियों में हजारों-लाखों की सम्पत्ति जमा पड़ी है जिस पर सरकार की गिद्ध दृष्टि लगी हुई है। यह उन मन्दिरों की चल अचल संपत्ति को देशोद्धार के लिए अपने

कब्जे में लेना चाहती है और उसके लिए सरकार ने कानून भी पास कर लिए हैं और कई मन्दिरों की व्यवस्था सरकार ने अपने हाथ में भी ले ली है। तो श्रावकों का ऐसी हालत मे परम कर्तव्य हो जाता है कि उस एकत्रित किए हुए देव द्रव्य का समय रहते अपने स्वधर्मी बन्धुओं की सहायतार्थ सदुपयोग कर ले अन्यथा वह धन तो चला ही जाने वाला है और पीछे पश्चाताप करने से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। इसलिए श्रावक वर्ग सुसंगठित होकर बहती गंगा मे हाथ धोलें और अपने स्वधर्मी बन्धुओं को सहायता पहुँचा कर धर्म में स्थिर कर दें।

आपने खोजा जाति के विषय मे तो सुना ही होगा। उनके मानस में जाति प्रेम कितना कूट-कूट कर भरा हुआ है। उक्त धर्मानुयायी भी भारतवर्ष में काफी तादाद मे है। परन्तु आपने इस धर्म के अनुयायियों को कभी किसी से मांगते हुए नहीं देखा होगा। जब कभी किसी व्यक्ति को किसी चीज की आवश्यकता हो जाती है तो उस आवश्यकता की पूर्ति उसी की जाति मे से हो जाती है।

इसी प्रकार से एक बोहरा जाति है जो अधिकतर सौराष्ट्र और गुजरात में पाई जाती है। उनकी जाति मे भी आपको कोई व्यक्ति किसी के सामने हाथ पसारते हुए नहीं मिलेगा और जब कभी किसी व्यक्ति को किसी चीज की आवश्यकता होती है तो उनका मुल्लाह उसका ख्याल रखता है और उसकी आवश्यकता की पूर्ति करवा देता है।

तो कहने का तात्पर्य यही है कि दीगर जातियों के प्रेम-भाव को देख-देख कर भी उनसे सबक सीखना चाहिए और अपने स्वधर्मी बन्धुओं की सहायता करनी चाहिए। ऐसे तो आपका धर्म आपको विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाता है परन्तु विश्व बन्धुत्व कहलेने से कार्य

की सिद्धि होने वाली नहीं है। क्योंकि जब आप अपने ही भाइयों की सहायता नहीं कर सकते तब विश्व बन्धुत्व की भावना आना तो कोसों दूर है। अतएव सबसे पहिले आपको स्वधर्मी बन्धु के प्रति प्रेम-भाव का पाठ सीखना चाहिए।

आज हमारी ओसवाल जाति में कई लोग इस दर्दनाक हालत में है कि वे बेचारे शर्म के मारे किसी के सामने जाकर हाथ भी नहीं पसार सकते और अपने दुःख की कहानी भी नहीं सुना सकते और कई विधवाएँ ऐसी है जो घर में बैठी-बैठी आंसू बहाती रहती है परन्तु वे किसी से कुछ याचना भी नहीं कर सकती। क्योंकि एक दिन वे लोग भी आपकी तरह श्रीमत थे। वे अपने हाथों से दूसरे असहाय-स्त्री पुरुषों की सहायता करते थे। उनके घर में किसी बात की कमी नहीं थी। परन्तु कर्मों का चक्र भी विचित्र है। इस चक्र में फसने के बाद धनवान मनुष्य भी एक एक पैसे के लिए मोहताज बन जाते है। तो ऐसी हालत हो जाने के बाद वे शर्म के मारे किसी से कुछ मांग भी नहीं सकती। इस प्रकार से गरीबी के चगुल में फंसे हुए एक नहीं परन्तु अनेकों स्त्री-पुरुष मिल जायेंगे। तो आप लोगों का फर्ज है कि उनकी सहायता उसी रूप मे करनी चाहिए। आपको गुप्त रूप से उनके पास सहायता भिजवानी चाहिए ताकि वे अपनी गरीबी के दिन शांति पूर्वक निकाल सकें और धर्म मे दृढ रहते हुए तुम्हें आशीर्वाद प्रदान कर सकें। तो ऐसे स्वधर्मी बन्धुओं की गुप्त रूप से सहायता करना और डिगते हुए लोगों को धर्म में पुन मजबूत करना श्रावकों का फर्तव्य है।

फिर भी आगे के कविता मे श्रावक का कर्तव्य बताते हुए पूज्य श्री कह रहे है कि—

*हितकारी चारो सघ के समभाव संपत्ति-विपत्ति में।*
*गुणवान की स्तुति करे, गुण ऐसे होना चाहिए ॥४॥*

उक्त कडी मे बताया गया है कि जो सच्चा श्रमणोपासक होता है वह साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ का हित करने वाला होता है। वह संपति या विपत्ति मे समभाव रखता है। जैसे सूर्य जब उदय होता है और जब अस्त होता है तो दोनों स्थितियों मे समान रूप से प्रकाशमान होता है परन्तु बीच के समय में वह अपना रूप प्रचण्ड धारण कर लेता है। तो ठीक इसी प्रकार से श्रमणोपासक को भी समभाव से जीवन व्यतीत करना चाहिए। क्योंकि जीवन के लम्बे समय मे संयोग और वियोग सुख और दुख तथा हानि और लाभ तो होते ही रहते हैं। परन्तु जो व्यक्ति सुख-दुख, लाभ अलाभ और संयोग-वियोग मे समभाव पूर्वक जीवन यापन करता है वही श्रमणोपासक कहलाता है और इस प्रकार के आचरण वाला श्रावक सदैव गुणवान साधु-साध्वी, श्रावक या श्राविका के गुणगान करता रहता है।

भाई! आपके सामने ऐसे भी श्रावक मौजूद हैं जो वास्तव में श्रमणोपासक कहलाने के अधिकारी हैं। आप लोग सेठ श्री छगन-मलजी सा० मूथा को तो अच्छी तरह जानते ही हैं। उन्होंने अपने जीवन काल मे इन्हीं सद्गुणों के कारण काफी यश प्राप्त किया है। वे दक्षिण प्रान्त मे अपनी उदारता के कारण दूर दूर तक प्रसिद्ध होगए हैं। दूसरे यशस्वी श्रावक आपके सामने श्री कुन्दनमलजी लूंकड हैं जो कि आज आपके यहा संघपति पद पर आसीन हैं। आपके हृदय में भी स्वधर्मी बन्धुत्व की भावना और धर्मानुरागिता कूट-कूट कर भरी हुई है। आप लक्ष्मी को तो अपनी दासी के रूप मे देखने लग गए हैं। यही कारण है कि दोनों श्रावक दिन प्रति दिन समाज में ख्याति प्राप्त करते जा रहे हैं।

मैं जो उदाहरण के रूप में उक्त दोनों श्रावकों के नाम आपके सामने रख रहा हूँ तो मेरे हृदय पर भी उनके धर्मानुरागिता की छाप

पड़ चुकी है। हम साधुओं का और धधा ही क्या है ? हम या तो आत्मसम्बन्धी चिन्तन-मनन करते रहते हैं या गुणवान पुण्यों की जीवन गाथा सुनते रहते हैं। तो ऐसे लोगों की प्रशंसा मैं या समाज ही क्या करेगा परन्तु सारी दुनिया ही एक स्वर से तारीफ करने लगेगी। उस गुणवान व्यक्ति का नाम इतिहास के पन्नों मे स्वर्णाक्षरों से अंकित हो जाता है और नाम लेकर तारीफ करने का भी यही प्रयोजन है कि आप लोग भी ऐसे ही सच्चे श्रावक बनने का प्रयत्न करने लगे। तो श्रावक को सदैव गुण ग्राहक होना चाहिए।

आपने अपने घर मे कभी बहिनों को तो अनाज साफ करते हुए ध्यान पूर्वक देखा ही होगा। वे गेहूँ, जौ, मूंग वगैरह साफ करने बैठती है तो उनमे रहे हुए ककरों को बीन कर एक तरफ फैंक देती है और बाकी साफ अनाज को कोठी मे भर देती है। तो बहिनें भी अच्छी चीज को ग्रहण कर बुरी चीज को निकाल बाहर फैंक देती है। इसी तरह हमको भी गुणवान व्यक्तियों के गुणों को ग्रहण कर अवगुणों को दूर फैंक देना चाहिए। क्योंकि गुण ग्रहण करने से ही आत्म कल्याण सभवित है न कि अवगुणानुवाद करने से। दूसरे के अवगुणानुवाद बोलने से तो अपनी आत्मा का ही पतन होता है

और श्रीमद् रायचन्द्रजी ने भी एक जगह लिखा है कि—" दूसरे के गुणों की जितनी तारीफ करेगा तो समझ ले कि वे तमाम गुण तेरे अन्दर आ रहे है और यदि बुराई करेगा तो समझ ले कि वे सारी बुराइया तेरे अन्दर आ रही है।" तो हमारी आत्मा स्फटिक मणि के समान है। तुम बाहर मे जैसी भी चेष्टाएँ करोगे उनका वैसा ही प्रतिबिम्ब तुम्हारे मन रूपी शीशे पर पड जायेगा। यदि तुम शीशे के सामने उंगली दिखाओगे या चपत लगाओगे तो उसमें भी वैसी ही प्रतिक्रिया होते हुए पाओगे और यदि तुम उसमें सिनो

भाव से हाथ जोड़ोगे तो उसमें भी वैसा ही दिखलाई देगा। इसी प्रकार यदि तुम दूसरे से गुण ग्रहण करोगे तो तुम भी गुणवान बन जाओगे और अवगुण ग्रहण करोगे तो अवगुणी बन जाओगे। इसलिए अपनी आत्मा पर दूसरे के गुणों का ही प्रतिबिम्ब डालने की कोशिश करनी चाहिए।

मैं आप से पूछू कि यदि एक रुपया किसी अपवित्र स्थान पर पड़ा है तो कोई राहगीर उसे उठाने की चेष्टा करेगा या नहीं ? तो आप सब लोग भी प्रत्युत्तर में कह उठेंगे कि रुपए को छोड़ने वाला कौन है! वह तो उठाने की चीज है और दूसरे की दृष्टि बचा कर भी उठा लिया जायेगा। वह व्यक्ति उस समय कभी भी यह विचार नहीं करेगा कि यह रुपया गंदी जगह पर पड़ा हुआ है अथवा साफ-सुथरी जगह पर है। उसका तो एक मात्र लक्ष्य उस रुपए को ग्रहण करने का है। तो ठीक इसी प्रकार से किसी व्यक्ति के जीवन में चाहे कितनी ही बुराइयां क्यों न हों परन्तु उनकी तरफ ध्यान नहीं देकर हमें तो उसमें से गुण रूपी रुपया ग्रहण कर लेना चाहिए। इस प्रकार की जिस मानव की प्रकृति हो जायेगी वह सच्चे मायने में मानव कहलाने का अधिकारी बन जाएगा।

भाई! एक समय की बात है कि जब इसी भारतवर्ष में भगवान नेमीनाथ विचरण कर रहे थे और उनके भाई कृष्ण वासुदेव द्वारिका पर शासन कर रहे थे। तो एक समय प्रथम देवलोक के इन्द्र ने अपनी देवसभा में कृष्ण वासुदेव की प्रशंसा करते हुए कहा—देखो! आज भारत भूमि में द्वारिका के महाराज कृष्ण वासुदेव के मुकाबले में दूसरा गुण ग्राहक नहीं है। अर्थात्—उन्होंने कृष्ण महाराज के गुण ग्राहकता की अत्यधिक प्रशंसा की। परन्तु उनकी इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर एक देव क्षुब्ध हो उठा। उसके मन में

ईर्ष्यावृत्ति जाग उठी। उसने उनकी गुण ग्राहकता की परीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वह उस मौके का इन्तजार करने लगा।

एक समय जब कृष्ण वासुदेव भगवान नेमीनाथ के दर्शनार्थ सज-धज कर हाथी के हौदे पर बैठकर लवाजमे के साथ रवाना हुए तो रास्ते मे उस देव ने अपनी देवमाया से एक सडी कुत्ती मृत काय में वहां डाल दी। अब उसके पास से होकर जो कोई भी सैनिक गुजरता वह उसकी दुर्गन्ध से परेशान होकर अपने मुंह और नाक को अच्छी तरह ढाक लेता और आगे चला जाता। वह यह भी कहता जाता कि कैसी सडी कुत्ती रास्ते मे पड़ी हुई है। परन्तु ज्योंही कृष्ण महाराज की सवारी वहा से होकर गुजरी और उनकी दृष्टि उस कुत्ती पर पडी त्योंही वे हाथी से नीचे उतरे और उस स्थान पर आए जहा वह सड़ी कुत्ती पड़ी हुई थी। उन्होंने उसके पास आकर उसे गौर से देखा। वे उसकी दतावलि की प्रशसा करते हुए कहने लगे—ओ हो! कुदरत ने इस कुत्ती के दांत कैसे मोती के समान उज्जवल बनाए हैं।

कृष्ण महाराज के मुंह से उस कुत्ती की दतावलि की प्रशंसा सुनकर वह देव बड़ा प्रसन्न हुआ और मन में सोचने लगा कि वास्तव मे इन्द्र सभा में इन्द्र महाराज ने इनकी जैसी प्रशसा की थी वैसे ही ये निकले। इन्होंने तो घृणित स्थान से भी गुण ग्रहण कर लिया। जबकि सारे सैनिक नाक-मुँह बद किए हुए और अपशब्द कहते हुए निकल गए। तब देव ने अपना साक्षात् रूप प्रकट किया और चरणों में गिर कर अपने अपराध की माफी मांगी। जाते समय वह प्रसन्न होकर उन्हें भैरवी दे गया। उसके बजाने से बारह वर्ष पर्यन्त नगर में भयकर बीमारी का प्रकोप नहीं होने पाता।

तो कहने का मतलब यह है कि कृष्ण वासुदेव में गुण-ग्राहकता का गुण कितना जबर्दस्त था। इसी गुण के कारण इन्द्र ने भी

अपनी देव सभा मे उनकी प्रशंसा की भाई। यदि यह विशिष्ट गुण उनकी आत्मा में नहीं होता तो क्या कभी उनकी इस प्रकार प्रशसा हो सकती थी ? कदापि नहीं। तो संसार में सब तरह के लोग पाए जाते हैं। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक मे एकान्त रूप से गुण ही गुण या अवगुण ही अवगुण नहीं होते। हा, जिस व्यक्ति के जीवन मे जहां दस अवगुण पाए जाते हैं वहा उसमे दो गुण भी दिखाई दे सकते हैं। परन्तु जो व्यक्ति गुण ग्राहक होगा उसी को वे गुण दृष्टिगत होंगे। तो श्रावक का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक पदार्थ मे से गुण ही ग्रहण करे और अवगुण की ओर दृष्टिपात न करे।

अत मे पूज्य श्री श्रमणोपासक के अन्यान्य गुणों का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि —

*मेरे गुरू नंदलालजी का, नित्य यही उपदेश है।*
*न्यायी हो, निष्कपटी हो, गुण ऐसे होना चाहिए ॥५॥*

भाई। पूज्य श्री अपने गुरुदेव नदलालजी म० के गुणों की प्रशसा मे कह रहे हैं कि वे भव्यात्माओं के समक्ष सदैव यही उपदेश देते रहते थे कि श्रमणोपासक को अपने जीवन मे हमेशा न्यायी और निष्कपटी होना चाहिए और जो उपर्युक्त गुणों से युक्त होता है वह सच्चे मायने मे श्रावक माना गया है। एक सच्चा श्रावक सदैव यही भावना भाता है कि मुझे सच्चे गुरुओं की सत्सगति मिलती रहे और उनकी सेवा मे रह कर मैं अपनी आत्मा का उत्थान करता रहूँ। परन्तु सच्चे गुरुओं की संगति और सेवा उसी पुण्यात्मा को प्राप्त होती है जिसके अखूट पुण्य होते हैं।

तो इस प्रकार जो भव्यात्माएँ सच्चे गुरुओं की संगति में आकर यथायोग्य सेवा का लाभ लेंगे वे अवश्य ही भव सागर से पार हो जायेंगे।

# बिना विचारे कार्य करने का दुष्परिणाम

हां, तो कल मैं आप लोगों को सुना चुका हूँ कि राजा ने उस आम्र फल को बगीचे मे लगाने के लिए और उसकी अच्छी तरह परवरिश करने के लिए बागवान को हिदायत कर दी। माली ने भी राजा की आज्ञानुसार जमीन को उपजाऊ बनाकर उसमे उस आम्र फल को बो दिया और सब प्रकार से उसकी सुरक्षा करने लगा। जब उस आम्रफल में से एक-दो अकुर निकल गए तो उसने उसकी महाराज को सूचना दे दी। यह सुनकर महाराज भी बडे प्रसन्न हुए और उसे देखने को कभी कभी जाने लगे।

कहिए! महाराज की कितनी पवित्र भावना थी! वे यही सोचते रहते थे कि जब इस आम्र वृक्ष मे फल लगेंगे तो इनके द्वारा हजारों रोगियों को फायदा पहुँचेगा। जो परोपकारी आत्माएँ होती हैं उनकी सदा दूसरों को लाभ पहुँचाने की ही भावना रहती है। तो राजा ने माली को हिदायत कर दी कि जब इस आम्रवृक्ष में फल लगने शुरु हो जाय तब मुझे आकर इसकी सूचना देना।

माली भी उस आम्रवृक्ष की जी जान से हिफाजत करने लगा। इस प्रकार अनुक्रम मे वृक्ष बडा होने लगा और यथा समय उसमे फल भी लगने लगे। तब बागवान ने इसकी सूचना महाराज को जाकर दी। महाराज यह खुश खबरी सुनकर हर्ष के मारे फूले नहीं समाए। उन्होंने खुश होकर माली को काफी इनाम भी दिया।

माली अपने स्थान को लौट आया और उस आम्रवृक्ष की सेवा करने मे दिन बिताने लगा। एक समय की बात है कि बड़े जोरों से हवा चली। उस हवा के चलने से एक पका हुआ आम रात्रि में जमीन पर गिर पड़ा। प्रातःकाल जब बागवान उस आम्रवृक्ष को

देखने आया तो मालूम हुआ कि एक पका हुआ आम वृक्ष से टूट कर गिर पड़ा है। उसने फौरन राजा की सेवा में वह आम ले जाकर पेश कर दिया।

राजा ने जब उस आम को अपने हाथ में लिया तो उसे देख-देख कर बड़ा खुश होने लगा। वह अपने मन में विचार करने लगा—ओ हो! आज कई वर्षों बाद मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है और धन्य है सेठ को जिसने मुझे परोपकार के लिए यह आम फल लाकर दिया! आज उस एक आम से अनेक आम उत्पन्न होगए हैं। इससे दुनिया के सारे दुःख दूर हो जायेंगे।

अब राजा उस आम को खाने का विचार ही कर रहा था कि उसके मस्तिष्क मे दूसरा विचार उत्पन्न हो गया। उसने सोचा कि सबसे पहिले आम को मुझे नहीं खाना चाहिए। बल्कि इसे किसी सुपात्र की सेवा में भेंट कर देना चाहिए। बाद में मैं तो आम खाता ही रहूँगा। क्योंकि एक किसान भी जब चार मास पर्यन्त कड़ी परिश्रम करके फसल तैयार कर लेता है तब वह भी उस फसल में से दूसरे गरीबों को सद्भावना के साथ दान देता है और फिर अपने घर ले जाकर काम मे लाता है। इसलिए मेरे यहां उत्पन्न हुआ आम्रफल भी सबसे पहिले किसी सुपात्र के पात्र मे जाना चाहिए।

भाई! नाथद्वारा मे श्रीनाथजी का प्राचीन मंदिर है। वैष्णव लोग श्रीनाथजी के अनन्य भक्त हैं। जब उनके अनुयायियों के घर मे कोई नयी चीज आती है तो सबसे पहिले श्रीनाथजी को भेंट मे चढाई जाती है और बाद मे काम में लाई जाती है।

तो इसी सद् विचार से राजा ने भी एक ब्राह्मण पंडित को बुलवाया और वह आम्र फल उसे दान मे दे दिया। वह ब्राह्मण भी राजा को आशीर्वाद देता हुआ उस आम को लेकर अपने घर चला

गया। उसने घर पहुँच कर बिना किसी को दिए हुए स्वयं ने ही उस आम को खा लिया। उसने यह भी विचार नहीं किया कि मेरे घर में स्त्री, बच्चे वगैरह भी हैं और उन्हें भी आम का हिस्सा चखाना मेरा फर्ज है। परन्तु वह स्वार्थी ब्राह्मण था अतएव अकेला ही उसे चट कर गया।

इसीलिए नीतिकारों ने भी कहा है कि —

*ब्राह्मण डूब्या मीठी धार, बाण्या डूब्या काली धार ॥*

भाई! ब्राह्मण लोग भी खाने के अत्यधिक लोलुपी होते हैं। उन्हें जहां भी यजमानों के यहां से निमन्त्रण मिल जाता है तो वे बड़े खुश हो जाते हैं और खाने पर इस प्रकार टूट पड़ते हैं जैसे भूखा शेर अपने शिकार पर टूट पड़ता है। उन्हें फिर अपने स्वास्थ्य का भी ख्याल नहीं रहता। वे ठूस-ठूस कर अपने पेट में मिष्टान्न भर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि कभी कभी उन्हें अपने प्राण भी गवाने पड़ते हैं। इसी प्रकार वणिक लोग भी लोभ के वशीभूत होकर कर्जदार को रुपिया ब्याज पर दे डालते हैं। वे अपनी बहियों को देख-देख कर बड़े प्रसन्न होते हैं कि ओ हो! इतना ब्याज हो गया! परन्तु उन्हें यह ख्याल नहीं रहता कि लाभ तो तब होगा जबकि ब्याज सहित रकम वापिस आ जायेगी। अन्यथा ब्याज के लोभ में मूल पूंजी भी गारत हो जायेगी। तो वणिक भी अक्सर ब्याज के लोभ में आकर मूल पूंजी को गंवा बैठते हैं और कालीधार डूब जाते हैं।

तो वह लालची ब्राह्मण भी आम को अकेला ही खा गया। वह फल उसे खाते समय तो बड़ा स्वादिष्ट लगा परन्तु ज्योंही वह उसके पेट में पहुँचा त्योंही ब्राह्मण देवता के प्राण पखेरू उड़ गए। घर के सारे लोग रोते ही रह गए।

परन्तु जब यह दर्दनाक खबर राजा के कानों में पहुँची तो एक क्षण के लिए वे भी खिन्न मनसा हो गए। उन्होंने विचार किया—अरे! मैंने तो दान देकर शुभ कार्य किया था परन्तु उसका परिणाम इसके विपरीत ही निकला। मुझे क्या मालूम था कि यह अमृत फल के बजाय विषैला फल निकलेगा! मैंने इस आम को उसे देकर व्यर्थ ही ब्रह्महत्या का पाप पल्ले बांध लिया। परन्तु अब राजा अफसोस करने के सिवाय कर भी क्या सकता था।

परन्तु दूसरे ही क्षण उसके दिमाग मे तामसी विचार भी उत्पन्न हो गया। उसने विचार किया कि वह सेठ मेरा हितचिंतक नहीं परन्तु शत्रु था। वह मुझे जान से मार देना चाहता था। तभी तो उसने मुझे वह आम लाकर दिया। चलो! अच्छा हुआ कि मैंने उसे उसी वक्त नहीं खाया और कुछ समय के लिए इन्तजारी की। अन्यथा मैं तो उसे खाकर कभी का मर गया होता और मैंने जिस उत्सुकता से इस आम्र फल का बीजा रोपण करवाया, बडा करवाया और फलों की इन्तजारी की वह सब व्यर्थ साबित हुई। अरे! यह तो जहर का पेड निकल गया! अब भविष्य मे इसके फल जो भी खाएगा वही अकाल मे मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। इसलिए इस जहरीले वृक्ष को मुझे जड़ मूल से कटवा कर जलवा देना चाहिए ताकि फिर किसी के प्राण न जा सकें।

अतएव राजा ने उस बागवान को बुलवाया और उस आम्र फल के सम्बन्ध मे बगैर निर्णय किए ही उस आम्र वृक्ष को जड़मूल से कटवा कर जला देने का हुक्म दे दिया। चूंकि राजा ने बिना विचारे आम्र वृक्ष को कटवा देने का हुक्म दे दिया अतएव उसके दुष्परिणाम को भी राजा को ही भोगना पडेगा।

माली ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके उस वृक्ष को जड़-मूल से काट दिया। उसमें से कुछ हिस्सा तो उसने जमीन में गाड़ दिया और कुछ हिस्सा जला दिया। यह कार्य करके उसने राजा को जाकर कह दिया—महाराज! आपकी आज्ञानुसार मैंने उस आम्र वृक्ष को निर्मूल कर दिया है। अब उसके फल किसी के भी प्राण लेने में समर्थ नहीं हो सकते।

इस प्रकार राजा उस आम्रवृक्ष को कटवा कर प्रसन्न चित्त हो गया और अपने कार्य में व्यस्त हो गया। देखो! एक दिन तो वह था जबकि राजा उस आम्र वृक्ष के फलों के लिए लालायित हो रहा था और विचार कर रहा था कि दुनिया के लोग इसके फलों को खाकर आरोग्य लाभ प्राप्त करेंगे। परन्तु जब उसमें फल लग गए तो वह एक दिन आमूल नष्ट भी करवा दिया गया। तो पता नहीं मनुष्य के कब कैसे विचार उत्पन्न हो सकते हैं।

भाई! जिस समय इस वृक्ष का आरोपण किया गया था तो इसकी शोहरत दूर-दूर तक फैल गई थी। लोगों को मालूम हो चुका था कि इस वृक्ष के फल अंधों को आंखें देने वाले और अस्वस्थ को स्वस्थ बनाने वाले हैं। अब कई अंधे, कोढी और विविध प्रकार के रोगों से ग्रसित लोग उसमें फल आने की अवधि तक इन्तजारी करने के पश्चात् ठीक समय पर अपने भाग्य का फैसला करने के लिए दूर देशान्तरों से चल कर वहां पहुँच गए। वे लोग राजा की सेवा में उपस्थित हुए और अपनी निरोगता के लिए उस फल की याचना करने लगे। परन्तु राजा ने उन सब लोगों को प्रेम भरे वचनों से कहा—भाइयों! मैंने आप लोगों की निराशा को आशा में परिवर्तन करने के लिए ही सेठ के द्वारा दिए हुए आम्र फल को उगवा दिया था। यह बड़ा भी होगया और उसमें फल भी लग गए। परन्तु जब

माली ने मुझे एक पके हुए आम को लाकर दिया तो उसे मैंने सबसे पहिले एक ब्राह्मण देवता को अर्पित कर दिया। वह भी उसे बड़े प्रेम से अपने घर ले गया परन्तु उसे खाते ही वह मर गया। जब यह खबर मेरे कानों मे पहुँची तो मुझे उस सेठ और आम्र फल पर अत्यधिक क्रोध आया। मैंने उसी वक्त माली को बुलवा कर आज्ञा दे दी कि इस जहरीले आम्र वृक्ष को जड़-मूल से उखेड़ कर जला दो। माली ने भी उसी वक्त उसे काट कर जला दिया है। मुझे अत्यधिक अफसोस इस बात का है कि मैं आप लोगों के कष्ट को निवारण करने मे नाकामयाब सिद्ध हुआ।

राजा के मुँह से उक्त वचन सुनकर सब लोग हताश होकर पीछे पैरों लौट गए। परन्तु उन लोगों मे एक कुष्ट का रोगी भी था। उसके सारे शरीर से पीप और खून बह रहा था। वह अपनी असाध्य बीमारी से बड़ा कष्ट पा रहा था और इस प्रकार की जिंदगी से मृत्यु का आलिंगन करना बहतर समझता था। तो उसने महाराज से कर जोड़ प्रार्थना की—महाराज! आपने उसे जड मूल से कटवा कर जलवा दिया तो यह बड़ा ही पुण्य का कार्य हुआ है। परन्तु मुझे तो आप उस स्थान पर भिजवाने का कष्ट करें जहा कि वह आम्र-वृक्ष लगाया गया था। मैं उस स्थान पर पहुँच कर ही संतोष प्राप्त कर लूंगा।

राजा को भी उस कुष्ट से पीड़ित रोगी पर दया आगई और अपने नौकर को आज्ञा दी कि इसे उस स्थान पर ले जाओ जहां कि आम्र वृक्ष किसी दिन स्वाभिमान के साथ अपने अमृत तुल्य फलों के लिए इठला रहा था।

नौकर उस कुष्टी को बाग मे ले गया और उस स्थान पर छोड़ दिया जहां कि एक दिन आम्र वृक्ष फलों से लदा हुआ खडा था। तब

उस व्यक्ति ने देखा कि यहां वृक्ष का तो नामोनिशान भी नहीं है परन्तु उसके कुछ सूखे पत्ते और छोटी-छोटी टहनियां अवश्यमेव वहीं बिखरी हुई पड़ी है। उस समय उसने अपने मन मे विचार किया कि जब इस आम्र वृक्ष के फल गुणकारी हो सकते थे तो क्या इसके पत्तों और टहनियों में किंचिदपि गुण नहीं हो सकता? और भले ही इनमें विष का काम करने की शक्ति क्यों न हो परन्तु मैं तो अब जीवन से निराश हो चुका हूँ। इनके खा लेने से यदि मेरी मृत्यु भी हो जायेगी तब भी कोई बात नहीं है और यदि वास्तव मे इसके फल अमृत तुल्य थे तो इनमे भी चमत्कार नजर आ जाएगा। अतएव उसने पूर्ण श्रद्धा के साथ वहां से कुछ पत्ते और टहनियां उठाई, उन्हें कूटा-पीसा और छान कर चूर्ण तैयार कर लिया। अब उसने उसमें से कुछ हिस्सा तो पानी के साथ पेट मे उतार लिया और अवशिष्ट चूर्ण को सारे शरीर पर मल लिया। उसके सेवन करते ही उसका शरीर निरोग बन गया। भाई! अमृत और विष अपना अपना तुरन्त चमत्कार दिखा देते हैं।

इस प्रकार जब वह पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर राजा के सामने पहुँचा तो राजा भी उसे इस हालत मे देखकर आश्चर्य चकित हो गया। उसने उससे निरोग बनने का कारण पूछा तो उक्त व्यक्ति ने कहा—अन्नदाता! मैंने तो प्राण विसर्जन करने के लिए वहां पडे हुए पत्तों और टहनियो का चूर्ण बनाकर खा लिया था परन्तु कुदरत को कुछ और ही मंजूर था। मैं उसके सेवन करते ही पूर्ण स्वस्थ बन गया। महाराज! वह आम्र वृक्ष और उसके फल विषैले नहीं परन्तु अमृत तुल्य थे। आपने बगैर निर्णय किए ही उसे कटवा कर बड़ा भारी अनर्थ कर डाला है। ऐसा करने से आपकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया।

राजा ने जब उसके पत्तों और टहनियों के चमत्कार की कहानी सुनी तो कुछ क्षणों के लिए राजा विचार सागर में गोते लगाने लगा अन्त मे उसने उस बागवान को बुलवाया और उससे पूछा-क्यों रे ! तूने जो आम मुझे लाकर दिया था वह वृक्ष से तोड़ कर लाया था अथवा जमीन पर पडा हुआ ?

यह सुनकर उस बागवान ने जवाब देते हुए कहा--महाराज ! मैंने तो जमीन पर पड़ा हुआ आम लाकर दिया था।

माली के मुँह से जब यह बात सुनी तो राजा अफसोस के साथ कहने लगा गजब हो गया ! मुझ से बड़ी भारी भूल हो गई। अरे ! मैंने विना विचारे ही यह क्या अनिष्ट कर डाला। यदि मैं पहिले ही इस बात का निर्णय कर लेता तो आज मुझे भयकर पश्चाताप नहीं करना पडता। क्योंकि जो फल रात्रि में गिर गया था तो हो सकता है किसी जहरीले जानवर ने इस पर मुँह मारा हो और उसका जहर इसमे प्रवेश कर गया हो और इसी कारण उस ब्राह्मण की हत्या हो गई। वरना इसके फल तो वैसे ही अमृत के समान गुणकारी होते जैसा कि सेठ उसके विषय में गुण बताकर गया था। परन्तु अब मुझे इसकी प्राप्ति कहा से हो सकती है ! मेरे पास पश्चाताप के सिवाय अब कुछ भी शेष नहीं रह गया है और इसके लिए मैं जीवन भर पश्चाताप करता रहूँगा।

भाई ! यदि राजा उस वृक्ष को कटवाने से पूर्व ही तर्क बुद्धि से आम्र फल के विषय मे निर्णय कर लेता तो उसे जीवन भर पश्चाताप नहीं करना पड़ता ! परन्तु मानव इतना जल्दबाज होता है कि बिना निर्णय किए ही सजा देने को तैयार हो जाता है और आखिर में जब उसका परिणाम सामने आता है तो उसे पछताना पड़ता है।

इसीलिए कहा है कि;—

*बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।*
*काम बिगारे आपनो, जग में होत हंसाय॥*

पुनश्च —

*उतावला सो बावला, धीरा सो गंभीरा॥*

तो राजा ने भी चूंकि बिना विचार किए और जल्दबाजी
आकर आम्र वृक्ष को कटवा दिया इससे उसे भी जीवन भर पछत
पड़ा। इसीलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐ मानव! बिना स
विचारे किसी कार्य को जल्दबाजी में आकर नहीं करना चाहि
देखो! तुम्हें यह मानव जीवन भी उसी अमृत तुल्य आम्र फल
सदृश मिल गया है। यह भी तुम्हें अमृत के समान फल का
वाला है। परन्तु याद रखना! यदि तुमने इसको विषय कषाय
लगा दिया और जड़ से उखेड़ कर फैंक दिया तो फिर राजा की त
ही इस जीवन में और भविष्य में भी पश्चाताप करना पड़ेगा।
लिए इस मानव जीवन में सच्चे साधुओं की संगति में उपरि
होकर और सेवा का लाभ लेकर जीवन को अजर-अमर बना डा

इस प्रकार जो मानव सच्चे गुरुओं की संगति करेंगे और
करके अपने जीवन को पवित्र बनाएंगे वे इस लोक तथा परलो
सुखी बन जायेंगे।

बेंगलोर (केन्टोन्मेंट)
ता० २७—८—५६
गुरुवार

# * कषायाग्नि शान्त करो *

卐

कल्पान्त काल पवनोद्धत वह्निकल्प,
दावानल ज्वलित मुज्ज्वल मुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख मापतंत,
त्वन्नामकीर्तन जलं, शमयत्यशेषम् ॥

卐

भाई ! सम्पूर्ण विश्व के चराचर प्राणी क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषायाग्नि मे जलते जारहे है। देवता, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारक चारों ही गतियों के जीवों के मानस में कषायाग्नि ने अल्पाधिक मात्रा मे अपनी चिनगारियां प्रज्ज्वलित कर रखी हैं। इससे अछूता कोई भी ससारी प्राणी नहीं रह सका है और जन्म-मरण की श्रृंखला भी इसी कषायाग्नि के कारण बढ़ती जा रही है। इसलिए ज्ञानी पुरुष भव्यात्माओं को उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ जगज्जीवों ! तुम क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर अपनी आत्मा का पतन करते जा रहे हो। तुम्हारी आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बल और अव्याबाध सुख भरा पड़ा है परन्तु इस कषाय के द्वारा उन पर आवरण आ चुका है और वे प्रकट रूप में नहीं आरहे हैं। इसलिए इस कषाय रूपी अग्नि को प्रशांत करने का भरसक प्रयत्न करो। जब यह कषायाग्नि शान्त हो जाएगी तो

तुम्हारी आत्मा मे विद्यमान शक्तिएँ प्रकट हो जायेगी और आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्रतिभासित होने लगेगा। परन्तु इस कपायाग्नि को शान्त करने के लिए तुम्हें अथक परिश्रम करना होगा। इसके लिए तुम्हें अपने जीवन मे अपने स्वार्थों का बलिदान देकर उत्कृष्ट त्याग तपस्या आदि धार्मिक क्रियाओ का अवलम्बन लेना होगा। और तीर्थङ्कर भगवान की वाणी रूपी जल का आश्रय लेकर शान्त करना होगा। इस प्रकार जब तुम्हारी आत्मा मे यह कपायाग्नि शान्त हो जायेगी तो फिर तुम्हारी आत्मा भी भगवान स्वरूप बनकर अजर अमर पद की धारक बन जायेगी और अनन्त सुख मे लीन हो जायेगी। तो सदैव इस कपायाग्नि को शान्त करने की सफल चेष्टा करते रहो।

भाई! इस कपायाग्नि के द्वारा यह आत्मा चारों ही गति में अनन्त काल से परिभ्रमण करती आरही है परन्तु इसे कहीं भी शांति प्राप्त न हो सकी। क्योंकि शान्ति प्राप्त करने का मूल मन्त्र कपायाग्नि को शान्त करना और जब तक यह आत्मा दृढता पूर्वक क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कपाय को अपनी आत्मा से दूर करने का प्रयत्न नहीं करती तब तक आत्मशांति प्राप्त नहीं हो सकती। परन्तु पुण्योदय से आप लोगों को यह उत्तम मानव शरीर मिल गया है और इस शरीर मे रहते हुए यदि आप चाहें तो सन्त साधुओं की संगति में आकर और उनके द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करके हमेशा के लिए इस कपायाग्नि को शान्त कर सकते हैं। अब यदि आप चाहें कि मेरी जन्म-मरण की श्रखला टूट जाय और मैं कपायाग्नि मे जलने से बच जाऊँ तब तो आप सद्गुरु महा पुरुषों के द्वारा बताए हुए पद चिह्नों पर चलने को तैयार हो जाइए अन्यथा कपायाग्नि में अनेक भवों तक जलते रहना तो निश्चित ही है।

तो मेरा भी आप लोगों से आग्रह पूर्वक कहना है कि आप भाई-बहिनों से जितना भी हो सके इस कषायाग्नि को शान्त करने का जीवन मे प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस प्रकार यदि आपका इस तरफ लक्ष्य रहा तो आप एक दिन अवश्य ही कषायाग्नि को शान्त करने मे समर्थ हो जायेंगे। जब कभी भी आपकी आत्मा में क्रोध, मान, माया और लोभ की भावना का उद्रेक होने लगे तो उसी समय क्षमा, निरभिमानता, निष्कपटता और निर्लोपता का जल डाल कर उस कषायाग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करो। इस प्रकार के आचरण से कषायाग्नि शान्त होने लगेगी और आत्मा की अनन्त शक्तिया प्रकट होने लगेगी। तो सतत अभ्यास और जागरूकता से इस कार्य मे सफलता प्राप्त हो सकती है।

देखो! जितने भी महापुरुष होगए हैं उन्होंने सतत अभ्यास के द्वारा ही इस कषायाग्नि को शान्त किया और आत्म शक्तियों को प्रकट कर मोक्ष पद को प्राप्त किया। तो बगैर कषायाग्नि को शान्त किए आत्मा को मुक्तावस्था प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए इसी मानव जन्म मे आप कषायाग्नि को शान्त करके अनन्त जन्म-मरण की शृंखला को तोडकर अक्षय सुखनिधि को प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान ऋषभदेव ने भी कषायाग्नि को शान्त करके तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया और जन्म मरण की शृखला का अन्त करके मोक्ष को प्राप्त किया। तो भक्तामर स्तोत्र के उक्त चालीसवें श्लोक में आचार्य श्री मानतु ग ने भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहा है कि हे नाथ! प्रलय काल के पवन से उत्तेजित अग्नि के सदृश तथा उड रही हैं चिनगारिया जिसमे ऐसी जलती हुई उज्जवल और सम्पूर्ण संसार को नाश करने की मानो जिसकी इच्छा ही है ऐसी सामने आती हुई दावाग्नि को आपके नाम का कीर्तन रूपी जल

शान्त कर देता है। अर्थात् आपके गुणों का गान करने से बड़ी भारी दावाग्नि भी भक्तजनों का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती।

भाई! उक्त श्लोक मे आचार्य श्री के कहने का यही आशय है कि तीर्थङ्कर भगवान के नामस्मरण और गुण गान करने में यह आश्चर्यजनक शक्ति विद्यमान है कि यदि किसी व्यक्ति के सामने आठ महाभय भी उपस्थित होगए हों तो उस समय शुद्ध अन्त करण से भगवान का नाम लेते ही उक्त भय इस प्रकार विलीन हो जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार विलीन हो जाता है। तो यहां पर तीसरे महाभय दावाग्नि के विषय मे उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यदि कोई पथिक कहीं जा रहा है और जब वह जगल मे से होकर गुजरने लगा तो क्या देखता है कि सारा जगल दावाग्नि से जलने लगा है और प्रलयकारी पवन से उत्तेजित अग्नि अपनी चिनगारियों के द्वारा सारे संसार को ही जला कर समाप्त कर देने की भावना रख रही है। ऐसी विषम परिस्थिति मे उस पथिक का उधर से होकर गुजर जाना खतरे से खाली नहीं है। अतएव उस समय यदि वह आपके नाम का कीर्तन रूपी जल लेकर उस पर छिड़क देता है तो वह दावाग्नि एकदम सहज भाव में शान्त हो जाती है और वह पथिक निर्भय होकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। तो भगवान के नाम स्मरण मे इतनी महत्वपूर्ण शक्ति रही हुई है।

भाई! अग्नि भी मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है—दावाग्नि और वडवानल। जो आग अपने आप जगल में प्रज्वलित होकर उसे भस्म मात कर देती है उसे दावाग्नि कहते हैं और बड़े बड़े समुद्रों में जो आग लगती है उसे वडवानल कहते हैं। ये दोनों ही प्रकार की अग्नियाँ महान भयंकर और प्रलयकारी होती हैं।

देखो! शास्त्रकारों ने फर्माया है कि जब पंचम आरे (काल) की समाप्ति होकर छठे आरे की शुरुआत होगी तब इतने जोर से आंधी चलेगी और इतने जोर से आग बरसेगी कि उनके जरिए पृथ्वीतल पर रहे हुए तमाम वृक्ष जल कर खाक हो जायेंगे, पहाड़ नष्ट हो जायेंगे और पशु-पक्षी तथा मानव जाति भी भारी संख्या में नष्ट हो जाएगी। उस समय सूर्य को भी इतनी प्रचण्डता होगी कि इस जमीन से भी आग निकलने लगेगी। तो तूफानी हवा और आंधी के चलने से अग्नि भी अपना उग्र रूप धारण कर लेगी और समूचे संसार को जलाने को तैयार हो जाएगी। परन्तु ऐसी दावाग्नि प्रज्व-लित हो जाने पर भी यदि भगवान के नाम का कीर्तन रूपी जल उस पर डाल दिया जाय तो वह अग्नि भी शांत हो जाती है। तो ऐसा भगवान के नाम में गुण विद्यमान है।

मैं आपके सामने संवत १९६५ के साल की सत्य घटना रख रहा हूँ। उस समय चातुर्मास काल में स्व० गुरु श्री जवाहरलालजी म० खाचरोद में सुश्रावक श्री केसरीमलजी भटेवरा के मकान में रहे हुए थे। उनके पडौस मे कमश छ गांव वालों का मकान था तो इत्तिफाक से एक दिन रात्रि में पडौस के मकान मे आग लग गई और दोनों मकानों का एक ही चांदा था। हवा भी जोरों से चलने लगी। आग ने भयंकर रूप धारण कर लिया। यह स्थिति देखकर गांव के लोग घटनास्थल पर एकत्रित होगए और अग्नि को बुझाने का प्रयत्न करने लगे परन्तु आग पर काबू न पा सके। उस वक्त कुछ लोगों ने म० श्री के पास आकर अर्ज की—महाराज अग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया है और संभव है वह इस ओर भी मुड़ कर इस मकान को जला कर भस्म कर सकती है। अतएव अब आप कृपा कर दूसरे मकान में पधार जावें तो अत्युत्तम रहेगा। इससे आपको किसी प्रकार की अशान्ति होने का अवसर नहीं आने

पाएगा। परन्तु म० श्री को इतना दृढ आत्म विश्वास था और भगवान के नाम पर इतनी अटूट श्रद्धा थी कि उन्होंने लोगों से कहा—भाइयों! तुम लोगों को मेरे सम्बन्ध में घबराने और परवाह करने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ ठीक हो जाएगा।

तो उक्त दृढ़ता पूर्वक वचन सुनकर लोगों को भी बडा आश्चर्य हुआ और वे आग बुझाने के कार्य में व्यस्त होगए। भाई! म० श्री बालब्रह्मचारी और सत्यवादी सन्त थे। उन्हें भगवान के नाम पर अटूट श्रद्धा थी। उनके सारे घर वालों ने ही भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली थी और छ जनों ने तो एक साथ दीक्षा ग्रहण की थी। तो उनकी आत्म दृढता, त्याग तपस्या और भगवद् श्रद्धा का परिणाम यह निकला कि वह भयकर आग उनकी तरफ नहीं बढकर विपरीत दिशा मे बढ गई और उसने तमाम बाजार को जला कर समाप्त कर दिया। परन्तु म० श्री जिस मकान मे ठहरे हुए थे उसे तनिक भी आच न आई। तो अब आप समझ गए होंगे कि इसमें क्या रहस्य था? उसका रहस्य था उनका त्याग-तप और भगवान के नाम पर अटूट श्रद्धा! तो भगवान के नाम मे बड़ी भारी ताकत रही हुई है। उक्त घटना के विषय मे मैंने खाचरोद चातुर्मास काल मे लोगों से निर्णय किया था।

देखो! यह तो संवत १९६५ के साल की घटना है। परन्तु अभी-अभी कुछ साल पूर्व जबकि जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर की वजह से महायुद्ध का बीजारोपण हुआ था तो उस युद्ध में एक तरफ जर्मन, इटली और जापान की फौजों ने सम्मिलित रूप से भाग लिया और दूसरी तरफ रूस, अमेरीका और इंगलैंड की फौजों ने। जर्मन की फौजों ने रूस की फौजों पर आक्रमण कर दिया और उनके कई देशों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। परन्तु बाद में हिटलर

ने रूस के साथ एक साल के लिए संधि कर ली। तो अवधि समाप्त होने मे जब दो चार दिन अवशिष्ट रह गए थे उस समय हिटलर ने सरहद पर अपनी फौजें जमा कर दी। उसने सोचा था कि दुश्मनों की फौजे सरहद पर इकट्ठी हों उससे पहिले ही मुझे इन्तजाम कर अपनी रक्षा करनी चाहिए। चूंकि वह डिक्टेटर था अतएव उसकी डिक्टेटर शिप के सामने किसी की कुछ भी नहीं चल सकती थी।

इस प्रकार जब जर्मनी के सैनिक रूस की सीमा मे बढ़ने लगे और बढते हुए उसकी राजधानी लेनिन ग्रांड तक पहुँच गए तो वहां घमासान लडाई होने लगी। उस युद्ध ने इतना जोर पकडा कि वहा घर-घर में लड़ाई होने लगी। उस समय हिटलर की आज्ञा प्राप्त करते ही जर्मन फौज ने अग्नि वर्षक बम बरसाए। इससे सारे नगर मे आग लग गई और मकान धांय-धांय कर जलने लगे। सारे शहर में ऐसी भयकर आग लग चुकी थी जो छः महीने तक लगातार फायर ब्रिग्रेड से बुझाए जाने पर भी नहीं बुझ सकती है। परन्तु ऐसी आपत्ति के समय रूस के नेता स्टालिन ने भगवान से प्रार्थना की—हे भगवन्! इस भयकर अग्निकाण्ड को शान्त करो और लोगों को चैन से बसर करने का मौका दो। तो उस नास्तिक कहलाने वाले देश ने भी दारूण दुख के समय भगवान को याद किया। क्योंकि भगवान से बढ़कर दूसरी कोई शक्ति नहीं जो मानव जाति को दुख की आग से बचाने मे समर्थ हो सके। हा, यह बात ठीक है कि सुख के समय यह कृतघ्नी मानव भगवान को भूल जाता है परन्तु दुख के पहाड़ टूटने पर अवश्यमेव याद करता है। तो स्टेलिन ने भी शुद्ध अत करण से भगवान को याद किया। उसका परिणाम यह निकला कि जो भयकर अग्निकाण्ड छ महीने तक लगातार बुझाने पर भी शान्त नही होने वाला था वह एक दिन में ही भगवान का

नाम लेने पर शान्त होगया। उसे फिर आप प्रभु की माया कह दो, कुदरत का करिश्मा कह दो या भगवान के नामस्मरण की शक्ति कह दो। परन्तु प्रार्थना के प्रभाव से उसी समय एक बदली उठी और एकदम इतने जोर की वर्षा हुई कि उससे वह अग्नि बिलकुल शान्त होगई। फिर रूसी सैनिकों ने दुश्मनों को पीछे खदेड़ दिया। तो उस समय आपने भी अखबार में पढा ही होगा और रेडियों में भी सुना होगा परन्तु मैंने भी अखबार में पढा था और रेडियो में बोलते हुए सुना था कि—भगवान इस अग्निकाण्ड से रक्षा करो।

तो कहने का मुद्दा यह है कि आपत्ति के समय भगवान का नामस्मरण करने से सब प्रकार से शांति हो जाती है। भाई! नास्तिक लोगों में भी जब समय पडने पर भगवान के नाम पर विश्वास हो जाता है तब आस्तिक लोगों में भगवान के नाम पर पूर्ण श्रद्धा हो उसमें तो आश्चर्य ही क्या है! तो उक्त श्लोक में भी यही बात दर्शाई गई है कि जगत में दावानल भी क्यों न सुलग रहा हो परन्तु उस समय शुद्ध हृदय से यदि भगवान के नाम का कीर्तन रूपी जल छिडक दिया जाय तो वह भीषण अग्नि भी शान्त हो जाती है।

भाई! आपने भक्त प्रह्लाद का नाम तो अच्छी तरह सुन रखा होगा। वैष्णव धर्म ग्रन्थों में प्रह्लाद का नाम बडे सम्मान के साथ लिया गया है। बालक प्रह्लाद अपने प्रारंभिक जीवन से ही भगवान का भक्त था और राम के नाम पर जिसकी अटूट श्रद्धा थी। परन्तु उसका पिता हिरण्यकश्यप नास्तिक होने के कारण उससे द्वेष करने लगा था। उसे राम का नाम जहर के समान लगता था।

बालक प्रह्लाद गुरुजी के पास पढने जाता परन्तु राम का नाम अपनी जबान पर हरदम रखता था। वह बोलता रहता था कि —

*राम नाम लड्डू, गोपाल नाम घी,*
*हर के नाम मिश्री, तो घोल घाल पी।*

इस प्रकार उसने राम के नाम को अपने जीवन का मूल मंत्र बना रखा था। जब वह राम का नाम अपने पिता के सामने लेता तो वह उसे सुनकर क्रोधित हो जाता था। वह प्रहलाद को हरचन्द समझाता कि राम का नाम अपने हृदय से निकाल दे और उसकी जगह मुझे भगवान समझ कर मेरा ही नाम लिया कर। परन्तु प्रहलाद के रोम-रोम में राम का नाम दूध में घी, फूल में खुशबू और तिलों मे तेल की तरह समा चुका था अतएव वह उसे अपने हृदय से निकालने मे बिल्कुल असमर्थ था। क्योंकि उसे अपने शिक्षण गुरु, सहपाठियों और आस-पास के लोगों के जरिए ऐसे ही सस्कार बचपन मे मिले थे जिनसे उसे भगवान के नाम पर पूर्ण रूप से विश्वास हो गया था। वह खाते-पीते, उठते बैठते चलते फिरते, सोते-जागते और जीवन मे प्रत्येक हरकत करते हुए भी राम के नाम को लिया करता था। वह एक क्षण के लिए भी भगवान को नहीं विसार सकता था।

परन्तु दिन प्रतिदिन उसकी इस प्रकार की प्रवृत्ति हिरण्य कश्यप के हृदय को कांटे की तरह चुभती रहती थी। वह अपने मन में विचारता रहता कि ऐसा जिद्दी और मूर्ख बेटा किस काम का जो अपने बाप का नाम नहीं लेकर राम का नाम लेता हो। तो उसने परेशान होकर प्रहलाद को मरवाने का विचार कर लिया।

इस प्रकार हिरण्यकश्यप ने एक दिन अपने जल्लादों को हुक्म दे दिया कि प्रहलाद को ले जाकर पहाड़ से गिरा दो। तो उन दुष्ट पुरुषों ने राजा की आज्ञा से उसे ऊँचे पहाड़ से भी गिरा दिया

परन्तु राम-नाम के प्रताप से वह गिर कर भी सुरक्षित रहा। उसक एक बाल भी बाका न हो सका। वह सही सलामत अपने घ पर आ गया।

जब हिरण्यकश्यप ने देखा कि प्रहलाद तो पहाड़ से गिरा पर भी नहीं मर सका तो फिर उसने अपनी बहिन होलिका से क कि इसे अग्नि में लेकर बैठ जा। इससे यह जल कर समाप्त जाएगा। तो होलिका, जिसे यह वरदान था कि वह अग्नि में न जल सकती थी, प्रहलाद को अपनी गोद में लेकर बैठ गई पर राम के प्रताप से वह अग्नि भी उसे नहीं जला सकी। परन्तु इस विपरीत राम-नाम की शक्ति के प्रभाव से वह होलिका ही जल क राख बन गई और तभी से वैष्णव इतिहास में होली के त्यौहार क प्रादुर्भाव हुआ।

इसी तरह अनेक उपाय करने पर भी जब बालक प्रहलाद क मृत्यु न हो सकी और इसके बावजूद उसका तेज अधिक से अधि चमकने लगा तो हिरण्यकश्यप विशेष रूप से चिंतित होगया। उस फिर एक दिन अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि इसे ले जाक गरम-गरम लोहे के स्तम्भ से चिपका दो। जब वे लोग प्रहलाद क गर्म किए हुए लोहे के पास ले गए तो उसने देखा कि स्तम्भ पर त कीड़ियों की कतार रेंग रही है अतएव उसने राम का नाम लेक उसे पकड़ लिया। यह स्तम्भ भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका जब स्तम्भ पर चिपकाए जाने से भी नहीं मर सका तो एक दि इसे जहर का भी पान करा दिया गया। परन्तु राम का नाम लेने यह हलाहल जहर भी उसके लिए अमृत के समान बन गया औ उसके प्राण हरण नहीं हो सके।

इस तरह हिरण्यकश्यप के द्वारा जितने भी उपाय प्रह्लाद को मारने के लिए किए गए वे सारे के सारे व्यर्थ साबित हुए और प्रह्लाद हर परीक्षा में उत्तीर्ण साबित हुआ। तो राम नाम की दैवी शक्ति के सामने हिरण्यकश्यप की तमाम राक्षसी शक्तियें बेकार सिद्ध हुई और आखिर एक दिन उस जुल्मी शक्ति को भगवान के नाम की शक्ति के सामने झुकना ही पड़ा। इस प्रकार जब हिरण्यकश्यप के पापों का घडा पूर्ण रूप से भर गया तो कहा जाता है कि नृसिंह अवतार होकर उसके पाप का घडा फूट गया और उसकी मृत्यु होगई।

परन्तु लाखों वर्ष गुजर जाने के बाद भी इतिहास के पन्नों मे प्रह्लाद का नाम राम-नाम के कारण आज तक जीवित रूप मे है और सारा ससार उसके पवित्र नाम को लेकर अपने जीवन को धन्य मानता है। परन्तु इसके विपरीत हिरण्यकश्यप का नाम राम-नाम का विरोधी होने से हिकारत की दृष्टि से लिया जाता है। तो वैष्णव धर्म में भी भगवान के नाम का अद्भुत चमत्कार दर्शाया गया है।

भाई! प्रह्लाद का नाम इसलिए आदर की दृष्टि से लिया जाता है क्योंकि उसे सत्य का आग्रह था। जिस आत्मा में सत्य का आग्रह होता है वह कितनी ही विरोधी शक्तियों के द्वारा कुचला जाने पर भी सोने की तरह विशेष चमक लेकर दुनिया के सामने चमकने लगता है।

तो इसीलिए एक कवि ने प्रह्लाद की प्रशंसा में कहा है—

*प्रह्लाद सा सत्याग्रही बालक शिरोमणि।*
*छक्के शैतानी राज्य के, छुडाए किसी दिन॥*
*दुनिया में कैसे वीर थे, मौजूदा किसी दिन।*
*तारीफ जिनकी करते थे, हर जा में किसी दिन॥टेर॥*

देखो! प्रह्लाद के जीवन में सत्य का आग्रह था अतएव वह बाल्यावस्था में ही सबका शिरोमणि बन गया। उसने अपने नास्तिक और पापी पिता के शासन की शक्ति के सामने भी सत्य को नहीं छोड़ा बल्कि एक दिन उसके ही छक्के छुडा दिए। तो सत्य के सामने कोई भी विरोधी शक्ति नहीं ठहर सकती। उसे परास्त होना ही पड़ता है। क्योंकि सिद्धान्तकारों ने कहा है कि सत्य ही भगवान है। जिसके जीवन में सत्य रूपी भगवान प्रतिष्ठित हो जाता है वह अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेता है।

आप लोग भी दिन रात भगवान की मालाएँ फेरते ही रहते हैं परन्तु फिर भी आपके जीवन में कोई चमक नहीं आने पाती। तो इसका कारण क्या है? कारण स्पष्ट है कि हमने अपने जीवन में सत्य भगवान को प्रतिष्ठित नहीं किया है। और जब तक हमारे जीवन में सत्य नहीं आता है तब तक हमारी मालाएँ कोई नया रंग नहीं ला सकती। परन्तु इस रूप में तो केवल बाह्य रूप से मणिए और जबान ही घिसे जा रहे हैं और इस प्रकार माला फेरने से जीवन में कोई सिद्धि प्राप्त होने वाली नहीं है। परन्तु हां, जब भगवान के नाम की माला फेरने के साथ-साथ जीवन में सत्य का आचरण करोगे तब ही जाकर कुछ सिद्धि प्राप्त होने वाली है।

ओर किसी मन चले कवि ने तो यहां तक कह दिया है कि—

*माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांय।*
*मनवा तो चहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमरन नाय॥*

अर्थात् हाथ में माला के मणिए फिराने से और जीभ के द्वारा भगवान का नाम उच्चारण करने से ही जीवन में कोई सिद्धि प्राप्त होने वाली नहीं है। परन्तु जीवन में तभी सफलता प्राप्त होगी जब

कि तुम अपने मन को सब तरफ से खींचकर एक तरफ केन्द्रित करलोगे। इस प्रकार मन को केन्द्रित करके जब तुम भगवत् नाम की माला फेरोगे तो वह शुद्ध हृदय से फेरी हुई भगवान के नाम की एक माला भी जीवन का उद्धार कर देगी। तो कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में सत्य का आचरण करना आवश्यक है। अन्यथा वह स्मरण नहीं किन्तु जीवन की बरबादी के समान है। तो स्मरण वही कहा जा सकता है और वही जीवन में सिद्धिदायक हो सकता है जो मन को एकाग्र करके शुद्ध अतः करण से किया जाता है।

तो भगवान के नाम मे वह अद्भुत शक्ति विद्यमान है कि दावाग्नि जैसा महान भय भी जीवन मे उपस्थित होने पर भी यदि शुद्ध हृदय से भगवान का नाम लिया जाता है वह नाम रूपी पानी उस भयकर अग्नि को भी शान्त कर देता है।

परन्तु भगवान के नाम में तो इससे भी बढकर शक्ति मौजूद है। देखो! भगवान के नाम रूपी जल से यह द्रव्य दावाग्नि शान्त हो जाय तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? परन्तु भगवान के नाम में तो वह अलौकिक शक्ति विद्यमान है कि इस आत्मा के साथ जो अनन्तकाल से कषाय रूपी अग्नि चली आ रही है और जिससे यह समस्त ससार जलकर अपने जन्म-मरण की शृंखला को बढाता जा रहा है तो वह आत्म घातक कषायाग्नि भी भगवान का शुद्ध हृदय से नाम लेने से शान्त हो जाती है और यह आत्मा मोक्ष पद को प्राप्त कर लेती है।

भाई! राग और द्वेष के अन्तर्गत क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चारों कषायों का समावेश हो जाता है तो इस राग द्वेष रूपी अग्नि से हम सब जल रहे हैं। संसार का कोई भी प्राणी इस

अग्नि से बचा हुआ नहीं है। चूँकि हम संसारी जीव हैं और जब तक हम संसार में रह रहे हैं तब तक हमारा एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष होता ही रहता है। क्योंकि राग का प्रतिवादी द्वेष हर वक्त तैयार ही रहता है और इस राग-द्वेष रूपी अग्नि को उपशान्त करने के लिए ही साधु, श्रावक के वेष में हर तरह की साधनाएँ चल रही हैं। प्रत्येक साधक क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषायाग्नि को शान्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। परन्तु फिर भी यह कषायाग्नि शान्त नहीं होने पा रही है। जब तक आत्मा मे छद्‌मावस्था है तब तक कषायों का जीवन में रहना स्वाभाविक है और इस कषायाग्नि में समूचा संसार जल रहा है। इस अग्नि की लपट से देव, नारक, तिर्यन्च और मनुष्य कोई भी नहीं बच सका है। यानि चारों गतियों में यह कषायाग्नि लगी हुई है। और संसार बढ़ने का भी यही कारण है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि इस कषायाग्नि को सतत अभ्यास के द्वारा शान्त कर दो। यदि इस कषायाग्नि को शान्त करने का प्रयत्न नहीं किया तो तुम्हारा जन्म-मरण बढ़ता ही जाएगा और तुम मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच सकोगे। इसलिए संसार में पुनरागमन से बचने के लिए तुम्हें कषाय का निमित्त मिलने पर भी कषाय का सेवन नहीं करना चाहिए।

श्रीमद् दशवैकालिक-सूत्र के आठवें अध्याय की चालीसवीं गाथा में शास्त्रकारों ने बताया है कि —

*कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोहो य पवड्ढ माणा।*
*चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥*

अर्थात्—क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषाय पुनर्जन्म रूपी मूल का सिंचन करने वाली हैं। अतएव इन कषायों के उत्पन्न होने पर भी शान्त भाव से दमन करने का प्रयत्न करते रहो।

भाई! यह कपायाग्नि भी चार प्रकार से उत्पन्न होती है। प्रथम तो खुली जमीन की वजह से कपाय उत्पन्न होती है। जैसे कोई कहता है कि यह जमीन मेरी है जबकि दूसरा आवेश मे आकर कहने लगता है कि इस जमीन पर मेरा कब्जा है और मैं इसका हक नहीं छोड़ सकता और इसी तकरार मे लडाई शुरु हो जाती है। इस जमीन के हक के लिए देवता, मनुष्य और पशु भी लड़ाई करने को तैयार हो जाते हैं। तो जमीन के कारण भी सहज भाव मे क्रोध, मान, माया और लोभ का उद्रेक हो जाता है।

दूसरे-ढकी हुई जमीन के कारण भी कपायाग्नि की उत्पत्ति हो जाती है और फिर वह महल, मकान, कोठी या साधारण घर ही क्यों न हो परन्तु जब एक व्यक्ति कहता है कि इस मकान या मकान के हिस्से पर मेरी मालिकी है और दूसरा कहता है कि यह मकान तेरा नहीं मेरा है। और इस प्रकार मकान के खातिर भी क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन कर लिया जाता है।

तीसरे-इस पार्थिव शरीर के कारण भी कपायाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। जैसे कि एक व्यक्ति का शरीर बेडौल, काला और कुरूप है और दूसरे का शरीर सुडौल और मनमोहक है तो पहिला व्यक्ति दूसरे की सुन्दरता को देख-देख कर द्वेष करने लगता है। वह अपने मन मे सोचता है कि अरे! मुझे तो कोई पसंद ही नहीं करता और कोई भी मेरी तरफ दृष्टि उठा कर नहीं देखता। तो इस शरीर के कारण भी एक दूसरे पर क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है।

और चौथे नम्बर में उपधि के कारण से भी कपायाग्नि उत्पन्न हो जाती है। उपधि भी छः प्रकार की है-जैसे कम मोल या अधिक

मोल की चीज से कम भार या अधिक भार की चीज से और चेतन वाली या अचेतन वाली चीज से भी क्रोध, मान, माया और लोभ का उद्रेक हो जाता है। इन छः प्रकार की चीजों में दुनिया भर की चीजों का समावेश हो जाता है। जैसे मिट्टी कम मोल की और सोना भारी मोल का है परन्तु उनके कारण भी कपाय पैदा हो जाती है।

तो उपर्युक्त चार कारणों से कपायाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। परन्तु ज्ञानी पुरुप कहते हैं कि कपायाग्नि के इन चार कारणों को जानकर और इन वस्तुओं के निमित्त से जो कपाय उत्पन्न होती है तो उससे अपनी आत्मा का अहित मत होने दो और जहां तक बन सके तो कपाय का निमित्त मिलने पर भी क्रोध, मान, माया और लोभ से बचते रहो। भाई! कपाय का निमित्त मिलने पर भी अपनी आत्मा में यही विचार करो कि मेरी आत्मा कुछ और है और ये जड़ पदार्थ कुछ और हैं। इन पदार्थों को तो इस आत्मा को एक दिन छोडना ही पड़ेगा। तो फिर ठीक है कि कोई खड़े पैर स्वेच्छा पूर्वक छोड दे अन्यथा लम्बे पैर तो सबको छोड़ना ही पड़ेगा। तो बहर हाल किसी रूप में भी छोडे बिना इस आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता और मरने के बाद तो छोड़ना ही होगा। जब किसी के मन में वैराग्य-भावना जागृत हो जाती है तो वह स्वेच्छा पूर्वक सब धन वैभव को खड़े पैर छोड़कर साधु वृत्ति धारण कर लेता है। तो इस प्रकार से त्याग करना वास्तविक त्याग कहलाता है। बाकी आयुष्य पूर्ण होने के बाद भी तो छोड़ना ही पड़ता है। परन्तु इस प्रकार से छोड़ना वास्तव में त्याग नहीं है।

भाई! वर्तमान युग में उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष की मानी गई है। जबकि कर्म भूमि में करोड़ वर्ष की, युगलिया काल में तीन पल्योपम की और देवताओं की उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागरोपम की मानी गई

है। परन्तु इतनी लम्बी आयु को भोगने के बाद भी तो सबको सर्वस्व त्याग कर जाना ही होगा। तो फिर खडे पैर ही भौतिक पदार्थों को क्यों न छोडकर आत्मोद्धार कर लिया जाये ?

देखो ! मानव को जो भी भोगोपभोग पदार्थ उपलब्ध हुए हैं और उनके प्रति जब उसका ममत्व भाव उत्पन्न हो जाता है तो वहीं आत्मा मे कषाय का उद्रेक हो जाता है और समूचा संसार इस कषायाग्नि मे जलता हुआ दुखी हो रहा है। परन्तु फिर भी जीवन में त्याग वृत्ति नहीं आने पाती। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि— भव्यजीवों ! तुम कब तक इस कषायाग्नि मे जलते रहोगे ? आपको हमेशा महापुरुषो की वैराग्य पूर्ण वाणी श्रवण करने को मिलती है परन्तु फिर भी तैलिया पत्थर की तरह बनकर अपने ऊपर उस वाणी का कोई असर ही नहीं पडने देते। और आप अभी तक उसी श्रेणी मे अपने कदम जमाए हुए हो जहा कि पहले से जमे हुए थे। तो इस प्रकार की आपकी प्रवृत्ति तो वैसी ही है जैसे कि कोई विद्यार्थी प्रथम कक्षा मे पढ रहा है और कितना ही समय निकल जाने पर भी उसी कक्षा मे पडा हुआ है। परन्तु यदि वह विद्यार्थी उसी प्रथम कक्षा में ही पडा रहेगा तो जीवन मे आगे तरक्की कैसे कर सकेगा ? इसी प्रकार यदि कोई साधु या श्रावक कहलाते हुए भी अपने तप, सयम, नियमादि मे जो वृद्धि उत्तरोत्तर करनी चाहिए वह नहीं कर रहा है और वर्षो ही गुजर जाने के बाद भी वह अपने जीवन मे कोई उत्थान नहीं कर रहा है तो वह साधु या श्रावक किस प्रकार जीवन मे तरक्की कर सकेगा ? और यदि कोई साधु या श्रावक जैसे पहिले गालिया बोलता था उसी प्रकार साठ साठ वर्ष की अवस्था हो जाने के बाद भी गालिया बोलता है तो उसने अपने आत्म गुणों मे क्या महत्वपूर्ण विकास किया ? मैं तो समझता हूँ कि

उसके पूर्व जीवन में और वर्तमान जीवन में कोई अंतर नहीं होने पाया। इसलिए तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रवण करने का सार तभी है जबकि आप उसे जीवन में उतारें और उत्तरोत्तर आत्मोन्नति करते जांय। अन्यथा केवल सुन लेने मात्र से आत्मोन्नति नहीं हो सकती।

जैसे आपने संत महापुरुषों के मुखार्विन्द से बार-बार क्षमा के विषय मे उपदेश तो सुन लिया परन्तु इस कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिया और समय आने पर सहनशीलता और क्षमा जीवन में नहीं ला सके तो इसका अर्थ यह हुआ कि कई वर्षों तक की तीर्थङ्कर भगवान की अनमोल वाणी सुनी हुई व्यर्थ चली गई। परन्तु सुनने का सार तभी है जबकि उस पर अमल किया जाये। इस प्रकार जब आपके जीवन मे सहनशीलता की धारा बहने लगेगी तब फिर आपको खाने, पीने, उठने-बैठने, वार्तालाप करने और किसी भी प्रकार के क्रोध का कारण बनने पर भी क्रोध नहीं आएगा। फिर आपके जीवन मे सहजभाव में परिवर्तन होने लगेगा। तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि यदि तुम पुनर्जन्म के चक्कर से निकलना चाहते हो तो जिन चार कारणों से कषाय उत्पन्न होती है, उन कारणों के उपस्थित हो जाने पर भी तुमको अपने भाव घर में रहना चाहिए और भाव घर से बाहर कदम नहीं रखना चाहिए। जो मानव सदैव अपने भाव घर में निवास करता है अर्थात क्षमा, संतोष, निर्भयता, सहनशीलता, निरभिमानता, दयालुता, निर्लोभता, निष्कपटता आदि आदि आत्म गुणों मे रमण करता रहता है वह घर में रहने पर या बाहर रहने पर और एकाकी जीवन में या जन समूह के बीच रहने पर भी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द का अनुभव करता है। परन्तु इसके विपरीत यदि वह कषाय के आश्रय मे चला गया तो उसे कहीं भी आनन्द मिलने वाला नहीं है। तो ज्ञानी पुरुष सदैव यही उपदेश

देते हैं कि ऐ मानव ! तुम अपने आत्म गुणों में ही रमण करते रहना और कषाय के वशीभूत होकर आत्मा की अवनति मत कर लेना। देखो ! तीर्थङ्कर भगवान का नाम सदैव कषायाग्नि को शात करने वाला है।

तो ऐसे ही भगवान ऋषभदेव भी कषायाग्नि से सर्वथा रहित थे और भवि जीवों को भी कषायाग्नि से रहित होने का उपदेश देते थे। तो उन्हीं भगवान ऋषभदेव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

भाई ! ऐसे तीर्थङ्कर भगवान के जितने भी गुणों का बखान किया जाये वह स्वल्प ही रहेगा। क्योंकि हम अल्प बुद्धि वाले सर्वज्ञ महापुरुषों के गुणों का वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। फिर भी भक्तिवशात यत्किंचित गुणों का वर्णन अपनी टूटी भाषा में करने को तैयार हो जाते हैं। उन तीर्थङ्कर भगवान के गुणानुवाद करके और उनकी परम पवित्र वाणी सुनकर हमको भी अपने जीवन को उनके सदृश बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

देखो ! क्षमामूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी जिस समय महान क्रोध के धारक चंड कोशिया विषधर का उद्धार करने के लिए जंगल में पधारे और उस विषैले सर्प की बाम्बी के सन्निकट ही ध्यान में स्थित होगए तो उसकी दृष्टि भगवान पर पड़ी। उस चंड कौशिक के क्रोध के कारण नगर के सभी लोगों ने उस जंगल में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आना-जाना भी छोड़ दिया था। उस क्रोधी सर्प ने कई निरपराधी प्राणियों को अपने क्रोध का शिकार बना लिया था। परन्तु जब उसने एक व्यक्ति को निर्भीकता

से प्रज्ज्वलित हो उठी। वह क्रोधायमान होता हुआ भगवान महावीर के पास आया और उसने अपने तेज दांतों से भगवान के अंगूठे को दंशन कर लिया। उसने तो अपनी जाति की प्रकृति का क्रोध के रूप मे परिचय दे दिया परन्तु इसके विपरीत क्षमामूर्ति भगवान महावीर शान्त भाव मे ध्यान मे स्थित रहे। उनके मन मे भी अपने विरोधी के प्रति किसी प्रकार के असद् विचार उत्पन्न नहीं हुए। जब सर्प ने उनके अंगूठे को डसा तो उसमे से खून के बदले दूध की धारा बहने लगी। इस प्रकार का अद्भुत चमत्कार देख चंडकौशिया सर्प गंभीरता पूर्वक चिन्तन-मनन करने लगा और मनन करते हुए उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। उसने अपने पूर्वजन्म के साधु भव को जान लिया। इस प्रकार जब वह विचार सागर में गोते लगाने लगा तो भगवान महावीर ने चंडकौशिक को संबोधन करते हुए कहा—चंडकौशिक! सबुज्झ! अर्थात् अब भी समझ जा।

जब चंडकौशिक ने भगवान के मुखारविन्द से और संकेत में 'संबुज्झ' शब्द सुना तो वह अपने पूर्व जन्म के दुष्कृत कर्म पर पश्चाताप करने लगा। वह अपनी आत्मा को धिक्कारते हुए मन में कहने लगा—अरे पापी! तू पूर्व जन्म मे साधु वेष मे था और मोक्ष मार्ग की ओर प्रयाण कर रहा था परन्तु क्षणिक क्रोध के कारण तुझे इस भव में महान क्रोध की मूर्ति विषधर के रूप में उत्पन्न होना पड़ा है। अरे! जब भिक्षा के लिए जाते हुए तेरा पैर एक मरी हुई मेंढकी के ऊपर पड़ गया था तब तेरे शिष्य ने तुझे कहा था-गुरुजी! तुम्हारे पैर के नीचे आकर मेंढकी मर गई है अतएव प्रायश्चित करो। तब तूने भी प्रत्युत्तर में कह दिया—हां! मैं प्रायश्चित कर लूंगा और इस प्रकार शिष्य के द्वारा बार-बार कहने पर भी तूने क्षमा धारण की। परन्तु जब प्रतिक्रमण समाप्त होगया तो शिष्य ने आकर पुन पूछा—गुरुजी! मेंढकी मारने का प्रायश्चित ले लिया या

नहीं ? तो इस वार शिष्य के द्वारा पूछने पर तू अपने घर को छोड़ कर बाहर होगया अर्थात् तू अत्यन्त क्रोध मे आ गया और ज्योंही तू उसे दड देने को जोश मे आकर खड़ा हुआ तो मकान की छत नीची होने से तेरे सिर मे जोर से आघात हुआ और तू उसी समय काल धर्म को प्राप्त होगया। उसी क्रोधावेश मे मरने के कारण तुझे यहा भी भयकर विषधर की योनि को धारण करनी पड़ी और इस योनि में भी तुझे आज तक पाप ही पाप करने पडे हैं। तो उस समय भी यदि तू पहिले की तरह ही क्षमा धारण किए रहता और क्रोध कषाय के चगुल मे नहीं फसता तो तेरी आज यह दुर्दशा नहीं होने पाती। यद्यपि शिष्य भी छिद्रान्वेषी था और गुरु के छिद्रों को हर समय देखा करता था जो कि उसके धर्म के प्रतिकूल आचरण था परन्तु फिर भी गुरु का तो क्षमाशील ही बने रहना चाहिए था। तो शिष्य की अविनीतता, अविवेकता और छिद्रान्वेषिता के कारण गुरु को भी अपने आत्म गुणों से बाहर हो जाना पड़ा।

भाई! श्रीमद् उत्तराध्ययनजी-सूत्र के प्रथम अध्ययन की चालीसवीं गाथा में शिष्य का गुरु के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषय पर वर्णन करते हुए शास्त्रकार फर्मा रहे हैं कि.—

*न कोवए आयरियं, अप्पाणपि न कोवए।*
*बुद्धो वघाई न सिया, नसिया तोत्त गवेसए॥*

अर्थात्—शिष्य को अपने गुरु के समीप रहते हुए ऐसा कोई भी आचरण नहीं करना चाहिए जिससे गुरु को क्रोध दशा उत्पन्न हो जाए और शिष्य स्वय भी क्रोध न करे। दूसरे शिष्य का परम कर्तव्य है कि उसे ज्ञानी पुरुषों का उपघात (हानि) नहीं करना चाहिए तथा किसी के छिद्र भी नहीं देखने चाहिए। तो शिष्य को गुरु के प्रति मेरु पर्वत से भी अधिक कर्तव्य निभाना पड़ता है।

परन्तु कई मनचले लोग कह बैठते है कि साधुओं को तो सीधी रोटिएँ मिल जाती है अतएव मस्त पडे हुए जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु मेरा उन लोगों से यही कहना कि यदि साधु जीवन में सीधी रोटिएँ मिल जाती हैं तो जरा तुम भी आकर सीधी रोटिएँ खालो न ! और तब फिर तुम्हें अनुभव हो जाएगा कि ये सीधी रोटिऐं खानी है अथवा लोहे के चने चबाना है ? अरे भाई ! इन सीधी रोटियों के पीछे एक सच्चे साधक के पीछे जिम्मेवारी कितनी बडी रही हुई है। अब आपको उक्त गाथा से मालूम होगया होगा कि शिष्य को कितनी सावधानी से अपना जीवन गुजारना पडता है। जब क्रोध आने जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाए परन्तु उस समय यदि गुरु कहे कि देखो ! तो उस समय शिष्य को जहर की घूंट उतारते हुए कहना चाहिए—जी हां ! गुरुजी ! अब ऐसा कभी नहीं करूँगा और यदि शिष्य फिर भी विपरीत आचरण करता है तो वह अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है। तो क्रोध तो साधु या श्रावक किसी को भी नहीं करना चाहिए।

भाई ! यह क्रोध कषाय भी कभी तो स्व प्रतिष्ठित और कभी पर प्रतिष्ठित रूप में हो जाया करता है। परन्तु अधिकतर दूसरे के जरिए ही पैदा होता है।

तो भगवान महावीर ने चंडकौशिक सर्प को उपदेश दिया और कहा—देख ! इस क्रोध के कारण तेरी आत्मा का कितना पतन होगया है। अरे ! तू प्रथम तो असुर जाति में उत्पन्न हुआ और बाद में तू इस भव में पेट से रेंगने वाला सर्प बन गया है। इसलिए तू अब भी समझ जा और अपने पापकर्मों का प्रायश्चित कर विशुद्ध बन जा।

तो उक्त वचनों को श्रवण कर चडकौशिक के हृदय पर गहरा असर पड़ा और वह अपने पूर्व जन्मकृत पापों पर गंभीरता पूर्वक विचार करता हुआ पश्चाताप करने लगा। वह अपनी आत्मा को धिक्कारता हुआ कहने लगा अरे पापी ! तेरे जैसा भी कौन अधम होगा जिसने भगवान के अगूठे को भी डस लिया। अब तेरा उद्धार कैसे हो सकता है।

परन्तु भगवान ने उसे पुन कहा—चडकौशिक ! अभी तक भी तेरा कुछ नहीं बिगडा है। तू अब भी समझ जा और अपनी आत्मा का कल्याण कर ले। इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर चडकौशिक को समझा कर वहां से रवाना होगए।

तब चडकौशिक ने विचार किया कि इस क्रोध के कारण ही, मेरी सारी करनी का फल नष्ट होगया और मुझे सर्प की योनि धारण करनी पड़ी अतएव अब मुझे क्रोध त्याग कर पूर्ण रूप से क्षमा धारण कर लेनी चाहिए। अरे! मेरी दुष्ट प्रवृत्ति के कारण इस नगर के लोगों ने भी इस जंगल मे आना-जाना छोड़ दिया है और बेचारे जगल के जानवरों को भी यहां रहना दूभर होगया है। परन्तु धन्य है भगवान महावीर को ! जिन्होंने मुझ जैसे अधम, पापी और नीच को भी क्षमा कर दिया ! मैंने तो क्रोध से पागल होकर उन्हें डस लिया परन्तु उन्होंने तो मुझ पर किंचिदपि दोष नहीं किया। बल्कि मुझे उपदेश देकर मेरा उद्धार कर दिया। क्योंकि महापुरुषों के हृदय मे एक पापी से पापी आत्मा के प्रति भी करुणा का सागर छलकता रहता है। वे अपने शरीर पर सकटों के पहाड झेल कर भी संसार के प्राणियों का उद्धार करते हैं।

इस प्रकार भगवान महावीर का उपदेश प्राप्त होने से उसके जीवन में आत्म-जागृति की एक लहर सी दौड़ गई। उसने उसी

दिन से चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। वह क्षमाशीलता की मूर्ति बन गया और अपने मुँह को बांबी मे डालकर बाकी के हिस्से को बाहर ही निश्चेष्ट रूप मे रहने दिया। अब उसने आत्मा और शरीर को जुदा-जुदा समझ कर अपने शरीर से ममत्वभाव भी हटा लिया। इस प्रकार वह शान्त भाव से स्थिर होकर आत्म चिन्तन मे लीन होगया।

इधर जब श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी को नगर के लोगों ने निर्विघ्नता पूर्वक लौटते हुए देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे सोचने लगे कि या तो सर्प मर गया होगा अथवा उसका क्रोध शांत होगया होगा ! और इसी कारण भगवान सही-सलामत रूप मे वहां से लौट सके हैं। तो वे लोग यही अनुमान लगाकर शहर से बाहर निकले और डरते हुए उस ओर जगल में आए जहां कि वह क्रोध की मूर्ति चडकौशिक क्षमाशील बनकर अपना मुँह बांबी मे डालकर पड़ा हुआ था। उन्होंने दूर से देखा कि सर्प तो पड़ा हुआ है परन्तु यह पता नहीं चला कि वह जीवित दशा मे है अथवा मर चुका है। अतएव इस बात की परीक्षा लेने की दृष्टि से उनमें से किसी ने उसके ऊपर पत्थर फेंका और किसी ने लकड़ी का घोचा ही लगा दिया। परन्तु इतना सब कुछ होने के बावजूद भी वह सर्प शान्त भाव से अपने धर्म ध्यान में लीन रहा। उसने अपने मन में भी किसी का अनिष्ट नहीं सोचा। उसकी आत्मा में भगवान महावीर के उपदेश का नशा इतना तेज चढ चुका था और वह अपनी शुभ भावनाओं में इतना तल्लीन हो चुका था कि उस पर बाह्य उपद्रवों का कोई असर न हो सका। वह अपने शरीर और आत्मा को जुदा-जुदा मानने लगा था। इसी कारण लोगों के कितना ही सताने पर भी उसने उफ तक नहीं किया।

जब लोगों को पूर्ण रूप से विश्वास होगया कि यह तो क्षमा की मूर्ति बन गया है तो फिर किसी ने उस पर दूध डाला किसी ने घी और किसी ने शक्कर डाल कर उसकी पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। परन्तु फिर भी वह उसी शान्त भाव से अनशन व्रत ग्रहण करके पड़ा रहा। किन्तु उसकी इस प्रकार लोगों के द्वारा अथ श्रद्धा पूर्वक पूजा-प्रतिष्ठा होने से उसका परिणाम उसके लिए विपरीत ही निकला। उस दूध और घी की चिकनाई के कारण तथा शक्कर की मिठास के कारण उसके शरीर पर लाल कीड़िया आ-आ कर आतंक जमाने लगीं। उन्होंने उसके शरीर को छेदन कर उसे छलनी के सदृश बना दिया। इतनी महान वेदना होने पर भी वह शान्त भाव से सब कुछ सहन करता रहा। तो एक महापुरुष की क्षण भर की सुसंगति से उसके जीवन मे कितना भारी परिवर्तन आ गया। उस संगति के प्रभाव से वह महान् क्रोधी से भी क्षमाशील बन गया। अन्यथा आज हम देखते है कि आप श्रावक कहला कर भी जब कायोत्सर्ग मे लीन होते है और उस समय यदि कोई मच्छर आपके शरीर को छू लेता है तो आपका धैर्य जाता रहता है और आप फौरन पूजनी से उस स्थान को खुजलाने लगते हो। तो कहिए! जब आप इतनी सी भी वेदना कायोत्सर्ग मे रहते हुए भी नहीं सहन कर सकते तब कोई बड़ा उपसर्ग उपस्थित हो जाय तो उसमें तो संतोष रख ही कैसे सकते हैं! जबकि एक सर्प होते हुए भी वह चंडकौशिक अपनी वेदना को किस प्रकार शान्त भाव से सहन कर रहा है। भाई! उन कीड़ियों ने उसके शरीर को काट-काट कर छलनी बना दिया परन्तु फिर भी उसने अपने शरीर को हिलाया तक नहीं। तो उस क्षमाशीलता के कारण और परिणामों की विशुद्धता के प्रभाव से वह वहां से मर कर आठवें देवलोक मे जाकर उत्पन्न होगया और आज तक वह वहा के सुख भोग रहा है।

तो उक्त दृष्टान्त के द्वारा कहने का यही प्रयोजन है कि कषाय का निमित्त मिल जाने पर भी कषाय से बचते रहो और यह क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय तभी शान्त होगी जबकि आप सतत अभ्यास के द्वारा शान्त करने की कोशिश करते रहोगे।

भाई ! एक समय वह भी रहा है मेरे जीवन में जबकि मुझे मेरी संप्रदाय की ओर से गणावच्छेदक का पद दिया गया था। परन्तु एक दिन वह भी आया मेरे जीवन में जबकि मुझे श्रमण संघ बन जाने पर संघ हित के लिए अपनी पदवी का खुशी-खुशी त्याग भी करना पड़ा और मैंने उस पदवी को सहर्ष छोड़ दी और मैंने ही नहीं परन्तु बड़े-बड़े आचार्यों ने भी संघ हित के लिए अपनी-अपनी पूज्य पदवियों का सहर्ष त्याग कर दिया। तो उस समय हम लोगों ने यही सोचा कि इन पदवियों के द्वारा तो आत्मा की सिद्धि होने वाली नहीं है तब फिर संघ हित के लिए इनका विसर्जन क्यों न कर दिया जाय। हां, यदि जीवन में परोपकार ही करना है तो बिना पदवी के भी किया जा सकता है और इसी लक्ष्य को निर्धारित करके हम सबने अपनी-अपनी विविध पदवियों का परित्याग कर दिया। यदि हम भी उस समय हृदय में उदारता नहीं लाते और कषाय का आश्रय लेते रहते तो क्या लंबे अर्से से चली आने वाली पदवियां हमसे छूट सकती थीं ? कदापि नहीं। परन्तु यह शुभ-कार्य तभी हो सका जबकि हमने अपनी कषायों को मन्द किया। तो भाई ! कार्य करने वालों के लिए तो विशाल क्षेत्र मौजूद है। कहीं भी और किसी भी रूप में रहकर परोपकार सेवा आदि कार्य किए जा सकते हैं।

देखो ! आज कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं में भी पद लोलुपता इतनी कट्टरता से प्रवेश कर गई है कि वे अपनी कुर्सियों को किसी प्रकार

भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। उन लोगों की यह दृढ धारणा सी होगई है कि जब तक वे सत्ता पर आरूढ रहेंगे तब तक ही जन सेवा कर सकेंगे अन्यथा नहीं कर सकेंगे और फिर उन्हें उस पद की प्राप्ति के लिए कितनी वंचनाएं करनी पडती हैं! परन्तु वे लोग ठंडे दिमाग से यह विचार नहीं करते कि हमे तो जनता की सेवा करनी है तो फिर किसी रूप मे भी रहते हुए की जा सकती है। परन्तु सेवा करने का तो उनका एक बहाना मात्र है। वे उसकी आड में वास्तव मे अपनी जेबें गरम करने का ही लक्ष्य रखते है और बाह्य रूप मे सेवा का ढिंढोरा पीटते रहते हैं। यदि वास्तव में उनका लक्ष्य सेवा का ही है तो वे भारतवर्ष के लाखों गावों मे से कहीं जाकर भी अपना सेवा क्षेत्र बना सकते हैं और अपनी हविश पूरी कर सकते हैं। परन्तु वे तो कुर्सियो से चिपके रह कर ही सेवा के बहाने अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।

तो भाई! सेवा का क्षेत्र बहुत विशाल है परन्तु कमी है तो केवल निस्स्वार्थी सेवा भावियों की। यदि तुम सच्चे हृदय से जनता की सेवा करोगे तो वह सत्ता तो तुम्हें अनायास ही मिल जायेगी। उसे कृत्रिम रूप से प्राप्त करने के लिए उखाड़-पछाड़ करने की आवश्यकता ही क्या है?

देख लो न, महात्मा गांधी तो तुम्हारे सामने ही होगए हैं! वे तो कांग्रेस महासभा के चार आने के सदस्य भी तो नहीं थे। परन्तु उनके जीवन मे सेवा की लगन थी। लगन थी अतएव वे जनता की सच्ची भावना से सेवा करने के कारण जनता के बापू बन गए और महात्मा गांधी के नाम से पुकारे जाने लगे। इसी प्रकार यदि आप भी ससार मे बड़ा बनना चाहते हैं और यश कमाना चाहते हैं तो जनता जनार्दन के हृदय में घुल मिल जाओ और निस्वार्थ भावना

से सेवा करने लगो। इस प्रकार यदि तुम सच्चे सेवक के रूप में संसार के रंग-मंच पर आगए तो फिर संसार तुम्हें ऊँचा बना देगा और उस सत्ता के लिए तुम्हें बाहरी ढंग से कोई प्रयास नहीं करना पड़ेगा। इसलिए पद प्राप्ति की अपेक्षा सेवा की तरफ विशेष रूप से लक्ष्य रखो। क्योंकि सच्चे हृदय से की गई सेवा का कभी भी फल व्यर्थ नहीं जाता। उसका मीठा फल तुम्हें अवश्य ही प्राप्त होगा।

और चारों प्रकार की कषाय जिन-जिन कारणों से पैदा होती है तो उन्हें भी रोकने का प्रयत्न करते रहो। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि —

"कम खाना, गम खाना, नम जाना, ऊँचे-नीचे वचन सहना और अरिहंतों के नाम लेना।"

तो उपरोक्त बातों पर यदि आप अपने जीवन में लक्ष्य रखेंगे और उन पर अमल करते रहेंगे तो आपका जीवन भी निखर जाएगा और आप जनता में सम्मान के पात्र बन जाओगे। परन्तु सब कुछ जानते हुए भी समय पर आप ध्यान नहीं रखते और कषाय के वशीभूत हो जाते हैं। जबकि आपको कषाय का निमित्त मिलने पर भी उसके चंगुल में नहीं फसना चाहिए।

जैसे कि आप जूते पहिनने को बाटा कम्पनी की दुकान पर जाते हैं। तब दुकानदार आपको आपकी फरमाइश के मुताबिक तरह तरह के सस्ते-मंहगे दामों के जूते दिखलाता है। उन जूतों के ढेर को देखकर उस समय यदि आप अपने मन में विचार करने लगें कि अरे! यह दुकानदार भी कितना मूर्ख है जो मुझ जैसे सेठ या बाबू सा० को जूते दिखला रहा है और मेरा सरासर अपमान कर

हा है। परन्तु इस प्रकार की कल्पना करना मिथ्या और भ्रम पूर्ण है। क्योंकि जिसकी दूकान पर जो चीज होगी वही तो दिखाई जायेगी। इसके अतिरिक्त वह दूसरी तरह की चीज कहां से दिखला सकता है ? इसलिए ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी कषाय का आश्रय मत लो। उस समय यही विचार करो कि —

*जापे जैसी वस्तु है, तैसी ही दिखलाय।*
*उसका बुरा न मानिए, वह लेन कहां से जाय ?*

अर्थात्-जिसके पास जैसी वस्तु होगी वैसी ही तो वह आपको दिखलाएगा। दूसरी वस्तु आपको कहां से लाकर दिखला सकता है। हां, यदि आप किसी हलवाई की दूकान पर या इत्रफरोश की दुकान पर जायेंगे तो वहां आपको तरह-तरह की मन भावनी मिठाइयां और तरह-तरह के खुशबूदार इत्र दिखाए जायेंगे जिन्हें देखकर आपकी तबियत हरी हो जायेगी। तो आपको हर हालत में चर्मकार की बुद्धि नहीं रखकर गुण ग्राहक बनने की ही कोशिश करनी चाहिए।

और स्व० पूज्य खूबचंदजी म० ने भी अपनी कविता में बताया है कि आप चर्मकार के मानिंद न बनकर अपनी जबान से हीरा, पन्ना, माणक, मोती आदि अनमोल जवाहिरात के समान शब्द निकालो जिनमे आपकी कीमत आंकी जा सके। जब आपके मुँह में फूल बरसने लगेगे तो सुनने वाले लोग भी सहजभाव में कहने लगेंगे कि इनके वचन तो ऐसे निकलते हैं जैसे कि मोती बिखर रहे हों। तो दूसरों की वाणी सुनकर आपको भी उनके अनुरूप बनने की कोशिश करनी चाहिए। वचन भले ही आपके मुँह से थोड़े और सीमित ही क्यों न निकलें परन्तु वे मीठे और सारगर्भित

निकलने चाहिये। जिन्हें सुनकर लोग तुम्हारे सामने और पीठ पीछे भी तुम्हारी तारीफ करने लगें। परन्तु ऐसा तभी हो सकेगा जबकि तुम कषाय को मन्द करने की कोशिश करोगे।

तो यह कषायाग्नि इस आत्मा के साथ अनादि काल से लगी हुई है जो उग्र रूप धारण करती हुई आत्मा का अधः पतन करती जा रही है। परन्तु इस बार आपको पुण्योदय से यह सुअवसर हाथ लग गया है जबकि आप इस कषायाग्नि को आंशिक रूप में शान्त कर सकते हैं। इस जन्म मे यदि आप भगवान के नाम का कीर्तन रूपी जल सर्वत्र उस पर डालते रहेंगे तो एक दिन यह मूलत नष्ट हो जायेगी और फिर कभी भी आत्मा को जलाने नहीं पाएगी और कषायाग्नि के पूर्ण रूप से शान्त हो जाने पर आप परमात्म स्वरूप में विलीन हो जायेंगे।

भाईयों! यही बात मैं आपके समक्ष पुनकुला नामक ग्रन्थ की दूसरी गाथा के आधार पर रखने जा रहा हूँ। यहां आचार्य ने बताया है कि—

*जिण चरण कमल सेवा, सुह गुरुपाय पज्जुवासण चेव।*
*सज्झाय वायडत्तं, लभंति पभूय पुन्नेहि ॥२॥*

अर्थात्—तीर्थङ्कर भगवान के चरण-कमलों की सेवा और सच्चे गुरुओं की सेवा का लाभ भी अकूट पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होता। जो आत्मा अकूट पुण्य लेकर आती है उसे ही उक्त योगों की प्राप्ति होती है। इनका विस्तृत वर्णन मैं कल के प्रवचन मे कर चुका हूँ।

अब आचार्य श्री आगे वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि स्वाध्यायी होना अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का स्वाध्याय

करना भी अखूट पुण्य के द्वारा ही हो सकता है। बिना पुण्य के मानव से स्वाध्याय भी नहीं हो सकता। और वह स्वाध्याय भी पांच प्रकार का बताया गया है—वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्म कथा। परन्तु आज यदि किसी व्यक्ति से पूछा जाता है—भाई! स्वाध्याय तो हमेशा नियमित रूप से होता ही होगा? तो वह व्यक्ति फौरन उत्साह के साथ जवाब दे देता है—हां महाराज! स्वाध्याय तो रोजाना नियमित रूप से होता ही है। देखिए! मैं प्रातः काल बिस्तर से उठ कर चाय पीता हूँ और फिर तुरन्त ही अखबार पढ़ने बैठ जाता हूँ और यह कार्य-क्रम कई वर्षों से नियमित रूप से चलता आ रहा है। कहिए महाराज! ठीक है न!

तो भाई! आजकल के लोगों ने केवल अखबार के समाचार पढ लेने को ही स्वाध्याय मान रखा है। परन्तु स्वाध्याय करने का मेरा मतलब कुछ और ही है। मेरा मतलब अखबार पढने से नहीं परन्तु शास्त्रों और धर्म ग्रंथों के पढ़ने को स्वाध्याय कहा जाता है। यद्यपि अखबार में भी वाचना होती है परन्तु इसमें स्त्री कथा, देश कथा, राज कथा और भक्त-कथा आदि सांसारिक बातों का ही विशेष रूप से समावेश होता है और इससे संसार घटने के बजाय और अधिक बढ जाता है। क्योंकि जैसे समाचार होंगे वैसे ही भावना में राग द्वेष का उद्रेक हो जाएगा और राग द्वेष आ जाने के कारण आत्मा का अधः पतन ही संभवित है। तो तीर्थङ्कर भगवान की पवित्र वाणी के वाचन को ही यहां स्वाध्याय बताया गया है और धर्म कथाओं के पढ़ने से ही आत्म कल्याण हो सकता है। परन्तु तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का स्वाध्याय भी अखूट पुण्य वाले को ही प्राप्त होता है।

भाई ! इन आध्यात्मिक और आत्मोद्धार की बातों का ज्ञान तभी हो सकता है जबकि मनुष्य संत महापुरुषों के समागम में आने की दिलचस्पी रखता हो। बगैर सत्संगति किए आत्मज्ञान नहीं हो सकता। मैंने कई भाइयों को देखा है जो सम्प्रदाय वाद के चक्कर मे फंस कर अपने घर बैठे-बैठे ही कुछ साधु-साध्वियों के बनाए हुए भजनों को गाकर ही स्वाध्याय की इति श्री समझ लेते है। वे इतने में ही आत्म संतोष कर लेते है। परन्तु इससे आगे बढने की कोशिश ही नहीं करते। तो इस प्रकार का आचरण भी ठीक नहीं है क्योंकि पढना ही है तो फिर तीर्थङ्कर भगवान की अनमोल वाणी का ही स्वाध्याय क्यों नहीं करते जिससे कुछ सार तो निकले और समय का सदुपयोग तो हो? तो मैं देख रहा हूँ कि स्थानकवासी समाज में तो स्वाध्याय करने की परिपाटी तो विलीन सी होगई है। परन्तु जब हम दूसरी तरफ दृष्टिपात करते है तो हम देखते है कि इतर समाज मे और खास तौर से दिगम्बर समाज में स्वाध्याय की परिपाटी दिन प्रति दिन तरक्की करती जा रही है। प्रत्येक दिगम्बर जैन भाई मंदिरजी में जाकर नियमित रूप से दस पंद्रह मिनट के लिए भी शास्त्रजी का स्वाध्याय करता ही है। तो इसी कारण आज वे अपने धर्म में मजबूत भी बने हुए है। वे आप लोगों की तरह भैरूँ, भवानी शीतला या पीर-पैगम्बर के यहां लौकिक कामना से जाकर अपना उन्नत मस्तक नहीं झुकाते। परन्तु भाई ! अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आप लोग बड़े-बड़े महापुरुषों के उपदेश सुनने के बावजूद भी उन पर आचरण नहीं करते। बल्कि आप दूलमुल नीति के अनुसार हर किसी के बन जाते हैं और यही कारण है कि आज स्थानकवासी समाज का दिन प्रति दिन ह्रास होता जा रहा है। आपकी समाज मे से बहुत से लोग इतर समाज में चले गए और आपके धर्म तथा धर्म गुरुओं के निंदक बन गए।

कहिए ! क्या अब भी आप अपनी आंखों पर पट्टी बाधे सुख की निद्रा में सोते ही रहेंगे। अब जागरण की वेला आगई है। इसलिए मोह निद्रा को त्याग कर सजग हो जाओ और अपनी समाज की चोर-लुटेरों से सतर्कता पूर्वक रक्षा करो। परन्तु यह रक्षा केवल स्वाध्याय के बल पर ही हो सकती है। जब तक घर-घर में स्वाध्याय का पुर जोर प्रचार नहीं होगा तब तक हम अपने समाज की रक्षा करने में असमर्थ ही रहेंगे।

तो तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का नियमित रूप से थोड़े समय के लिए भी स्वाध्याय किया करो। यदि आप तीर्थङ्कर भगवान की वाणी रूपी लगाम के कब्जे में रहोगे तो निश्चित रूप से समझिए कि आप मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और अशुभ योगों की प्रवृत्तियों से भी बचते रहेंगे। परन्तु यदि बिना लगाम के घोड़े के समान मन के मुताबिक चलने वाले बन गए तो आपकी जीवन रूपी गाड़ी ऊबड़-खाबड़ रास्ते में जाकर खतरे में पड़ जायेगी। इसलिए आवश्यक है कि आप लोग भी दिगम्बर समाज की तरह स्वाध्याय प्रेमी बन जांय। हमारी समाज में सब प्रकार की साधन सम्पन्नता होते हुए भी स्वाध्याय की बड़ी भारी कमी है।

और इसी भारी कमी की पूर्ति के लिए मंत्री पं० मुनि श्री पन्नालालजी म० ने भी स्वाध्याय संघ की स्थापना की है जिससे कई भाई सुश्रावक बनकर चातुर्मास काल में यत्र-तत्र आमन्त्रित होकर उपदेश देने जाते हैं। इसके अलावा कई मुनिराज भी स्वाध्याय पर विशेष रूप से लोगों को प्रेरित करते रहते हैं और खास तौर से इस कमी की पूर्ति के लिए स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने बहुत वर्ष पहिले ही 'निर्ग्रंथ प्रवचन' नामक पुस्तक का प्रकाशन करवा दिया था। उसमें बत्तीस ही सूत्रों की कतिपय मूल गाथाएं भावार्थ

सहित संग्रहित की गइ है ताकि उनका प्रत्येक जैन और अजैन भी स्वाध्याय करके जैन धर्म के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त कर सके। जैसे वैष्णवों के यहा गीता में अठारह अध्याय है उसी प्रकार 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' मे भी अठारह अध्यायों मे भगवान की वाणी संकलित है। ताकि हर एक भाई नियमित रूप से एक दो अध्यायों का स्वाध्याय आसानी से कर सके और इसका सभी भाषा-भाषियों में अधिक से अधिक प्रचार हो सके इसलिए इसका अभी तक नौ दस भाषाओं मे अनुवाद भी कराया जा चुका है। तो इसके प्रकाशित कराने का एक मात्र यही उद्देश्य था कि हर कोई सभी शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं कर सकता और अजैन भी यदि जैन धर्म के सिद्धान्तों से अवगत होना चाहें तो वे भी संक्षिप्त होने से इसका स्वाध्याय कर सकेंगे और तीर्थङ्कर भगवान की वाणी के रहस्यों को भलि-भांति समझ सकेंगे। तो इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए इसका प्रकाशन कराया गया है। भाईयो! यदि अभी आप से कोई शास्त्रीय बातों के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न कर बैठे तो आप प्रत्युत्तर नहीं दे सकते क्योंकि आपके जीवन मे स्वाध्याय करने की आदत नहीं है। परन्तु इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन के द्वारा आप लोगों मे स्वाध्याय की आदत हो जायेगी। फिर आप शास्त्रीय प्रश्नों के प्रत्युत्तर बखूबी दे सकेंगे। इसलिए आपको स्वाध्याय करने की आदत डालनी ही चाहिए। अरे! आप लोग दिन रात लौकिक ज्ञान तो प्राप्त करते ही रहते हैं परन्तु पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करने की भी नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि इसके बिना आत्मा की मुक्ति भी नहीं हो सकती। इसलिए मैं तो यहां तक चाहता हूँ कि स्थानकवासी समाज का एक-एक बच्चा स्वाध्यायी बन जाये जिससे एक दिन हमारा समाज उन्नति के शिखर पर चढ़ जाये। यदि आपने अपने जीवन में स्वाध्याय की आदत डाल ली तो आप अखूट पुण्य का उपार्जन कर सुखी बन जायेंगे।

भाई ! स्वाध्याय करते समय भी एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि वाचन करते हुए यदि कहीं कोई बात समझ मे न आ सके तो उसे अपने गुरु महाराज या किसी जानकार श्रावक से पूछ कर शका का समाधान कर लें। अन्यथा इसी प्रकार केवल पढ जाने से कोई सार निकलने वाला नहीं है। जैसे कि श्रीमद् ठाणागजी-सूत्र मे एक जगह बताया गया है कि नारक मे दो दृष्टियें पाई जाती है— अर्थात् नरक का नेरिया सम्यक दृष्टि और मिथ्या दृष्टि वाला भी होता है और फिर दूसरे स्थान पर उसी बात को इस प्रकार कह दिया कि नारक में तीन दृष्टिऐं भी होती हैं—यानि सम्यक, मिथ्या और मिश्र दृष्टि भी पाई जाती है। तो जब साधारण बुद्धि वाले दोनों स्थानों पर उक्त बात को पढते हैं तो वे शका में पड जाते है और विचार करने लगते है कि एक स्थान पर तो इस बात को इस प्रकार कह दी और दूसरे स्थान पर उसी बात को इस प्रकार कैसे कह दी ? ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर यदि आपने किसी ज्ञानी महापुरुप से पूछताछ कर ली तब तो शका का निवारण हो जायेगा अन्यथा शका शील ही बने रहोगे। तो शास्त्रों के जानकार से अवश्यमेव शका का निराकरण कर लेना चाहिए। उससे पूछने पर वह आपको बताएगा कि भाई ! दोनों स्थानों पर कही गई बातें ठीक है और यथार्थ है। क्योंकि नरक के नेरिए की जब मृत्यु होती है तब वह या तो सम्यक् भाव में उवट्टिल होता है अथवा मिथ्या भाव मे मरता है। तो इस प्रकार से नारक मे दो दृष्टियें पाई जाना भी ठीक है और तीन दृष्टियों वाला बताया गया है नारक को तो वह ठीक है। अर्थात नारक जीव मिश्र भाव वाला भी होता है। परन्तु जब नरक के नेरिए मे मिश्र भाव आ जाता है तब उसकी उवट्टणा होती ही नहीं है। तो इस प्रकार से नारक मे दो और तीन दृष्टियों का पाया जाना यथार्थ है। भाई ! यह प्रश्न तो यद्यपि स्व० वाडीमान

मदेक प० मुनि श्री नदलालजी म० ने तीन थुई वाले राजेन्द्रसूरिजी से शास्त्रार्थ के दौरान में पूछा था परन्तु प्रसगवशात गुरु महाराज से धारणा करने के कारण आप लोगों के सामने भी रख दिया है। वो मिश्र दृष्टि वाले जीव नक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में भी पाए जाते है। परन्तु जब तक जीव के मिश्र दृष्टि के भाव रहेंगे तब तक उसकी मृत्यु होगी ही नहीं और इसी दृष्टिकोण से ठाणांगजी सूत्र में दो और तीन दृष्टियें बताई गई है।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि इसी प्रकार से स्वाध्याय करते समय जहा जहा शका उत्पन्न हो तो गुरु महाराज से पूछ कर उसका निराकरण कर लेना चाहिए। क्योंकि यदि शका बनी रही तो स्वाध्याय मे उदासीनता आ जायेगी।

अब इसके बाद आचार्य श्री फर्मा रहे है कि सीखे हुए धार्मिक ज्ञान का बार-बार पर्यटन करते रहना चाहिए। इससे सीखा हुआ ज्ञान विस्मृति में नहीं आने पाता। क्योंकि भाई! यह जीव अधर्म की बातें जल्दी नहीं भूलता जबकि धर्म की बातों को यह जीव जल्दी भुला देता है क्योंकि किसी गुरु ने अपने शिष्य से प्रश्न किया कि—

*पान सडे, घोड़ा अडे, विद्या विसर जाय।*
*ताता खीरे, बाटी बले, कहो चेला कुण न्याय?*

तब शिष्य ने गुरुजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि—गुरुजी फेरी नहीं'।

अर्थात्—फेरे बिना पान भी सड जाते हैं, घोड़ा भी अड़ने लगता है, विद्या भी विसर जाती है और बाटी भी जलने लगती है। इसलिए यदि सबको फेरते रहोगे तो सड़ने, अड़ने बिसरने और जलने की नौबत नहीं आने पाएगी।

तो मैं यहां आपको पर्यटना के सम्बन्ध में कहने जा रहा था कि यदि आप सीखे हुए धार्मिक ज्ञान को वार-वार दुहराते रहेंगे तो वह हमेशा ताजा रहेगा। जैसे आपने वडी मेहनत करके और समय खर्च करके सामायिक, प्रतिक्रमण, नवतत्त्व लघु दण्डक आदि-आदि धार्मिक ज्ञान तो उपार्जन कर लिया परन्तु यदि उस सीखे हुए ज्ञान का वार-वार पर्यटन नहीं करोगे तो वह ज्ञान विस्मृत हो जायेगा और यदि उस सीखे हुए धार्मिक ज्ञान का वार-वार पर्यटन होता रहेगा तो वह हमेशा के लिए कायम रह जाएगा। आज कइयों के मुँह से सुना जाता है कि महाराज! हमने वचपन मे सामायिक-प्रतिक्रमण पच्चीस बोल आदि सब कुछ सीख लिया था और उस समय तो हमे याद थे परन्तु ज्योंही हम घर धंधे में लगे और ससार चक्र में घानी के बैल की तरह फिरने लगे तो वह सीखा हुआ ज्ञान विस्मृत होगया और आज हमको कुछ भी याद नहीं रहा। तो भाई! उस सीखे हुए धार्मिक ज्ञान के भूल जाने का एक मात्र यही कारण है कि उसका वार-वार पर्यटन नहीं किया। यदि उस ज्ञान का पर्यटन होता रहता तो वह ज्ञान आज भी ज्यों का त्यों वना रहता। परन्तु धार्मिक ज्ञान का सीखना और उसका पर्यटन करना भी अखूट पुण्य का कारण है। तो आप लोग सदैव ख्याल रखें कि जो भी धार्मिक ज्ञान सीखें उसका वार-वार पर्यटन अवश्यमेव करते रहें ताकि वह ज्ञान जिंदगी भर याद रह सके।

इसके बाद नम्बर आता है अनुप्रेक्षा का अर्थात् सीखे हुए ज्ञान के विषय में यह विचार करते रहना कि यह बात यहां किस आशय से कही गई है। तो विचार करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं। जैसे व्याख्यान में गुरु महाराज कोई बात कहते हैं तो लोग सुनकर अपने-अपने घर या बाजार में जाते हैं और फिर वहां दो-चार व्यक्ति इकट्ठे होकर व्याख्यान में सुने हुए विषय पर चर्चा करते हैं और

कहते हैं कि महाराज ने वह बात उस आशय से नहीं परन्तु इस आशय से कही थी और इस प्रकार अनुप्रेक्षा करने से विचार करने से आत्मा के सात आठ कर्म ढीले पड जाते हैं। उनका बहुत लम्बा चौड़ा संसार स्वल्प रह जाता है। यही बात श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में भी बताई गई है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी से उनके परम शिष्य भगवान गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन्! अनुप्रेक्षा से इस जीव का क्या लाभ होता है?

तब भगवान ने फर्माया—हे गौतम! अनुप्रेक्षा करने से इस जीव के आयुष्य कर्म को छोड़कर बाकी के सात कर्मों की तीव्र बंधनों से बंधी हुई प्रकृतियां शिथिल बंधन वाली हो जाती हैं और वे लंबे काल वाली प्रकृतियां स्वल्प काल वाली रह जाती हैं, तीव्र रसवाली मंद रसवाली तथा अधिक प्रदेश वाली अल्प प्रदेश वाली बन जाती हैं। इस प्रकार यह आत्मा दीर्घ कालीन संसार को स्वल्प काल में ही पार कर जाती है। तो भगवान ने भी अनुप्रेक्षा का इतना बड़ा महत्व बताया है।

अब धर्म कथा का नम्बर आता है। यों तो संसार में कई प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं। जैसे काम कथा, स्त्री कथा, देश कथा, भक्त कथा, राज कथा, अर्थ कथा आदि आदि। परन्तु मनुष्य को इन कथाओं से सदैव बचते रहना चाहिए और इनके स्थान पर धर्म कथा ही करना चाहिए। धर्म कथा करने से यह आत्मा जो अनन्त काल से कर्म बन्धनों में जकड़ी हुई चली आरही है तो वह इन बन्धनों से छूट कर मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेती है और धर्म कथा करने को भी ज्ञानी पुरुषों ने स्वाध्याय कहा है। तो ये पांच प्रकार

के स्वाध्याय भी अखूट पुण्य वाली आत्मा ही कर सकती है। बिना अखूट पुण्य के स्वाध्याय होना भी बहुत मुश्किल है।

भाई! ऐसे तो दुनिया मे लाखों ही तरह के ग्रथ प्रकाशित हो चुके है और मैंने तो उन ग्रथों की सख्या के सम्बन्ध मे सुना ही नहीं परन्तु कलकत्ता की लायब्रेरी मे स्वय जाकर उन ग्रथों को देखा भी है। उस लायब्रेरी मे पुस्तकों की सख्या चार लाख के करीब है और इतनी सारी पुस्तकें जो प्रकाशित हुई है तो वे सब मनुष्यों के लिए है न कि पशुओं के लिए। परन्तु फिर भी उन पुस्तकों में लौकिक ज्ञान भरा हुआ है जो हमारे ससार को बढ़ाने वाला है। परन्तु लोकोत्तर ज्ञान तो आपको केवल धर्म शास्त्रों के स्वाध्याय से ही प्राप्त हो सकता है। तो पाच प्रकार का स्वाध्याय करने से आत्मा के कर्म हल्के हो जाते है और आत्मा निर्मल बन जाती है। परन्तु पुण्यवान के अतिरिक्त धर्म शास्त्रो का स्वाध्याय हर एक को प्रिय भी नहीं लगेगा।

आज आपको ईसाई अपने धर्म ग्रन्थ बाइबिल का, मुसलमान अपनी कुरान का और वैष्णव लोग अपनी गीता या वेद-पुराण का नियमित रूप से स्वाध्याय करते हुए दृष्टि गोचर होंगे परन्तु अपनी समाज मे कुछ सस्कार ही इस प्रकार के पड़े हुए है कि लोगों मे धर्म शास्त्रों के स्वाध्याय करने की अभिरुचि ही जागृत नहीं होती। हां, कुछ लोग अवश्यमेव स्वाध्याय करते है परन्तु अधिकतर लोग उपन्यास, कहानी और अखबार आदि ही पढ़ने के शौकीन नजर आते है और उन लोगों से यदि धर्म ग्रन्थों को पढ़ने के लिए जोर देकर कहा भी जाता है तो वे नाक-भौं सिकोड़ने लगते है और बहाने बाजी करके छुटकारा ले लेते हैं। परन्तु भाई! अच्छे काम के लिए नाक-भौं क्यों सिकोड़ते हो? यह तो तुम्हारे भले के लिए

ही कहा जाता है। यदि तुम स्वाध्याय प्रेमी बन जाओगे तो तुम्हारा यह लोक और परलोक भी सफल हो जाएगा।

और फिर अंत में आचार्य श्री कह रहे हैं कि संसार में किसी को सम्मान और बड़प्पन जो मिलता है वह भी अखूट पुण्य से ही प्राप्त होता है। दुनिया मे मान-सम्मान और यशोगान की सबको तमन्ना रहती है परन्तु मान सम्मान भी ऐसे ही हरेक को नहीं मिल जाता! परन्तु जिसने पूर्व जन्म मे अखूट पुण्य का संचय किया होगा उसी को इस जन्म में मान-सम्मान प्राप्त हो सकेगा। तो बड़प्पन प्राप्त करने के लिए हर एक को पुण्य का संचय करना चाहिए। भाई! लंबी-चौड़ी प्रजा होती है परन्तु उनमें राजा तो एक ही होता है जो सारी प्रजा के द्वारा मान-सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तो राजा बनने के ख्वाहिशमन्द तो आप लोग भी होंगे और दुनिया का हर बच्चा बच्चा यही इच्छा करता है कि मैं राजा बन जाऊँ परन्तु उसके लिए कितने त्याग और तप की आवश्यकता है? तुम पूर्व जन्म में इतना त्याग और तप भी तो करके नहीं आए जिससे तुम भी राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हो सको। क्योंकि शास्त्र कारों ने कहा है कि —

तप बिन मिले न राज!

अर्थात्–घोर तपस्या के बिना राज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो जो आत्मा पूर्व जन्म में बहुत दान देकर घोर तप करके, शील पाल कर और उत्तम भावना पाकर आती है उसी को भविष्य में राज्य सिंहासन की प्राप्ति होती है। परन्तु बिना तप और त्याग के राजा तो क्या एक मामूली सेठ भी नहीं बन सकते। तो अखूट पुण्योदय से ही यह आत्मा तीर्थङ्कर राजा, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, सेठ, सेनापति वगैरह-वगैरह उच्च पदाधिकारी बन सकती

है और यही बात आप धार्मिक क्षेत्र और सांसारिक क्षेत्र मे भी देख सकते है। तो धार्मिक क्षेत्र मे भी जिसके अखूट पुण्य होते हैं, वही आचार्य, उपाचार्य, उपाध्याय, गणी, गणावच्छेदक, प्रवर्तक, स्थविर या प्रसिद्ध वक्ता वगैरह की पदवियें धारण कर संसार में पूजा प्रतिष्ठा और यश को प्राप्त करते हैं और आज वर्तमान मे जो लोग ऊँची सत्ता पर राष्ट्रपति, प्रधान-मन्त्री, मन्त्री, राज्यपाल या उप-मन्त्रियों के रूप मे नजर आ रहे हैं तो उन्होंने भी पूर्व जन्म मे बडा भारी त्याग और तप किया है जिसकी बदौलत आज वे सत्ताधीश बनकर लोगों के द्वारा मान-सम्मान प्राप्त कर रहे है। तो पहिले उन्होंने जनता की सेवा की है, त्याग किया है, जेलों मे यातनायें सही है और सर्वस्व का न्यौछावर कर अपने प्राणों की बाजी लगाई है और तब कहीं प्रजा ने उन्हें अपना नेता बनाकर मान-सम्मान दिया है। तो बड़ा बनने के लिए बडा भारी त्याग करना पडता है और बलिदान देना पड़ता है। बिना तप त्याग के कोई भी बडा नहीं बन सकता है।

भाई! एक बडा वह भी कहलाता है जिसे आप बाजार में चाट वाले की दूकान पर जाकर बड़े शौक से चट कर जाते है। परन्तु वह बाजारू चाट का नन्हा सा बडा भी बडे गर्व के साथ दुनिया के लोगों को सम्बोधन करते हुए कहता है कि भाई! आज आप मुझे बड़ा कहकर पुकारते है और मुझे खाकर बड़े प्रसन्न होते हैं तो मैं भी बडा ऐसे ही नहीं बन गया हूँ। मैंने भी बड़ा बनने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहन किए है और तब कहीं आप लोग मुझे बड़ा कह रहे है। तो मैं आप लोगों को बडा बनाने के लिए और नसीहत देने के लिए अपनी जीवन गाथा सुना देना उपयुक्त समझता हूँ। आशा है आप उसे सुनकर अपने जीवन मे कुछ तप और त्याग की भावना लाकर बड़ा बनने की कोशिश करेंगे।

तो अब आप मेरी वडा बनने की कहानी जरा ध्यान पूर्वक सुन लीजिए। भाई ! मैं पहिले मूंग या चवले के रूप में था और नर के रूप मे कहलाता था। परन्तु फिर मै पानी में भिगोया गया और सुखा कर दाल के रूप मे बना लिया गया। तो मैं नर से नारी के रूप मे परिवर्तित होगया। परन्तु इतने पर ही मेरी कहानी समाप्त नहीं होगई। मुझे अभी कई अग्नि परीक्षाओं मे से होकर गुजरना पडा। देखो! फिर मेरे ऊपर से छिलके उतारे गए और गंगा स्नान कराया गया। इसके बाद परीक्षक ने मुझे भिल्ला और चक्की में पीसकर मेरे शरीर का चूर्ण बना दिया। उस समय मुझे जिस वेदना का अनुभव होरहा था वह मैं ही जानता हूँ। परन्तु इस पर भी उस निर्दयी को दया नहीं आई और उसने एक भगोने में लेकर मुझ जले हुए पर नमक मिर्च आदि कई तरह के मसाले डालकर मुझे मथ डाला। ऐसी परिस्थिति हो जाने पर भी मैं सतोष धारण किए रहा और समझने लगा कि अब तो मेरे दुखों का अन्त होगया है। परन्तु इतने पर ही उसे मन नहीं आया और उसने अपनी स्त्री से चूल्हे पर कढाई चढाने को कहा। स्त्री ने भी उसकी आज्ञा का पालन किया और उसने भी चूल्हे पर कढाई चढाकर उसमे तेल डाल दिया। मैं देख देख कर बड़ा चिंतित होरहा था और अपने मन में सोच रहा था कि भगवान्! क्या अभी मुझे और भी दुख के पहाड सहन करने पडेंगे? परन्तु उस वक्त भगवान की प्रार्थना के अतिरिक्त मेरे पास कोई चारा भी तो नहीं था।

हां, तो जब तेल खोलने लगा तो उसी वक्त उस घर की मालकिन ने मेरे घोल को हथेली पर लिया और गोल-गोल बनाकर एक एक करके उस खोलते हुए तेल में डालना शुरु कर दिया। मेरा सारा शरीर उस दहकते हुए तेल में तलकर कुप्पा बन गया और मैं गोल-गोल रूप में बदला गया। इस प्रकार उसने सीखे ताकते से

कढाई में से निकाल कर मुझे एक परात में रख दिया। अब मुझे पूर्ण रूप से विश्वास हो चुका था कि मेरे दुखों की इति श्री हो चुकी है। परन्तु अभी तक मेरे दुख को कहानी समाप्त नहीं हुई थी। मुझे अंतिम परीक्षा याने बलिदान भी देना पडा। तो वह मालिक मुझे इज्जत के साथ थाल मे रखकर चौपड बाजार मे ले गया और उसने मुझे शान के साथ सजा कर और दही से मेरे सारे शरीर को पोत कर एक कुण्डे मे रख दिया। मैं इस प्रकार उस कुण्डे मे बैठा हुआ शान के साथ इठला रहा था और बाजार के नजारे देख रहा था। मेरा रूप भी अब निखर चुका था और मनमोहक बन गया था। अब मुझे लोग भी बडा कहकर सबोधन करने लगे। कुछ लोग मेरे रूप को देखकर दूकान पर आकर बैठ गए। मैं भी अपना बडा नाम सुनकर हर्षित होने लगा। मैं सोचने लगा कि अब तो वास्तव में मैं बडा बन चुका हूँ। तो इतने ही मे लोगों ने दूकानदार से एक एक आने के बडे देने की फरमाइश की। दुकानदार ने भी फौरन उनकी फरमाइश के मुताबिक एक-एक दोने मे मुझे रखकर उनकी सेवा में पेश कर दिया। अब तो मैं उनके हाथ मे जाकर और भी अपने भाग्य पर इठलाने लगा। परन्तु इतने ही में मैं क्या देखता हूँ कि वे लोग मेरी तारीफ करते हुए मुझे चट कर गए। तो मैंने भी सोच लिया कि बडा बनने वालों को अपना बलिदान भी देना पडता है और इस प्रकार दुनिया की नजरों में बड़ा बनकर मैंने परोपकार मे अपने जीवन का बलिदान भी दे दिया। अब मेरी जीवन गाथा समाप्त हो चुकी है।

तो मेरी बडा बनने की कहानी सुनकर आपको भी अपने जीवन में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि आपको भी मेरी तरह से बड़ा बनना है और दुनिया की नजरों मे सम्मान पाना है तो आपको भी अपने जीवन मे बड़ा भारी त्याग करना पडेगा। क्योंकि

बिना त्याग किए कोई भी बड़ा नहीं बन सकता। इसलिए बड़ा बनने के इच्छुकों को त्याग, सेवा, परोपकार आदि-आदि गुण भी धारण करने चाहिए।

भाई ! आपके बैंगलोर शहर में भी बड़ा बनने के गुण धारण करने वाले सेठ कुन्दनमलजी लूँकड़ हैं जो अपने जीवन में काफी त्याग की भावना रखते हैं और चूंकि इन्होंने अपना दिल बड़ा बना लिया है इसलिए आप सबने मिलकर इन्हें संघपति के पद पर आसीन कर दिया। मैं समझता हूँ कि सेठजी भविष्य में भी इसी प्रकार की त्याग भावना रखते रहेंगे। परन्तु कई लोग ऐसे भी हैं जो बड़ा बनने के इच्छुक तो हैं परन्तु त्याग, सेवा, परोपकार आदि आदि गुणों को अपनाना नहीं चाहते और लड़ना चाहते हैं। तो इस प्रकार की प्रवृत्ति से दुनिया की नजरों में बड़ा नहीं बना जा सकता। तो बड़ा बनने के लिए बड़ा भारी त्याग भी करना पड़ता है। और मैं तो तह दिल से यही भावना करता हूँ कि आप सब बड़े बन जाय परन्तु त्याग किए बिना नहीं बन सकते। इसलिए जीवन में त्याग भावना को साकार रूप दो। जैसे कि राजा या प्रधान मंत्री बनने की तो सभी भावना रखते हैं परन्तु उस पद पर आसीन होने के लिए उतने ही बड़े त्याग और बलिदान की भी नितान्त आवश्यकता है। देखलो ! आज पं० जवाहरलाल नेहरु अपने भारी त्याग-तप और बलिदान के कारण चालीस करोड़ भारतवासियों के प्रधान मंत्री और हृदय सम्राट बने हुए हैं। तो क्या उन्होंने अपने जीवन में कम त्याग किया था ? अरे ! पं० नेहरु ने महात्मा गांधी के पद चिन्हों पर चलकर चौदह वर्षों तक जेलों की यातनाएँ सही थी और देश के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। यहाँ तक कि इलाहाबाद में निर्मित अपना सर्व श्रेष्ठ आनन्द-भवन भी कांग्रेस को दे डाला और राजसी सुख वैभव का भी त्याग कर दिया। तो

यह कोई प्राचीन इतिहास की बात नहीं है। यह तो आपके और हमारे सामने की ही बात है। जब वे जेल में थे तो समाचार मिला कि उनकी धर्मपत्नि श्रीमती कमला नेहरु मृत्यु शैय्या पर पड़ी हुई आपका इन्तजार कर रही है परन्तु फिर भी अंग्रेज सरकार उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं हुई तो इतने असह्य कष्टों को भी उन्होंने जहर की घूंट के मानिंद शान्त भाव से सहन कर देश सेवा करते रहे। और उसी त्याग और तप का परिणाम है कि आज वे भारतीय शासन में प्रधान मंत्री पद पर आसीन हैं। आज उनका नाम देश और विदेशों में बड़ी इज्जत के साथ लिया जा रहा है और जहां कहीं भी विदेशी सरकारों के द्वारा आमन्त्रित होकर जाते हैं वहां उनका भव्य स्वागत किया जाता है जैसा कि आज तक के इतिहास में किसी दूसरे का स्वागत नहीं हुआ।

तो कहने का सारांश यह है कि जब दाल के बड़े को भी बड़ा बनने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़े और जीवन का बलिदान देना पड़ा और तब कहीं वह बड़ा बनकर सबके मुंह पर चढ़ा। तो इस संसार में मानव को बड़ा बनने के लिए कितने भारी त्याग और तप की आवश्यकता है। इसलिए मेरी तो आपको यही नेक सलाह है कि आप निस्वार्थ भावना से प्रत्येक सेवा क्षेत्र में कार्य करते जाओ और फल की आशा मत करो। परन्तु जब आपकी सेवा फलवती हो जायेगी तो जनता जनार्दन स्वयमेव आपके गुणों का मूल्यांकन करके आपको बड़ा बना देगी और आपकी पूजा प्रतिष्ठा करने लगेगी।

आज हम जितने भी अग्रगण्य महापुरुषों का नाम बड़ी श्रद्धा साथ लेते हैं तो उन सबने अपने जीवन में बड़े बड़े जन सेवा के कार्य किए हैं, त्याग किया है, और समय आने पर परोपकार के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग भी किया है और तभी आज हम

उनका प्रातःकाल उठते ही सबसे पहिले नाम लेकर नमस्कार करते हैं।

तो आचार्य श्री भी कह रहे हैं कि यह बड़प्पन भी प्रबल पुण्य से ही प्राप्त होता है। बिना पुण्य उपार्जन किए कोई भी संसार में मान-सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए बड़प्पन प्राप्त करने के लिए प्रत्येक को पुण्य कर्मों का सचय करना चाहिए।

और नीतिकार भी इसी बात की पुष्टि में कहते हैं कि —

*बडपन, भलपन, गाढ़पन, होय तिका घर हाय।*
*टाटी ऊपर तीन घर, सुन्या न देख्या कोय॥*

अर्थात्—बडप्पन, भलापन और धर्म कार्य में गाढापन ये तीन ही बातें किसी-किसी को ही प्राप्त होती हैं। जैसे कि घास-फूस की टट्टियों पर कोई भी बुद्धिमान बड़ी-बड़ी पट्टियाँ नहीं डालता परन्तु पट्टियाँ तो बड़ी-बड़ी मजबूत चुनी हुई दीवारों पर ही डाली जाती हैं। क्योंकि वे मजबूत दीवारें ही उन पट्टियों का भार वहन करने में शक्य हैं। उन बेचारी घास-फूस की टट्टियों में कहां सामर्थ्य है जो उन पट्टियों का भार वहन कर सके। तो यह बडप्पन भी प्रबल पुण्य वाले को ही प्राप्त होता है और वही बडप्पन को निभाने की ताकत रखता है। वे बडप्पन प्राप्त कर उसमें फूल नहीं जाते परन्तु जीवन में गंभीरता धारण किए हुए रहते हैं। उनके एक एक शब्द से निरभिमानता की सौरभ आती है।

देखो! प० जवाहरलाल नेहरू जब रूस, चीन, अमेरिका आदि बड़े-बड़े देशों में आमंत्रित होकर गए तो वहां उनका लाखों नर नारियों ने हृदय से स्वागत किया और उस स्वागत समारोह में वहां की सरकारों के लाखों ही रुपए भी खर्च हुए। परन्तु जब वे वापिस

भारत को लौटे और भारतीय जनता ने जब उनका दिल्ली पालम हवाई अड्डे पर हृदय से स्वागत किया तब उनके अभिवादन के प्रत्युत्तर में प० श्री नेहरु ने अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हुए बड़े ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी शब्दों में कहा—प्यारे दोस्तों! आप जो इस कड़कड़ाती दोपहरी में दूर-दूर से आकर इतनी भारी संख्या में मेरा स्वागत कर रहे हैं तो यह मेरा स्वागत नहीं परन्तु आपका स्वागत होरहा है। यह भारत माता का स्वागत है और चालीस करोड़ भारतीय लोगों का स्वागत होरहा है।

तो कहिए! उनके शब्दों में कितनी गभीरता और निरभिमानता प्रतिभासित होती है। क्यों न हो! क्योंकि वे सच्चे मायने में बड़प्पन धारण किए हुए हैं। अन्यथा इतना भारी स्वागत होने पर अभिमान से फूला नहीं समाता और अपनी प्रशंसा के अपने ही मुँह से पुल बांध देता। तो जिसमे वास्तविक बड़प्पन होता है उसमे निरभिमानता और गंभीरता का भी निवास रहता है।

तो आचार्य श्री कह रहे हैं कि बड़प्पन मिलता है वह भी प्रकृष्ट पुण्य से मिलता है। और यही बात मैं अब कुछ समय के लिए आपको दृष्टान्त के द्वारा समझाने जा रहा हूँ। तो मैंने कल कहा था कि यह कष्ट का रोगी उस आम्रवृक्ष के सूखे पत्तों और टहनियों के चूर्ण को खाकर ही जब स्वस्थ दशा मे आगया तो राजा ने यह चमत्कार देखकर बड़ा पश्चाताप किया था। क्योंकि जो तीर कमान में से निकल जाता है वह लौटकर नहीं आता।

तो भाई! यह तो द्रव्य दृष्टान्त है परन्तु हमें तो इसमें से भावार्थ निकालना है कि हमको जो यह मनुष्य की जिंदगी मिली है वह आम्रवृक्ष के समान मिली है और यदि इसको, हमने विषय-

भोगों मे और कषाय का सेवन करने मे नष्ट कर दिया तो यह आम्रवृक्ष नष्ट हो जाएगा और बाद मे पश्चाताप करना ही शेष रह जाएगा। परन्तु यदि इस अमृत के समान आम्रवृक्ष की रक्षा की तो इसके फल खाकर हम अजर-अमर बन सकते हैं। क्योंकि इस मानव जीवन रूपी आम्रवृक्ष के द्वारा करनी करके देवता और सिद्धावस्था भी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु मानव आज अमृत-फल पैदा करने के बजाय आक और धतूरा के ही वृक्ष लगा रहे हैं और इसमें जब फल लगेंगे तो वे जहरीले ही लगेंगे। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि इस मानव जीवन रूपी आम्रवृक्ष की कीमत करो और जीवन मे विषय कषाय के फल मत लगने दो।

और जैसे उस सेठ ने कहा था कि राजन्! यदि आप इस आम्रफल को खालेंगे तो हमेशा के लिए सुखी बन जायेंगे। तो इसी तरह सन्त महापुरुष भी कहते हैं कि यदि तुमने इस मानव जीवन में करनी कर ली और शुभ-फल लगा लिए तो तुम भी हमेशा के लिए सुखी बन जाओगे। परन्तु यदि गुरुजनों का कहना नहीं मानकर इस मानव जीवन रूपी आम्रवृक्ष को विषय-भोगों के सेवन में ही गुजार दिया तो तुम्हारा जीवन दुखी बन जाएगा और फिर पश्चाताप करते रह जाओगे कि हाय! हमने गुरुजनों का कहना नहीं माना और जीवन को विषय-कषाय मे नष्ट कर दिया। अरे! महाराज तो हमारे भले के लिए ही कहते थे परन्तु हमने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया और इसी कारण आज हमें दुखों का सामना करना पड़ रहा है।

और श्रीमद् ठाणांगजी सूत्र मे भी बताया गया है कि बड़े देवताओं को देखकर कम वैभव वाले देवता भी अफसोस और पश्चाताप करते हैं और अपने मन में विचार करते हैं कि हाय!

हमें पूर्व जन्म में गुरुजनों ने तो बहुतेरा कहा था कि श्रावकजी! ज्ञानोपार्जन करो, विषय-कषायों से विरक्त बनो और धर्म करनी करने में अपने अनमोल समय का सदुपयोग करो। परन्तु उस समय जवानी के नशे में और धनमद, बलमद, रूपमद आदि-आदि में अंधा बनकर गुरु वचनों को हिकारत की दृष्टि से देखा और विषय भोगों में मस्त बना रहा इसलिए आज कम ऋद्धि वाला देव बना हूँ। यदि मैं गुरुजनों की आज्ञानुसार करनी कर लेता तो आज मुझे इस प्रकार ऋद्धिशाली देवताओं को देखकर पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। तो मेरा भी आप लोगों से कहना है कि आप भी अभी से धर्म करनी करने में लीन हो जाओ ताकि फिर पश्चात्ताप करने का मौका ही नहीं आने पाये और आज पुण्योदय से जब मानव जीवन और देव दुर्लभ शरीर मिल गया है तो इसको अवश्य-मेव सफल बनालो। परन्तु यदि इसे प्राप्त कर भी विषय भोगों में गवा दिया और सद्गुरुओं की शिक्षाओं पर अमल नहीं किया तो फिर तुम देव और मोक्ष गति के अधिकारी नहीं बन सकोगे और इनके बजाय नरक या पशु गति में उत्पन्न होकर घोर यातनाएं सहन करनी पड़ेगी।

इस प्रकार गुरु महाराज मनुष्य जीवन की कीमत बता रहे हैं तो आप लोगों का भी परम कर्तव्य है कि कषायाग्नि की लपट से बचने की पूरी तरह कोशिश करना और उत्तम करनी करके मानव जीवन को सफल बना लेना। देखो! कहीं यह चिंतामणि रत्न के समान मिला हुआ मनुष्य जन्म व्यर्थ हो न चला जाय। इसलिए इसकी हिफाजत करते हुए इसका पूरा-पूरा फायदा उठा लेना। अन्यथा तुम्हारा भी वही हाल होगा जैसा कि उस राजा का हुआ। उसे भी आम्रवृक्ष को बिना विचारे उखड़वा देने से हमेशा के लिए पश्चाताप करना पड़ा।

और जैसे एक दृष्टान्त के द्वारा बताया जाता है कि.—

*ज्यों ब्राह्मण ने चिंतामणि लाधो, तो पुण्यतणो म जोगो रे।*
*फाकग सांट नाखी दीधो, फेर न मिलवा को जोगोरे॥*
*यो भव रत्न चिंतामणि सारिखो॥ टेर॥*

भाई! इस मानव शरीर को चिंतामणि रत्न की उपमा दी गई है। इस मनुष्य जन्म की इसी प्रकार से हिफाजत करनी चाहिए जैसे कि चिंतामणि रत्न किसी को मिल जाने पर की जाती है। परन्तु जो इसको कंकर समझ कर विषय भोगों में गंवा देता है उसकी वैसी ही स्थिति होती है जैसी कि एक ब्राह्मण की हुई।

देखो! किसी समय एक गरीब ब्राह्मण अपने पेट की आग को बुझाने के लिए अपने घर से निकल कर किसी दूसरे गांव को जा रहा था। परन्तु भाग्योदय से रास्ते में किसी देवता ने उसकी गरीबी पर तरस खाकर एक चिंतामणि रत्न डाल दिया ज्योंही उसकी दृष्टि उस चम-चमाहट करने वाली वस्तु पर पड़ी तो प्रसन्न होकर उसने उसे उठा लिया। उसने सोचा चलो परमात्मा ने प्रसन्न होकर मेरी गरीबी की पुकार सुन ली और यह चिंतामणि रत्न दे दिया। अब इसके द्वारा मेरी सभी मनोकामनाएं पूर्ण हो जायेंगी।

उसने घर जाकर अपने मन में बंगले की इच्छा की तो उसी वक्त शानदार बंगला तैयार होगया और इसी प्रकार उसकी इच्छानुसार सभी साधन जुट गए। अब वह आनन्द पूर्वक रहने लगा। परन्तु देवता ने अपने ज्ञान से जान लिया कि इसकी तकदीर में सुख

पृथक रहना लिखा ही नहीं है। अतएव एक दिन वह देवता कौवे का रूप बनाकर आया और मुँडेर पर बैठ कर कांव-कांव करने लगा। जब ब्राह्मण ने बार-बार कांव-कांव की आवाज सुनी तो उसे क्रोध आगया। उसने विचार किया कि यह दुष्ट कौआ कांव-कांव करके मेरी निद्रा भंग कर रहा है अतएव इसे पत्थर मारकर उड़ा देना चाहिए। तो उस मूर्ख ने भी बिना सोचे विचारे अपने पास रखे हुए चिंतामणि रत्न को ही उठाकर उस कौवे पर फैंक दिया। परन्तु ज्योंही उसने उस रत्न को फैंका त्योंही वह देवता कौवे के रूप में उस चिंतामणि रत्न को चोंच में दबा कर उड गया। वह उसकी ओर ताकता ही रह गया परन्तु वापिस चिंतामणि रत्न उसके हाथ में नहीं आ सका। उस चिंतामणि रत्न को गवा देने का परिणाम यह हुआ कि उसके साथ ही उसका सारा वैभव भी गायब होगया और उसके बदले में वही पुरानी झोंपडी और फूटा ठीकरा रह गया।

तो ज्ञानी महापुरुष इस दृष्टान्त को सुनाकर भव्यात्माओं को समझाने का प्रयत्न करते हैं कि देखो! यह मानव जीवन भी तुम्हें चिंतामणि रत्न के सदृश नाना प्रकार के कष्ट सहन करने के पश्चात सहजभाव में प्राप्त होगया है अतएव इसको पूर्ण यत्न के साथ रखना इसके द्वारा सेवा, परोपकार, दान, शील, तप, आदि-आदि धर्म करनी करके मनोवांछित सुख-वैभव प्राप्त कर लेना। परन्तु इसे विषय भोग और कषाय रूपी कौवे के पीछे मत फैंक देना। अन्यथा यह चिंतामणि रत्न बार-बार हाथ में आने वाला नहीं है। इसलिए

ज्ञानवान होकर समझदारी से काम लेना और अपने मानव जीवन को सफल कर लेना।

इस प्रकार जो मानव अपने जीवन में कषायाग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करते रहेंगे और मनुष्य जन्म को चिंतामणि रत्न के समान समझ कर इससे धर्म प्रवृति करेंगे वे इस लोक तथा पर लोक में सुखी बन जायेंगे।

बैंगलोर (कन्टोन्मेन्ट)
ता० २८-८-५६
शुक्रवार



# ※ सम्यक्त्व ※

卐

रक्तेक्षणं समदकोकिल कण्ठ नील,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क,
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

卐

भाइयों ! आज के प्रवचन में मैं आपसे कतिपय सम्यक्त्व के सम्बन्ध मे बात-चीत करने जारहा हूँ । मानव मे सम्यक्त्व की प्राप्ति होना अत्यावश्यक है । जब तक जीवन मे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह जीवन चौरासी लक्ष जीव योनियों मे परिभ्रमण ही करता रहता है । सम्यक्त्व के बिना इस आत्मा की मुक्ति सर्वथा असंभव है । इसलिए सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए मानव को यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए । यदि जीवन में सिर्फ एक बार भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई तो वह अनेक जन्म-जन्मान्तरों के पश्चात् भी मोक्ष गति में पहुँचा देगी । तो सम्यग्दर्शन का महत्व शास्त्रकारों ने बड़ा भारी बताया है ।

श्रीमद् तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्ययन में ही आचार्य श्री उमास्वाति ने फर्मा दिया है कि—

*सम्यगदर्शन, ज्ञान चारित्राणि मोक्ष-मार्ग. ।*

अर्थात—सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, यह तीनों ही मिलकर मोक्ष का मार्ग है। इन्हीं को रत्नत्रय या तीन रत्न भी कहते हैं और रत्नत्रय ही मोक्ष का मार्ग है।

यद्यपि इन तीनों की ही बड़ी महिमा है परन्तु इन तीनों में सम्यग्दर्शन की महिमा अद्वितीय है। क्योंकि सम्यग्दर्शन कारण है जबकि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र उसके कार्य हैं। सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्र सम्यक् होते हैं।

भाई ! सम्यक्दर्शन के अभाव में कितना ही ज्ञान क्यों न हो और कितना ही चारित्र का पालन क्यों न किया जाये परन्तु दोनों ही क्रमश मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र कहलाते हैं। इस प्रकार के ज्ञान और चारित्र दोनों ही संसार का भ्रमण कराने वाले हैं। ये आत्मा को मोक्ष गति की ओर अग्रसर नहीं करके चारों गतियों की ओर ही धकेलते रहते हैं। परन्तु जब जीवन में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो ये दोनों ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र बन जाते हैं और जिसके जीवन में एक बार भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो वह जल्दी या जन्म जन्मान्तरों के पश्चात भी अवश्यमेव मोक्ष में जाता ही है।

भाई ! आज का विषय आप लोगों को जटिल तो जरूर लगेगा परन्तु यदि आप एकाग्रचित्त होकर सुनेंगे और कुछ दिमाग पर जोर लगाएंगे तो आपकी समझ में आ जाएगा और आत्मा में आनन्द का उद्रेक होने लगेगा।

हां, तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति उस समय होती है जबकि मोहनीय की अनन्तानुबन्धी चौकड़ी और मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र

मोहनीय तथा सम्यक्त्व मोहनीय इन सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम या क्षयोपशम हो जाता है और अनुकूल बाह्य निमित्त मिल जाते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहिले इस आत्मा को तीन करण करने पडते हैं। इन करणों के द्वारा आत्मा के साथ बंधी हुई अनादि कालीन राग-द्वेष की गांठ खुल जाती है और उसकी दृष्टि, श्रद्धा या रुचि निर्मल बन जाती है। इस प्रकार उसे तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगता है। जैसे जन्मान्ध पुरुष को एकायक नेत्रों से दिखलाई देने लग जाय तो उसे कैसी अजहद खुशी होने लगती है? यद्यपि यह कल्पना का ही विषय है परन्तु इसी प्रकार एक मिथ्यादृष्टि जीव को जब सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है तो उसे भी वैसा ही आनन्द प्राप्त होने लगता है।

तो अब हमें सम्यग्दर्शन का सीधी-सादी भाषा में अर्थ भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि शब्द के अर्थ को जाने बिना विषय का परिज्ञान अधूरा ही रह जाएगा और फिर आपसे पूछे जाने पर आप किसी दूसरे को सम्यग्दर्शन के विषय में सरलता पूर्वक समझा भी नहीं सकेंगे। तो सम्यग्दर्शन का मतलब है यथार्थ बात को समझ लेना। जब यह आत्मा यथार्थ बात को समझ लेती है। तो समझ लो कि उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो चुकी है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को अपने सम्यक्त्व की निर्मलता के लिए निम्न बातों की तरफ लक्ष्य रखना पडता है। अन्यथा सम्यक्त्व में दूषण लगने का भय रहता है।

हां, तो सम्यग्दृष्टि को सबसे पहिले इस बात का ख्याल रखना आवश्यक है कि वह—"परमत्थसंथवो" अर्थात परमार्थ का संस्तव करे।

दूसरे उसे इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि—

*'एस निग्गंथे पावयणे अट्ठे, एस परमट्ठे, से से अणट्ठे ।'*

अर्थात्—निर्ग्रन्थों द्वारा प्ररूपित वचन अर्थ रूप है, परमार्थ रूप है और इनके अलावा रागी-द्वेषी पुरुषों के वचन अनर्थकर है। चूंकि सम्यग्दृष्टि इस बात को भलि-भांति समझ जाता है अतएव वह अर्थ और परमार्थ से विपरीत आचरण और श्रद्धा करने वालों की सोहबत से हमेशा बचता रहता है। अर्थात् जो लोग यह समझते हैं कि भगवान है ही नहीं, धर्म गुरु कोई चीज नहीं है, धर्म-कर्म सब व्यर्थ की चीजें हैं तो इस प्रकार का जो प्रलाप करने वाले हैं उनकी संगति में जाने से पाप की ओर ही प्रवृत्ति होगी। इसलिए कहा गया है कि ऐसे मिथ्यात्वियों की सोहबत नहीं करनी चाहिए अन्यथा आपकी श्रद्धा का भी दिवाला निकल जाएगा।

तो सम्यग्दृष्टि को उपरोक्त बातों का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। ऐसा करने से उसका सम्यक्त्व निर्मल रूप में रहेगा और वह जीव मोक्ष के निकट यथाशीघ्र पहुँच सकेगा।

ऐसे विशुद्ध सम्यक्त्व के धारक और उपदेष्टा भगवान ऋषभदेव की महामहिम स्तुति करते हुए आचार्य श्री मानतुंग कह रहे हैं कि हे नाथ! आपका गुणस्तवन करने से यदि किसी प्राणी के सामने आठ प्रकार के महाभय भी उपस्थित हो जांय तो वे भी क्षण मात्र में दूर हो जाते हैं। तो भक्तामर स्तोत्र के उक्त इकतालीसवें श्लोक में आचार्य श्री ने चौथे महाभय सर्प के विषय में वर्णन करते हुए कहा है कि जिस पुरुष के हृदय में आपके नाम की नागदमनी जड़ी है वह पुरुष अपने पैरों से लाल नेत्र वाले मदोन्मत्त कोयल के कण्ठ समान काले, क्रोध से उद्धत हुए और उठाया है ऊपर को फण जिसने ऐसे (डसने के लिए) झपटते हुए सांप को निडर होकर उल्लंघन करता है अर्थात् उसके ऊपर से चला जाता है। अर्थात् आपका नाम

स्मरण करने वाले भक्तजनों को भयंकर सांपों का भी कुछ भय नहीं होता है।

तो उक्त श्लोक में आचार्य श्री के कहने का यही आशय है कि कोई पथिक कार्यवशात् किसी गांव को जा रहा है परन्तु रास्ते में क्या देखता है कि उधर से एक भयंकर सर्प उसके ही सामने आ रहा है। वह सर्प भी क्रोध के मारे लाल-लाल नेत्र किए हुए है, कोयल की तरह जिसका काला शरीर है और उद्धत होकर जिसने पथिक को डसने के लिए फण ऊपर की ओर उठा लिया है और आक्रमण करना ही चाहता है। परन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में यदि वह पथिक अपने हृदय में भगवान के नाम की नागदमनी रूपी जड़ी धारण कर लेता है तो उसके प्रभाव से उस सर्प की क्रोधाग्नि भी शान्त हो जाती है। वह सर्प शान्त भाव से दूसरी ओर चला जाता है और पथिक भी निर्विघ्नता पूर्वक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। तो भगवान के नाम में इस प्रकार की अलौकिक शक्ति रही हुई है। हां, उसके लिए मानव के हृदय में अटूट श्रद्धा की परमावश्यकता है। क्योंकि श्रद्धा के बिना जीवन में कुछ भी बनने वाला नहीं है।

भाई! इसी विषय में मैं आपके सामने एक पुरानी परन्तु सत्य घटना रखने जा रहा हूँ जिसे सुनकर आपको मालूम होगा कि भगवान के नाम में कैसी अलौकिक शक्ति विद्यमान है।

आपने नारनौल शहर का नाम तो सुना ही होगा। वहां एक समय किसी सेठ के लड़के को सांप ने डस लिया था। वह लड़का मूर्च्छित अवस्था में होगया जहर चढ़ जाने के कारण। उसके पिता ने अपने प्रिय पुत्र का बहुतेरा इलाज करवाया परन्तु बच्चे के शरीर

की मूर्च्छा दूर नहीं हुई। पिता भी शोकातुर होकर विचार करने लगा कि अरे! जो कुछ भी मेरा धन है वह तो एक मात्र यही लड़का है। यदि यह लड़का ही मर गया तो मेरी लाखों की सम्पत्ति किस काम की है। हाय! मेरे बुढ़ापे का सहारा कौन बनेगा और अंतिम समय में मुझे धर्म का मार्ग भी कौन देगा ?

इस प्रकार नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करने के बाद वह सेठ अपने पुत्र को उठाकर वहीं विराजित आचार्य श्री के पास ले गया और उन्हीं के श्री चरणों में सुला दिया। उसके बाद हाथ जोड़कर वह शाह विनीत भाव से गिड़गिड़ाते हुए शब्दों में अर्ज करने लगा भगवन! अब तो इस लड़के के आप ही सब कुछ हैं। मैं सब जगह से निराश होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप इसे जीवित कर मुझ अंधे को रोशनी प्रदान करेंगे। क्योंकि इसके बिना मैं भी जीवित नहीं रह सकता।

सेठ की इस प्रकार की करुणा जनक स्थिति देखकर आचार्य श्री के हृदय में भी अनुकम्पा की लहर दौड़ गई। उन्होंने उसी वक्त भावसहित "विषापहार-स्तोत्र" की रचना करना प्रारम्भ कर दी और उसे इकतालीस गाथाओं में सम्पूर्ण किया।

और उसी स्तोत्र की कुछ गाथाएँ मैं आपके समक्ष रख रहा हूँ -

*सेठ सुदत्त, श्री पाल नरेश, सागर जल में कष्ट सुविशेष।*
*सहा पुनि तुम ही भये सहाय, आनंद से घर पहुँचे आय ॥२५॥*

*सभा दुशासन वस्त्रां चीर, द्रौपदी दया राखी तुम धीर।*
*सीता-लक्ष्मण दोनों साथ रावण जीत विभीषण राज ॥२६॥*

*सेठ सुदर्शन साख दियो, शूली को सिंहासन कियो।*
*वारिसेन तुम धरियो ध्यान, तत्क्षण उपज्यो केवलज्ञान ॥२७॥*

*सिंह सर्पादिक जीव अनेक, जिन सुमरे तिन राखी टेक।*
*ऐसे कीरति जिनकी करूं, शाह कहे शरणागत रहूं ॥२८॥*

*इस अवसर जीवे यह बाल सुझ संदेह मिटे तत्काल।*
*चाची छोड बिरद महाराज, अपना बिरद निबाहो आज ॥२९॥*

*सतरह सौ पंद्रह शुभ स्थान, नारनौल तिथि चौदश जान।*
*पढे सुने तहां परमानंद, कल्पवृक्ष महा सुखकंद ॥४०॥*

उक्त विषापहार स्तोत्र में भगवान की गुणस्तुति करते हुए आचार्य श्री ने कहा है कि हे भगवन्! आपके नाम में अद्भुत शक्ति रही है। आपका नामस्मरण करते ही श्रीपाल का जहाज तिर गया, चंदन बाला की हथकडियां और बेडियां टूट गई, सीता का अग्नि कुण्ड जलकुण्ड बन गया, सेठ सुदर्शन की शूली का सिंहासन बन गया और द्रौपदी का सभा में चीर बढ गया। अतएव हे नाथ! मेरे ऊपर भी जो यह संकट उपस्थित होगया है तो इसे भी निवारण कर दीजिए। क्योंकि श्रद्धाहीन प्राणियों को सन्देह होगया है कि यह बालक हर्गिज जीवित नहीं हो सकता और यदि इसने पुनरुज्जीवन को प्राप्त नहीं किया तो लोगों की धर्म से श्रद्धा हट जायेगी इसलिए मेरी लाज रखना आपके ही हाथ है।

इस प्रकार आचार्य श्री ने स्तोत्र का निर्माण कर उस सर्प दंशित बालक के कान में सुनाया। स्तोत्र की समाप्ति के साथ ही वह लड़का सावचेत होकर उठ कर बैठ गया। इसके बाद वह अपने पिता के साथ हंसता हुआ घर चला गया। यह देख लोगों के दिलों

में भी बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होगया और वे भी धर्म के प्रति श्रद्धालु वन गए।

तो भाई! भगवान के नाम मे अद्वितीय शक्ति रही हुई है और इसीसे वह लडका भी जिसके जीवित होने की कोई आशा नहीं थी, पुनरुज्जीवन को प्राप्त कर हसते-हंसते अपने घर को लौट गया और इस स्तोत्र की रचना वि० १७१५ मे की गई थी आज भी लोग उस स्तोत्र का बड़ी श्रद्धा के साथ श्रवण कराते हैं। तो जहर किसी भी जानवर का हो परन्तु भगवान का श्रद्धा पूर्वक नाम लेने म उतर जाता है।

देखो! श्रीमद् ठाणांगजी-सूत्र में चार प्रकार के जहर बताए गए हैं। इस ससार मे भी चार प्रकार के विशेप रूप से जहरीले जीव बताए गए हैं। इनमें प्रथम विच्छू का, दूसरे सर्प का, तीसरे नवर में मेढक का और चौथे नम्बर मे मनुष्य का जहर बताया गया है और उक्त जहरों की शक्ति का परिमाण बताते हुए कहा गया है कि यदि बिच्छू काट जाय तो उसका जहर अर्द्ध भारत, सर्प का जहर सम्पूर्ण भारत, मेंढक का जबूद्वीप और मनुष्य का जहर ढाई द्वीप परिमाण में भी शरीर हो तो उसमे समा जाता है।

भाई! विच्छू, सर्प और मेंढक के जहर से तो एक ही आदमी मर सकता है और उपचार करने पर पुन जीवित भी हो सकता है। परन्तु मनुष्य का जहर इतना जबर्दस्त है कि इसका जहर ढाई द्वीप परिमाण शरीर में भी व्याप्त हो सकता है और मनुष्य के जहर ने तो हजारों-लाखों के ही प्राणों का सहार करवा दिया है। तो दुनिया अपने जहर की तरफ दृष्टिपात नहीं करती हुई दूसरों के ही जहर की तरफ निहारती रहती है। परन्तु भगवान तीर्थङ्करों के नामस्मरण में इन चारों प्रकार के जहरों का उपशमन करने की शक्ति विद्यमान है।

भाई ! जब मैंने संवत १९६१ मे चित्तौड के किले पर चातुर्मास किया था तो एक समय की बात है कि उपाश्रय में बहुत से लोगों ने सामायिक कर रखी थी। तो उसी समय अचानक श्री फतहलालजी मडस्त्या को एक जहरीले बिच्छू ने डंक मार दिया। वे उसके दर्द मे बैचेन होगए। तो उसी समय मंत्रवादी को बुलवाया गया। उसने भी मंत्रो का उच्चारण किया परन्तु उन्हें आराम नहीं मिला। परन्तु उनके पास ही उनके भाई श्री भैरोलालजी भी बैठे हुए थे। उन्होंने सामायिक पूर्ण कर कहा कि अब और किसी मंत्रवादी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। मै इन्हें अभी स्वस्थ बनाये देता हूँ। तो उन्होंने उसी समय चौबीस तीर्थङ्करों के नाम पांच सात मरतबा उल्टे रूप में सुनाये। परिणाम यह हुआ कि उनका जहर उतर गया और श्री फतहलालजी को उसी वक्त दर्द से राहत मिल गई। तो चौबीसी के उल्टे रूप में नाम बोलने से जहर उतर जाता है। और एक समय जब श्री भैरोलालजी को बिच्छू ने काटा तो श्री फतहलालजी ने भी उन्हें उसी क्रिया के मुताबिक चौबीस तीर्थङ्करों के नाम सुनाये और उनका जहर भी फौरन उतर गया।

भाई ! बिच्छू के जहर को उतारने का दूसरा तरीका यह भी बताया गया है कि यदि किसी को बिच्छू काट खाये तो उसे सौ अङ्कों को क्रमश उल्टे गिनकर सुना दिये जाय तो भी जहर उतर जाता है। अरे ! जब अंकों को भी उल्टे रूप मे गिनने से जहर उतर सकता है तब तीर्थङ्कर भगवान के नाम में तो अनन्त गुणी शक्ति रही हुई है। भगवान के नाम से तो संसार के सभी जहर उपशान्त हो सकते हैं। परन्तु इसमें भी विश्वास की नितान्त आवश्यकता है। और नमस्कार मंत्र को भी उल्टा सुनाने से जहर उतर जाता है। तो भगवान के नाम मे यह अलौकिक शक्ति है कि नाम स्मरण करते ही बिच्छू, सर्प मेंढक या मनुष्य का जहर भी तत्क्षण उतर जाता है।

अरे ! जानवरों का तो जहर भगवान के नाम स्मरण से उतर ही जाता है परन्तु इस आत्मा के अन्दर जो अनादि काल से विषय कषाय और राग द्वेष का भयकर जहर भरा हुआ है वह भी शात हो जाता है। तो भगवान के नाम से तो अनादिकालीन विषय कषाय रूपी जहर भी उपशांत हो जाता है और आत्मा सदा के लिये वाह्या भ्यंतर जहरों से मुक्त होजाती है।

भाई ! मैं वैष्णव इतिहास की भी इसी विषय की एक घटना आपके सामने रख देना उचित समझता हूँ। तो एक समय की बात है कि श्रीमद् रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी श्री तुलसीदास जी जब बनारस मे असि घाट पर भगवद्भजन कर रहे थे तो एक व्यक्ति को किसी जहरीले सर्प ने काट लिया। घर के लोगों ने उसका बहुत उपचार करवाया परन्तु जहर नहीं उतरा और उस व्यक्ति की हालत गिरती ही गई। और जब सबने यह निश्चय कर लिया कि अब तो यह मर चुका है तो उस मृत पुरुष की अर्थी बनाकर उसे जलाने के लिये असि घाट की तरफ रवाना हो गए। उसके पीछे पीछे उसकी पत्नि रोती चिल्लाती सती होने के लिये जा रही थी। परन्तु योगानयोग बीच रास्ते में ही गोस्वामीजी का शुभागमन हो गया। और ज्यों ही उस स्त्री की दृष्टि गोस्वामीजी पर पड़ी त्यों ही उसने मौके से फायदा उठाने की गर्ज से श्रद्धा पूर्वक स्वामीजी के चरण पकड़ लिये। उस समय तुलसीदासजी के मुह से भावुकता में आकर शब्द निकल गये। बेटी ! तेरा चूड़ा अमर रहे। उक्त शब्द सुनते ही उस स्त्री ने कहा–भगवन् ! आपके मुखार्विन्द से निकले हुए शब्द कभी मिथ्या नहीं होंगे ! परन्तु मेरे पति तो मर चुके हैं और मैं भी उनके साथ सती होने जा रही हूँ ! तब फिर आपके मुह से निकले हुए शब्द कैसे पार पड़ेंगे ?

यह बात सुनते ही तुलसीदासजी विचार मग्न होकर मन में कहने लगे अरे! मेरे मुँह से उक्त शब्द कैसे निकल गए? तो इसी घटना का उन्होंने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है कि—

तुलसी जाना देव कर, सती नवायो शीश ।
सुहाग तेरा अमर रहो, यह मेरी बक्सीस ॥१॥
पति इसका चल गया, हम भी चाले हार ।
तुलसी मेरा वचन को, किस विध लागे पार ॥२॥

अर्थात्—ज्यों ही उस स्त्री ने तुलसीदासजी को शीश नवाया तो उन्होंने भी सहज भाव में उसे सौभाग्यवती होने का शुभाशीर्वाद दे दिया। परन्तु जब उसके पति के मरने की बात उन्हें मालूम हुई तो वे विचार सागर में निमग्न हो गए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि मेरे मुँह से निकले हुए शब्द यदि प्रमाणित नहीं होंगे तो लोगों का विश्वास धर्म और धर्म गुरु के प्रति उठ जाएगा। अतएव उसी समय उन्होंने क्या किया? तो यही बात नीचे के दोहे में दर्शाई गई है कि—

मुर्दा भया सचेत जब, धर शीश पर हाथ ।
तुलसीदास भक्ति की, तब राखी रघुनाथ ॥३॥

अर्थात्—तुलसीदास ने उस अर्थी को अपने पास मंगवाई और फिर तन्मय होकर प्रार्थना करने लगे—हे रामचन्द्र महाराज! मैं आपका भक्त हूँ और भक्त की लाज रखना आपका धर्म है। यदि इस समय मेरी लाज चली जाती है तो समझ लो कि यह मेरी नहीं परन्तु आपकी लाज जा रही है। अतएव इस संकट को निवारण कर अपनी लाज रख लीजिए। इस प्रकार शुद्ध हृदय से भगवान का स्मरण कर उन्होंने अपना हाथ उसके शरीर पर फेर दिया; तो उसी

समय कुदरत का यह करिश्मा हुआ कि हाथ फेरते ही वह मृत व्यक्ति अंगडाई लेता हुआ जीवित दशा में उठ बैठा। क्योंकि अभी तक उसके शरीर से प्राण परवेरू नहीं उडे थे। तो भगवान का नाम लेते ही उसका जहर उतर गया और वह स्वस्थ दशा में आगया। हां, यदि उसके प्राण शरीर से पृथक होगए होते तब तो टूटी पर बूटी कार गर सिद्ध नहीं हो सकती थी। परन्तु शरीर मे प्राणों का संचार होने के कारण वह वाह्य जहर भगवद् नाम से शात होगया। तो वह व्यक्ति अच्छा होकर गोस्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा और सब लोग भी इस चमत्कार को देखकर आश्चर्य चकित रह गए। अब सब लोग अपने दिलों मे एक नया उल्लास, उत्साह और विश्वास लिए अपने घर लौट आए। भाई! उक्त घटना का वर्णन उनके जीवन चरित्र में किया गया है।

तो भाई! भक्तामर स्तोत्र का उक्त इकतालीसवा श्लोक भी इसी वात का द्योतक है कि जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक भगवान के नाम रूपी नागदमनी जड़ी को अपने हृदय मे धारण किए हुए रहता है उसे ससार में कोई भी सताने वाला नहीं मिलता। यदि मिल भी जाता है तो वह अपने द्वेष को भूल कर शांत भाव से चला जाता है तो ऐसे भगवान ऋषभदेव के नाम मे शक्ति विद्यमान है और उन्हीं भगवान ऋषभदेव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

अव मैं आपके समक्ष शास्त्रीय चर्चा करते हुए पुण्यकुलक नामक ग्रथ मे आचार्य श्री ने जिस जिस वात के लिए अखूट पुण्य का कारण वताया है वह रख देना उचित समझता हूँ। तो आचार्य श्री ने तीसरी गाथा मे वर्णन करते हुए कहा है —

*सद्धो, बुद्धो, सुगुरुहि संगमो, उवसम, दयालुत्तं।*
*दिक्खिण्ण करण जड, लभंति पभूय पुवेहिं ॥३॥*

भाई ! उपरोक्त गाथा मे बताया गया है कि जिसके अखूट पुण्य होते हैं उसी को शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति होती है। तो बुद्धि का अर्थ है समझ और उसी को जैनागम की भाषा में सम्यक्त्व कहा है।

मैं पहिले बता चुका हूँ कि सम्यक्त्व का सीधा-सादा अर्थ है यथार्थ बात को समझ लेना। अर्थात्—जो जैसी वस्तु हो उसको उसी रूप में देखना, समझना। तो ऐसी विशुद्ध बुद्धि को ही सम्यग्दर्शन कहते है और सम्यक्त्व भी उसी को प्राप्त होती है जिसके अखूट पुण्य होते है और दस बोलों में से एक बोल में बताया गया है कि.—

*सद्धा परम दुल्लहा।*

अर्थात—श्रद्धा प्राप्त होना दुर्लभ ही नहीं परन्तु महान दुर्लभ है। तो शुद्ध बुद्धि का होना. सम्यक्त्व का होना, और वस्तु को जैसी की तैसी मानना यह भी अखूट पुण्य से ही प्राप्त होता है। अन्यथा दृष्टि भेद हो जाने पर सम को विषम और विषम को सम समझने लगता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की नवमी गाथा में बताया गया है कि —

*आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा।*
*सोच्चा ने आउयंमग्गं, बहवे परिभस्सइ ॥६॥*

अर्थात्—मुक्ति मार्ग का श्रवण होने के बावजूद भी श्रद्धा का होना अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि न्याय मार्ग को सुन लेने के पश्चात् भी बहुत से जीव पतित हो जाते हैं। तो सच्ची वस्तु सुनना और उस पर विश्वास करना भी परम दुर्लभ है। अरे ! इस आत्मा को

ससार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल व्यतीत होगया परन्तु फिर भी जीवन मे सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकी।

यदि जीवन में एक वक्त भी सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती तो शास्त्रकारों ने उत्तराध्ययन-सूत्र के उनतीसवे अध्ययन के उनसठवें बोल मे फर्माया है कि —

*'नाण सम्पन्न याणं भते ! जीवे किं जणायइ ? नाण सम्पन्नया एण जीवे सव्व भावाहिगम जणायई। नाण सम्पन्ने जीवे चाउरन्ते संसार कन्तारे न विणस्सइ।*

*जहा सुई ससुत्ता, पडिया न विणस्सइ ।*
*तहा जीवे ससुत्ते, ससारे न विणस्सइ ॥*
*नाण विणयतव चरित्र जोगे सपा उणइ ।*
*ससमय, पर समय विसार एय असं घायणिज्जे भवइ ॥५६॥*

अर्थात—उक्त गाथा मे ज्ञान सम्पन्न करने का फल बताया गया है। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी अपने परम शिष्य श्री गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर प्रत्युत्तर मे फर्मा रहे हैं कि हे गौतम! ज्ञान सम्पन्न जीव समस्त पदार्थो के यथार्थ भावों को जान सकता है और वह फिर चतुर्गति रूप ससार अटवी में दुख प्राप्त नहीं करता। जैसे धागे से सहित सुई खोने नहीं पाती उसी प्रकार ज्ञानी जीव ससार मे भटकने नहीं पाता। वह ज्ञान, चारित्र और विनय के योगों को प्राप्त कर लेता है और अपने तथा पर के दर्शन को ठीक रूप में जानकर असत्य-मार्ग मे गुमराह नहीं होता और कदाचित् वह आत्मा कर्मों के कारण ससार मे भटक भी गई तब भी अर्ध पुद्गल परावर्त काल से अधिक नहीं घूम सकती। और समय आने पर अवश्यमेव मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

तो मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है सम्यक्त्व। जबकि सम्यक्त्व भी अखूट पुण्य के उदय से प्राप्त होती है। जब सम्यक्त्व जीवन मे आ जाता है तो उस आत्मा से तमाम धर्म क्रियाएँ ठीक ढग से होने लगती है। अन्यथा बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति के इस आत्मा के द्वारा की गई सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती है और मोक्ष भी सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना नहीं मिल सकता। इसलिए हर हालत मे सम्यक्त्व का प्राप्त होना आवश्यक है।

भाई! स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० भी समकित को सबोधन करते हुए कह रहे है कि —

*जरासी आइजा ऐ, आइजा! मुझको सुखी बनाइ जा।*

अरी! समकितदेवी! तू मेरे जीवन में छोटे से रूप में भी आजा! यदि तू जरा सी भी मेरे जीवन मे आगई तो मेरी आत्मा हमेशा के लिए सुखी बन जायेगी।

परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐ मानव! तू समकित प्राप्ति की अभिलाषा तो कर रहा है परन्तु उसकी प्राप्ति तभी हो सकेगी जबकि मेरी आत्मा को जलाने वाली अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ की चौकडी शान्त हो जायेगी–ठडी पड जायेगी और चौथे गुणस्थान पर पहुँच जायेगी। इसके विपरीत जब तक यह कषायाग्नि तेरी आत्मा को जलाती रहेगी तब तक समकित की छाया भी तेरी आत्मा पर नहीं पड़ने पाएगी। इसलिए सबसे पहिले सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए कषायाग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करना बहुत जरूरी है।

भाई! कषाय भी चार प्रकार की है—अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय और संज्वलन। और क्रोध, मान,

माया-लोभ रूप से सोलह प्रकार की कषाय हो जाती है। परन्तु उक्त चारों कषायों मे से जिसकी आत्मा मे अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय होती है उसे समकित की प्राप्ति नहीं होती। यदि वह आत्मा उक्त प्रकार को कषायाग्नि मे जलती हुई मृत्यु को प्राप्त हो जाती है तो वह सीधी नरक गति में जाकर उत्पन्न हो जाती है और उक्त कषाय की स्थिति या म्याद जीवन भर की होती है। अर्थात्—जैसे आपकी किसी से लड़ाई हो जाय और उस समय यदि आत्मा मे अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय का प्रवेश हो जाय तो उसकी गांठ जीवन पर्यन्त बनी रहती है। वह उस गाठ को मरणान्त समय तक भी नहीं खोल सकता। इसीलिए कहा गया है कि जब तक इस प्रकार की कषाय आत्मा में रहती है तब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती।

परन्तु जब इस अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय की मजबूत गांठ ढीली पडने लगती है तो वह अप्रत्याख्यानी के रूप मे नजर आने लगता है। और जब तक अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय जीवन में व्याप्त रहती है तब तक श्रावकत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और अप्रत्याख्यानी कषाय की स्थिति मे यदि किसी को मृत्यु होती है तो वह मर कर सीधा पशु योनि में उत्पन्न होता है।

और जब आत्मा से अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय की चौक हट जाती है तब उसके जीवन में श्रावक पना आ जाता है। तो श्रावक के जीवन मे प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय का निवास तो रहता ही है और जब तक यह प्रत्याख्यानी कषाय रूप चौक जीवन मे रहती है तब तक साधुत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। तो प्रत्याख्यानी कषाय चौक की

ग्रन्थि खुलने पर ही जीवन में साधुता का प्रवेश होता है और इस चौक मे मरने वाला प्राणी मनुष्य गति में जाकर उत्पन्न होता है।

परन्तु जब साधक के जीवन में पानी को दो हिस्सों में विभक्त करने के लिए खींची हुई लकीर जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् उसकी आत्मा मे जब सञ्ज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय जैसी दशा ही अवशिष्ट रह जाती है तब उसके जीवन में सच्चे मायने मे साधुता का निवास हो जाता है। इस प्रकार के तनिक-सी कषाय-दशा के अवस्थित रह जाने पर भी आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। अपितु उस आत्मा को देवगति ही प्राप्त होती है और यह दशा दसवें गुणस्थान पर्यन्त आत्मा की रहती है। वहा से भी यह आत्मा काल धर्म को प्राप्त कर देवयोनि में ही जन्म धारण करती है। परन्तु मोक्ष तो फिर भी प्राप्त नहीं हो सकता।

इसलिए जैन धर्म विशेष रूप से आत्मा के निज गुणों पर ही जोर देता है। जबकि आत्म गुणों पर चारों ही प्रकार की कषायों का आवरण आया हुआ है और जब तक सपूर्ण रूप से कषायों का आवरण नहीं हट जाता तब तक आत्मा मोक्ष गति की अधिकारिणी नहीं बन सकती। उसे कषायानुसार विभिन्न योनियों में जनम धारण कर फल भोगना ही पडता है। हा, यदि आप भी शुद्ध बुद्धि अर्थात् सम्यक्त्व की प्राप्ति चाहते हैं और निकट भविष्य में यथा शीघ्र मुक्तावस्था को प्राप्त करना चाहते हैं तो कषायों को आत्मा से जड़मूल से उखाड़ कर फैंक दीजिए। आपके जीवन मे फिर कषायों को उत्तेजना देने वाले चाहे कितने ही निमित्त क्यों न मिल जाय परन्तु आप क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत न होने पायें।

और शास्त्रकारों ने भी फर्माया है कि —

*कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभ चउत्थ अज्झत्थ दोसा।*
*एयाणिवता अरहा महेसी, णकुव्वई पावण कारवेइ ॥२६॥*

श्रीमद् सूत्रकृतांगजी-सूत्र के छठे अध्ययन की उक्त छब्वीसवीं गाथा मे शास्त्रकारों ने श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी की गुणस्तुति करते हुए फर्माया है कि भगवान महावीर तभी पूर्णत को प्राप्त हुए और तभी पूर्ण आध्यात्मिक दशा मे आए जबकि उन्होंने पूर्ण रूप से क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चारो कषायों का वमन कर दिया। जैसे कोई व्यक्ति खीर-खांड के भोजन मे परोक्ष रूप से मक्खी खा लेने के पश्चात् उस भोजन को एकदम हो हो करके बाहर निकाल देता है और उस वमन किए हुए भोजन को फिर वह स्वयं भी देखना पसद नहीं करता और दूसरे व्यक्ति भी उसे देखने की इच्छा नहीं करते। क्योंकि जो भी उस वमन किए हुए पदार्थ की ओर दृष्टिपात कर लेता है उसे भी वमन करने की आशका हो जाती है। तो ठीक इसी प्रकार से जिस आत्मा को अर्हत् पद प्राप्त करने की तमन्ना होती है वह उक्त चारों कषायो का वमन कर देता है। वमन करने से उसकी आत्मा मे पवित्रता आ जाती है। श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने भी चारों ही प्रकार की कषायों का सर्वथा वमन कर अरिहत पद को प्राप्त किया था। भाई! वमन किए हुए पदार्थ को तो कुत्ते और काग ही खाने की इच्छा करते हैं। परन्तु मनुष्य तो उसकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखता।

तो भगवान महावीर ने अपनी आत्मा मे रही हुई कषायों का पुरुपार्थ करके वमन कर दिया और वे अरिहत भगवान बन गए। अरिहत पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् उनसे फिर कोई भी बात अज्ञात नहीं रहती। वे फिर चौसठ इन्द्रों के पूजनिक तथा केवल ज्ञान और केवल दर्शन के धारक बन जाते है। तो भगवान महावीर ने अर्हत

दशा को प्राप्त कर लेने के बाद न तो स्वय ने पाप कर्म किए, न दूसरों से करवाए और न पापकर्म करने वालो को मन से भी भला समझा।

इस प्रकार भाइयों ! सम्यक्त्व की तभी प्राप्ति होती है जबकि आत्मा से कषायों का शमन होने लगता है। परन्तु जब तक आत्मा में कषायों का गाढ सम्बन्ध रहता है तब तक सम्यक्त्व उस आत्मा से कोसों दूर रहती है। तो इसीलिये जैन धर्म के आचार्य और महा पुरुष भव्य प्राणियों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि ऐ भव्यात्माओं ! मिथ्यात्व के साथ गठ बन्धन करते हुए तो तुम्हें अनन्त काल व्यतीत होगया परन्तु तुम्हारी आत्मा का कल्याण न हो सका। परन्तु अब समभाव में अपनी आत्मा को लाकर अपना कल्याण कर लो। यह मानव शरीर तुम्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये ही प्राप्त हुआ है।

भाई ! प्रत्येक आत्मा को निम्न बातों पर समभाव लाना नितान्त आवश्यक है.—

*लाभा लाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।*
*समो निन्दा पससासु, तहा माणव माणाओ ॥ ६० ॥*

उत्ताध्यय के उन्नीसवें अध्यय की ६० वीं गाथा में शास्त्रकारों ने फर्माया है कि प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा को लाभ या अलाभ, सुख या दुख, जीवन या मरण, निंदा या प्रशसा और मान या अपमान जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी समभाव रखना चाहिये। साधक को उक्त दसों ही बातों की दशा में अपने आपको बहुत सभाल कर रखने की आवश्यकता है। परतु विरली ही आत्माए उक्त दस बातों की स्थिति प्राप्त होजाने पर समभाव मे रह सकती हैं। जबकि साधा-

रण आत्माए तो तत्क्षण कषाय के वश मे होकर अपने घर से बाहर निकल जाती है। उसका परिणाम यह होता है कि उनको ससार में परिभ्रमण करते हुए अनेकानेक योनियों में दुख उठाना पडता है। तो सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये दसों बातों के उपस्थित होजाने पर समभाव रखना चाहिये। परन्तु समभाव रखना बहुत मुश्किल है। जैसे किसी व्यक्ति को इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो जाती है तो दूसरे व्यक्ति को उससे ईर्ष्या होने लगती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति फिर अच्छी बात के लिये भी कुतर्क करने लगता है। ऐसा करने से उसकी आत्मा का पतन होता है। तो अच्छी बात के लिये जिज्ञासा दृष्टि से तर्क तो अवश्यमेव करना चाहिये परन्तु बुरी बात के लिये कभी भी तर्क नही करना चाहिए।

भाई ! स्व० जैन दिवाकरजी म० कभी कभी फर्माया करते थे कि जहां कुतर्क होता है वहीं दिलों में फर्क आजाता है। इसलिये मनुष्य को अच्छी बात के लिये ही तर्क करना चाहिये न कि बुरी बात के लिये। क्योंकि संसार मे हेतु और कुहेतु भी बहुत तरह के है। देखो ! एक समय की बात है कि संवत १६७६ की साल जबकि स्व० पूज्य खूबचदजी म० अलवर में विराज रहे थे तब उनके पास एक ब्राह्मण पडित आया। वह बातचीत के दौरान मे कहने लगा महाराज ! "चोरी करना भी धर्म है"।

उक्त पडित की धर्म विरुद्ध बात सुनकर भी पूज्य श्री गम्भीर रहे। वे पूर्ण धैर्यवान थे। उन्होंने उससे पूछा - पडितजी ! आप यह बताइए कि चोरी करना किस प्रकार से धर्म है ?

तब वह पंडित प्रत्युत्तर देते हुए कहने लगा—महाराज ! जैसे किसी व्यक्ति के घर में दस सदस्य हैं और उन दसों ही सदस्यों के भरण-पोषण की जिम्मेवारी केवल उसी व्यक्ति पर है। घर में

नादारी भी बेहद है। एक दिन उसके घर मे ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न होगई कि एक टाइम के लिए भी अनाज खाने को न रहा।

ऐसी परिस्थिति मे वह व्यक्ति उदासीन होकर बैठ गया और विचार करने लगा कि मै घर का मुखिया हूँ। मुझे घर के दसों आदमियों का किसी भी प्रकार से पेट पालन करना आवश्यक है। परन्तु मुझे इस जिम्मेवरी को निभाने के लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए? क्योंकि इस समय मेरे पास एक भी पैसा नहीं है और कमाई भी नहीं है। यदि मैं इनके खाने का प्रबन्ध नहीं करता हूँ तो मै अपने कर्तव्य से च्युत होता हूँ। अब तो ऐसी गरीबी में मुझे कोई उधार भी नहीं दे सकता। दूसरे आज कंट्रोल का समय होने से अनाज भी खुले रूप से बाजार मे नहीं बिकता। अब यदि अनाज नहीं आएगा तो इन सबके भूखो मरने की नौबत आजाएगी। और आज कल व्यापारियों की संग्रह करने की नीति भी होगई है जिससे ब्लेक से अनाज भी महगा मिलता है। अतएव अब मुझे कहा से और किस प्रकार से अनाज लाकर अपने कुटुम्बीजनों की प्राण रक्षा करनी चाहिए?

वह इसी प्रकार के सोच-विचार मे निमग्न था कि सहसा उसके दिमाग मे चोरी करने का विचार उत्पन्न होगया। उसने सोचा कि चोरी से बढ़कर मेरे पास दूसरा उपाय नहीं है जिससे अनाज प्राप्त कर अपने कुटुम्ब को मरने से बचा सकूँ। अतएव वह दृढ निश्चय करके चुपचाप किसी व्यापारी के गोदाम मे घुस गया और मन दो मन अनाज भी चुरा कर ले आया। तब घर की स्त्रियों ने अनाज को पीस कर आटा बनाया और रोटिऐं बनाकर सबने बडे प्रेम से खाली। इस प्रकार से महाराज! उस व्यक्तियों ने चोरी का अवलबन लेकर सबके प्राणों की रक्षा कर ली। अब आप ही

फर्माइए ! कि उसने चोरी करके धर्म का कार्य किया अथवा अधर्म का ? महाराज ! भाग्य से आप भी उसके घर पधार गए तो उसने श्रद्धा पूर्वक आपको भी उसमें से दो रोटिऐं बहरा दी। तो उसे चोरी करने में धर्म हुआ या पाप ?

भाई ! उक्त पंडित की कुतर्क को सुनकर पूज्य श्री डिगमिगाए नहीं परन्तु उन्होंने उसके प्रश्न का सचोट प्रत्युत्तर दिया। हां यदि कोई दूसरा साधु होता तो वह फौरन निस्संकोच भाव से कह देता कि हां भाई ! ऐसा करने में तो उसे धर्म ही हुआ। परन्तु पूज्य श्री तो विचक्षण एवं अनुभवशील थे अतएव उन्होंने कहा—पंडितजी ! चोरी करना तो तीनों काल में ही पाप है। चोरी करना कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। क्योंकि चोरी करने पर चोर को ही जेल खाने की हवा खानी पड़ती है। देखो ! यदि वह व्यक्ति सेठ के रिपोर्ट करने पर पुलिस के द्वारा चोरी के अपराध में पकड़ लिया जाता और उसे सजा सुना दी जाती तो बताओ ! जेलखाने की हवा कौन खाता ? क्या उसे ही अकेले को सजा भुगतनी पड़ती अथवा अन्य कुटुम्बीजनों को भी जेलखाने की हवा खानी पड़ती ? यहां आप उत्तर में कह सकते हैं कि महाराज ! चोरी करने पर सजा तो उसी व्यक्ति को ही भोगनी पड़ती ! तो अब आप ख्याल कर सकते हैं कि यदि चोरी करना धर्म होता तो उसे चोरी के अपराध में पुलिस भी नहीं पकड़ सकती थी। तो सिद्ध हुआ कि कैसी भी परिस्थिति उत्पन्न होने पर चोरी करना धर्म नहीं कहा जा सकता। यह ध्रुव सत्य है कि चोरी करना हर हालत में पाप ही है

भाई ! यदि ऐसे काम में भी धर्म हो जाएगा तब तो कल तुम भी कह दोगे कि महाराज ! मेरा लग्न करा दो तो आपको बड़ा भारी धर्म होगा ! क्योंकि लग्न करने के बाद जब मेरे दो-चार लड़के हो

जाएँगे तो मैं उनमे से एक-दो को आपका शिष्य बना दूँगा। या इसी प्रकार से यदि आपकी कृपा से दस-बीस हजार की प्राप्ति हो जायेगी तो उसमे से दो-चार हजार शुभ कार्य में लगा दूँगा। तो कहिये, पडितजी! इन कार्यों मे भी धर्म होगा या नहीं? परन्तु पडितजी! याद रखिए! पाप कर्म तो पाप-कर्म ही रहेगा! उस पाप-कर्म में भी यदि आप धर्म के दर्शन करना चाहेंगे तो कदापि नहीं हो सकेंगे।

इसलिए भाई! तर्क भी हमेशा वैसी ही करनी चाहिए जिससे कि प्रत्येक के हृदय पर अच्छा असर पड़े और अच्छा फल निकले और यदि असत्य बातों मे तर्क की गई तो वह तर्क नहीं कुतर्क ही कही जायेगा और उसका श्रोताओं के हृदय पर भी बुरा असर पड़ सकेगा।

आज हमारे समक्ष कई ऐसे पाश्चात्य शिक्षण में डिग्री प्राप्त किए शिक्षण शास्त्री भी उपस्थित होते है जिन्होंने धर्म ग्रंथों का पठन एव अवलोकन नहीं किया होता है। तो ऐसे व्यक्तियों के मुँह से यही विचार धारा व्यक्त होती है कि सामायिक प्रतिक्रमण, पौषध, व्रत नियमादि करने और व्याख्यान सुनने से क्या लाभ है? ऐसा करने से तो समय की बरबादी और दुरुपयोग होता है। इसलिए यदि ससार में आए हो तो खूब खाओ, पिओ और मौज करो। इस अनमोल शरीर को फिजूल ही दुख नहीं देना चाहिए। क्योंकि यह मनुष्य की जिंदगी बार-बार मिलने वाली नहीं है। अतएव इस छोटी-सी जिन्दगी मे जो कुछ भी भोगोपभोग किया जा सके कर लेना चाहिए।

तो भाई! उक्त विचार धारा वाले व्यक्तियों की भी ससार में कोई कमी नहीं है। ऐसे नास्तिक विचारों वाले व्यक्ति भी इस ससार

में मौजूद हैं। वे लोग पाप और धर्म जैसी चीज को ही नहीं मानते। परन्तु मैं कहूँ कि जो लोग ऐसा कहते हैं कि ऐसा करने मे और वैसा करने मे क्या लाभ है? तो मैं भी उन लोगों से पूछ लूॅ कि आपके इस प्रकार बोलने मे भी क्या लाभ है? अरे! भाई! तू तो कुछ भी नहीं करता और सबको व्यर्थ बताता है परन्तु याद रख! इसके बावजूद वे लोग तुझ से लाख दर्जे अच्छे हैं जो कुछ न कुछ धर्माचरण करते तो है? परन्तु जिसके दिमाग में भूसा भर जाता है वह इसी प्रकार के निरर्थक शब्दों का उच्चारण करता रहता है जो कि उसके लिए भी हानिकारक होते हैं और दूसरों के लिए भी आत्म घातक सिद्ध होते हैं।

अरे! कोई कोई तो यहां तक कहने का दुस्साहस कर लेते हैं कि "इन साधुओ को तो तोप से ही उडा देना चाहिये। आज ये साधु देश के लिये भार स्वरूप है। और इनकी अहिंसा ने तो हमको कायर बना दिया है। इसलिये अब इन साधुओं की देश को कोई जरुरत नहीं है।"

परन्तु भाई! इस प्रकार के द्वेष पूर्ण शब्द निकालने वाले भी गलत रास्ते पर हैं। और यदि सच पूछो तो उन्होंने कभी भारतीय इतिहास को उठाकर ही नहीं देखा और अहिंसा की वास्तविक परिभाषा को ही नहीं समझा। यदि वे अहिंसा की परिभाषा समझ लेते और इतिहास को आद्योपात गभीरता के साथ देख लेते तो उन्हें इस प्रकार मनमाने शब्द निकालने की हिम्मत ही न होती।

देखो! आज तक अहिंसा भगवती ने ससार के प्राणीमात्र की रक्षा की है। अहिंसा वीरों का शस्त्र है न कि कायरों का। कायर पुरुष अहिंसा को धारण ही नहीं कर सकता। यह भगवती अहिंसा प्राणियों को दुर्गति से निकाल कर सद्गति मे ले जाती है।

इसका पालन करते हुए प्रत्येक आत्मा इस लोक तथा परलोक में सुखी बन जाती है। तो अहिंसा दुख से उन्मुक्त कराने वाली है न कि दुख के सागर मे डालने वाली। और जो कुछ प्राणियों को ससार में दुख की प्राप्ति है वह केवल पाप के कारण ही होती है। मनुष्य जैसे जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार उसे सुख या दुख की प्राप्ति होती है। तो अहिंसा ने मनुष्य को कायर नहीं बनाया किंतु उसके पाप ने ही उसे बुजदिल और नपुसक बना दिया है। और जो तुम इस प्रकार की कुतर्क यहा करते हो तो यह तर्क यहा तो चल जायेगी परन्तु जब तुम यहां से मरकर नर्क में जाकर उत्पन्न होओगे और नेरिऐ के रूप मे जब तुम अपने पाप कर्मों का फल भोगने के लिये वहा के परमाधर्मी देवों के सामने उपस्थित होवोगे तब तुम्हारी एक भी तर्क चलने वाली नहीं है। इसलिये कुतर्क मे अपना और दूसरों का समय बरबाद नहीं करते हुए मानव को अच्छी बात में ही तर्क उपस्थित करनी चाहिये इस प्रकार अच्छी बात मे तर्क करने से शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

तो आचार्य श्री फर्मा रहे हैं कि शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति भी पुण्योदय से ही प्राप्त होती है। परन्तु सम्यक्त्व की शुद्ध रूप रेखा जानने से पूर्व हमे मिथ्यात्व की परिभाषा जान लेनी चाहिये। तो जो जैसी वस्तु हो उसे उस रूप में नहीं मानकर असत्य रूप में मानना मिथ्यात्व कहलाता है। भाई! आपने पच्चीस बोल के थोकड़े को तो देखा ही होगा। उसमें तेरहवें बोल मे दस प्रकार के मिथ्यात्व बताए गए हैं। अर्थात् जीव को अजीव और अजीव को जीव, धर्म को अधर्म और अधर्म, को धर्म, साधु को असाधु और असाधु को साधु, ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग तथा कर्मों से रहित आत्माओं को कर्म सहित

और कर्म सहित आत्माओं को कर्मो से रहित मानना मिथ्यात्व बताया गया है।

अब आप उक्त दस प्रकार के मिथ्यात्व की तरफ जरा गहराई से विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि जीव मे अजीव की और अजीव में जीव की कल्पना करना या मान्यता करना मिथ्यात्व माना जाता है। जबकि जो वस्तु जैसी हो उसे वैसी ही मानना सम्यक्त्व कहलाता है। इस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान ने सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व दोनों का ही स्वरूप स्पष्ट रूप से बता दिया है। परन्तु हमारा कर्तव्य है कि वस्तु के स्वरूप को समझ कर जो वस्तु ग्रहण करने योग्य हो उसे ग्रहण करलें और जो त्यागने योग्य हो उसे सहज भाव मे छोड़ दें। इस प्रकार वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप से समझ कर त्यागन करने और ग्रहण करने मे हठाग्रह नहीं होना चाहिये। क्यों कि जहां हठाग्रह और दुराग्रह है वहीं मिथ्यात्व है और यथार्थता है वहीं सम्यक्त्व है।

भाई ! जब संवत् २००२ की साल मेरा चातुर्मास जामनगर में था तब वहीं एक मदिर मार्गी सत भी चातुर्मास काल में रहे हुए थे। वे श्रीमद् तत्त्वार्थ सूत्र का अध्ययन करते थे। एक समय उन्होंने एक भाई को मेरे पास तत्त्वार्थ सूत्र लाने को भेजा। मैंने उस भाई के साथ कहलाया कि मेरे पास प्रधानाचार्य श्री आत्मारामजी म० सा० द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थ सूत्र मौजूदा है। इसमें विशद रूप से तत्त्वार्थ सूत्र का समन्वय किया गया है। आखिर उन्होंने उसे मगवा लिया। उन्होंने उसका आद्योपात अध्ययन किया और कहलाया कि यह ग्रन्थ तो बड़े अच्छे ढंग से लिखा गया है। और उस ग्रथ को देखकर ही उनकी मुझसे मिलने की इच्छा हुई।

आखिर एक दिन रास्ते मे उनसे मिलना होगया। हम दोनों में आपस में बड़े ही प्रेम और शिष्टता पूर्वक वार्तालाप हुआ। इन

दोनों बातचीत कर अपने अपने स्थान को लौट आये। इसी प्रकार कुछ दिनों बाद एक दिन फिर हम दोनों का रास्ते में मिलन होगया। परन्तु आज उन्होंने मुझसे मदिर में चलने का आग्रह किया। तब मैंने प्रत्युत्तर में कहा कि आपके और मेरे मदिर में जाने में बडा अतर है। क्योंकि आप तो मंदिर मे मूर्ति को भगवान समझ कर जाते हैं और मै मदिर में मूर्ति को भगवान समझ कर नहीं जाऊंगा। अतएव आपके साथ मेरा मदिर मे जाना अनुचित होगा। और जैन धर्म का सिद्धांत भी है कि जो वस्तु जैसी हो उसको वैसी ही मानना समकित कहलाता है। जबकि इसके विपरीत मान्यता रखना मिथ्यात्व है। तो यदि आपकी भी यही मान्यता है श्रद्धा है तब तो मुझे आपके साथ चलने में एतराज नहीं है। परन्तु आप तो जड़ में चेतन की कल्पना करते हैं। और इसी को मिथ्यात्व माना गया है। यही समभाव मे विषमभाव का समावेश हो जाता है।

और मैं पूछूं आपसे कि मूर्ति को देखने से क्या निर्विकारी भावना पैदा हो ही जाती है? कदापि नहीं! क्योंकि जैसे स्त्री को देखने से व्यक्ति के मन में विकार भावना उत्तपन्न हो जाती है उसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान की मूर्ति को देखने से भी विकार भावना आ सकती है। क्योंकि आत्मा में जब तक कषाय का उद्रेक है तब तक यह क्रम चलता ही रहता है। तो जड़ मे चेतन की कल्पना कर लेना ही हमारे और आपके बीच मे विरोध का कारण है। परन्तु जैन धर्म बडा विशाल है। जैन दर्शन ने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ लेने को ही सम्यक्त्व कहा है और जड़ में चेतन की कल्पना करने को स्पष्ट रूप से मिथ्यात्व बताया है। तो आप स्वयमेव विचारक हैं अतएव इस पर जरा गम्भीरता पूर्वक विचार करें कि मेरा आपके साथ मदिर मे जाना कहां तक उचित है! और फिर मदिर

मे जाने के बाद भी हम दोनों अपनी अपनी मान्यता के अनुसार ही तो आचरण करेंगे। हम दोनों मे से कोई भी अपनी मान्यता को छोडने को तैयार नहीं है। अतएव मेरा मदिर मे जाना आपकी मान्यतानुसार ठीक नहीं है।

और आप यह भी अच्छी तरह जानते है कि भगवान के सवध मे तो आपकी और हमारी लड़ाई नहीं है। यदि कुछ विरोध है तो वह सिद्धात का है। देखो! तीर्थङ्कर भगवान जब इस भारत भूमि पर विचरण करते थे तब वे शरीरधारी और रूपी थे। परन्तु मोक्ष मे पधार जाने के बाद सिद्धावस्था को प्राप्त होजाने से अरूपी होगये। जबकि अरूपी भगवान का आह्वान नहीं होता। और अपने मदिर में जो मूर्ति की प्रतिष्ठा की है वह भगवान का मत्रों द्वारा आह्वान करके की है अतएव मूर्ति मे भगवान की कल्पना नहीं की जा सकती। हा, ससारी जीवों की सुख शाति के लिये देवताओं का तो अवश्यमेव आह्वान होता है परन्तु भगवान का आह्वान सिद्धांत के प्रतिकूल है। फिर भी नासमझ लोग अपनी अपनी मान्यतानुसार कल्पना कर ही लेते है। परन्तु जो सिद्धात के अनुकूल आचरण करने वाले हैं और वे चाहे मूर्ति पूजक भी क्यो न हो परन्तु वे तो स्पष्ट रूप से यही कहेंगे कि महाराज! मूर्ति तो मूर्ति है और भगवान भगवान ही है। और फिर इस प्रकार की मान्यता वाले लोग चाहे किसी स्थान पर भी भगवान का नाम ले सकते है। भावों की शुद्धा शुद्धि के सबंध मे ऐसा निश्चित मत नहीं कि अमुक स्थान पर ही मानव की भावना शुद्ध रह सकती है और अन्य स्थान पर भगवान का नाम लेने से भावना अशुद्ध हो जाती है। परन्तु भावना की शुद्धा शुद्धि मानव के मन की दृढ़ता पर है। तो मूर्ति को देखने पर ही वैराग्य भावना उत्पन्न होती है ऐसी बात जैनागम मे नहीं पाई जाती।

चूंकि आज सम्यक्त्व का विषय चल पड़ा है अतएव स्पष्टीकरण कर देना भी मेरा परम कर्तव्य होजाता है तो समकित बड़ी भारी कीमती वस्तु है। यह इतनी बेशकीमती है कि दुनिया भर की सारी वस्तुए एक तरफ हैं और समकित एक तरफ है। इसके महत्व को जिस आत्मा ने समझ लिया वह समझ लो भवसागर से पार हो गया। सम्यक्त्वधारी आत्मा कभी भी विपरीत आचरण नहीं करता। वह तो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ कर वैसा ही व्यवहार करेगा।

आज इस आत्मा को ससार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल व्यतीत होगया है परन्तु शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो सकी। हां! जिन महापुरुषों को पुण्योदय से सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई और उनमें से किसी को किसी निमित्त से और किसी को किसी निमित्त से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न भी होगया परन्तु किसी ने भी उस पदार्थ को सिर नहीं नमाया। जैसे कि श्रीमद् उत्तराध्ययन-सूत्र के अठारहवें अध्ययन की छियालीसवीं गाथा मे बताया गया है कि.—

*करकंडू कलिंगेसु, पचालेसय दुम्मु हो।*
*नमीराया विदेहेसु गंधारेसुय नग्गइ ॥४६॥*

उक्त गाथा में शास्त्रकारों ने बताया है कि चार विभिन्न देशों के राजाओं को पृथक-पृथक वस्तुओं को देखने से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। जैसे कि कलिंग नरेश करकडू को वृषभ देखकर, कपिलपुर के राजा दुम्मोई को स्तम्भ देखकर, मिथिला के स्वामी नमिराजा को चूडिया देखकर और गन्धार देश के नराधिप निघाई को आम्रमजरी देखकर जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया था और इस प्रकार से चार प्रकार के प्रत्येक बुद्धों का वर्णन शास्त्रों मे आता है।

भाई ! कंपिलपुर के राजा दुम्मोई ने एक बहुत बड़ा इन्द्र स्तम्भ बनवाया और उस पर आकर्षक चित्रण भी करवाया। जब वह पूर्ण रूप से तैयार होगया तो राजा ने उसका महोत्सव किया। उस स्तम्भ को देखने के लिए बहुत बड़ा मेला लग गया। सब लोग उसे देख-देख कर उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करते जाते थे और राजा भी उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने स्तम्भ तथा कलाकारों की बड़ी प्रशसा की। परन्तु कालान्तर में वही स्तम्भ निमित्त पाकर धराशायी होगया। उसके टुकडे टुकड़े होगए और उसकी सुन्दरता नष्ट हो गई। इत्तिफाक से किसी दिन राजा की सवारी भी उधर से निकली। ज्योंही राजा की दृष्टि उन अवशिष्ट स्तम्भ चिन्हों पर पडी तो उसे इन्द्र स्तम्भ की स्मृति हो आई। उसने अपने अनुचरों से उस स्तम्भ के विषय में पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि ये भग्नावशेष उसी इन्द्र स्तम्भ के हैं जिसे कि महाराज ने बडी उदारता के साथ बनवाया था और उसके लिए बड़ा भारी महोत्सव मनाया गया था। एक दिन उस स्तम्भ को देखने के लिए हजारों दर्शकों की भीड़ जमा होरही थी जबकि आज वही इस प्रकार जर्जरित दशा में पडा हुआ है और लोग उसी के भग्नावशेषों पर मल-मूत्र त्यागने लगे हैं।

कर्मचारियों के मुँह से उक्त स्तम्भ के बारे मे सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे विचार सागर में गोते लगाने लगे। उन्होंने सोचा कि ओ हो ! ससार की बड़ी विचित्र दशा है ? कवि भी उनकी स्थिति के विषय में कह रहे हैं कि —

*ऊगे सोई आथमे, और फूले सो कुम्हलावेरे।*
*ऐसा विचार कर राजा, जाति स्मरण पावे रे॥*
*काया थांरी रे, काया थांरी रे, या पर पुद्गल से शोभा पावे रे॥ टेर॥*

वह दुम्मोई राजा विचार करने लगा कि अरे! जो उदय हुआ है वह अस्त होने के लिए है। और जो पुष्प वाटिका में विकसित हुआ है वह एक दिन कुम्हलाने के लिए है। इसी प्रकार जो जन्मा है वह मरने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। अरे! आज जो दशा इस स्तम्भ की हुई है वही हालत एक दिन मेरी भी होने वाली है। भाई! इस प्रकार विचार करते-करते राजा को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। वे स्वयमेव उसी क्षण साधु बन गए। परन्तु जिनके निमित्त से उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ था उसे उन्होंने शीश नहीं झुकाया।

दूसरे करकड्डू राजा को अपने दूधमल साड को देखकर जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया परन्तु उन्होंने भी वृषभ को शीश नहीं झुकाया।

तीसरे गांधार नरेश निघाई को आम्रमंजरी देखकर जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ परन्तु उन्होंने भी अपने निमित्त को सिर नहीं झुकाया और चौथे मिथिला के अधिपति नमिराजा ने रुग्णावस्था में जब अपनी महारानियों के हाथ में रही हुई चूडियों की चदन घिसते हुए आवाज सुनी तो उन्हें वह आवाज अशांति पैदा करने वाली लगी। उन्होंने अपनी रानियों को चूडिया उतारने का आदेश दिया। सभी रानियों ने महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए एक-एक चूडी के अतिरिक्त सभी चूडियां उतार दीं। यह देख राजा को शांति तो प्राप्त हुई परन्तु वे एकत्व भावना पर विचार करने लगे। इस प्रकार विचार करते-करते उन्हें भी जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। परन्तु उन्होंने भी उन चूडियों के आगे सिर नहीं झुकाया। तो कहने का आशय यही है कि उन महापुरुषों ने भी अपने अपने निमित्त पदार्थ को नमस्कार नहीं किया।

भाई! यद्यपि नमस्कार करना पुण्य का कारण है परन्तु नमस्कार भी गुणी पुरुष को ही किया जाना चाहिए। जड़ पदार्थ को नमस्कार करने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। तो जड़ मूर्ति में भगवान की कल्पना करके नमस्कार करना सम्यक्त्व नहीं परन्तु मिथ्यात्व है और इसी बात के लिए आपस में मतभेद होगया है। तो केवल समझ के हेर फेर के कारण ही हमारी और आपकी मान्यता में फर्क आगया है।

परन्तु यदि हम गहराई से विचार करें तो मालूम होगा कि सब एक ही जगह आकर मिल जाते हैं। जैसे जितने भी नदी नाले हैं वे विभिन्न दिशाओं में बहते रहने के बावजूद भी सब ही समुद्र में जाकर मिल जाते हैं और सागर रूप मे परिणत हो जाते हैं। तो जैन धर्म का सिद्धान्त है कि चाहे विभिन्न मान्यताओं मे हम रमण करते रहें परन्तु सम्यक्त्व की प्राप्ति हुए बिना आत्मा मोक्ष गति को प्राप्त नहीं कर सकती। हां, यदि एक मरतबा भी जीवन मे सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई तो मोक्ष अवश्य हो जायेगी।

भाई! जीवन का लक्ष्य तो सभी जीवों का मोक्ष प्राप्ति करना ही है परन्तु उस परम पद की प्राप्ति के लिए रास्ते सबने जुदे जुदे अख्त्यार कर लिए हैं। अब कोई तो सुगम पथ से होकर जारहा है और कोई कटकाकीर्ण रास्ते से होकर जारहा है। तो इन दोनों में फर्क इतना ही है कि एक व्यक्ति तो यथाशीघ्र और निर्विघ्नता पूर्वक अपने निश्चित लक्ष्य पर पहुँच जाएगा और दूसरे व्यक्ति को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में विघ्न बाधाएँ आ जाएँगी और विलम्ब भी हो जाएगा। परन्तु गलत रास्ते से चलने वाले व्यक्ति को भी यदि किसी दिन सच्चे जानकार से भेंट हो जायेगी तो वह भी सही रास्ता पकड़ कर आसानी से अपने स्थान पर पहुँच जायेगा। परन्तु

भाई ! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि रास्ता बताने वाला धूर्त और चालाक मिल गया, तो वह और भी ऊबड-खाबड़ मार्ग बता देता है जिससे पथिक अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में नाकामयाव रहता है और इधर-उधर भटक जाता है। क्योंकि संसार में चालाक और ठग मनुष्यों की भी कमी नहीं है। इसलिए मोक्ष मार्ग पर चलने वाले साधकों का परम कर्तव्य है कि वे ऐसे लम्पटी मनुष्यों के भुलावे में न आएं और अपने आपके जीवन को ससार में रुलाने से बचाते रहें। परन्तु आपके विचार मजबूत तभी रह सकते हैं जबकि आप सम्यक्त्व के स्वरूप को जान लेंगे।

अरे ! ससार में ऐसे भी भोले लोग बहुत हैं जो धूर्त लोगों के चक्कर में आ जाते हैं और उनके द्वारा बताए हुए कटकाकीर्ण मार्ग को ही निष्कंटक मार्ग समझ कर चलना प्रारंभ कर देते हैं। परन्तु रास्ते मे विघ्न बाधाओं के उपस्थित होने पर फिर वे पश्चाताप करते है और अपने मार्ग दर्शन को बुरा भला कहते हैं। परन्तु साधक को चाहिए कि वह प्रथम ही मार्ग-दर्शन के विषय में जानकारी प्राप्त कर लें और फिर उसके बताए हुए मार्ग पर गति करें। ऐसा करने से साधक को पश्चाताप करने का मौका भी नहीं आएगा और निर्विघ्नता पूर्वक रास्ता भी तय हो जाएगा।

परन्तु मैंने पहिले कहा था कि मानव को धन कमाना तो अच्छी तरह याद है परन्तु उसकी रक्षा करना याद नहीं है। मैं पूछूँ आप से कि आप लोग रात्रि में दूकानें बद करके अपना माल किसके भरोसे छोड़कर आते हैं ? तो आप लोगों की तरफ से यही उत्तर मिलेगा कि महाराज ! हम तो तालों के भरोसे ही माल छोड़कर घर आते हैं। परन्तु अब आप लोग यह बताइए कि यदि पीछे से कोई चोर आपकी दूकान के ताले तोड़कर माल ले जाते हैं तो उसके लिए आप रोयेंगे या सरकार ?

तो उक्त प्रश्न का भी आप फौरन उत्तर दे देंगे कि माल के चोरी हो जाने पर तो हमें ही रोना पड़ेगा! परन्तु मैं पूछूँ कि आपको माल के चले जाने पर क्यों रोना चाहिए? क्योंकि आपका कार्य है अथक परिश्रम करके धन कमाना और सरकार का कर्तव्य है आपके माल और जान की हिफाजत करने का। अतएव उस माल के लिए आपको नहीं परन्तु सरकार को चार आंसू बहाने चाहिएँ। परन्तु ऐसा होता नहीं है और उस माल के चुराए जाने पर आप ही रोते हैं न कि सरकार! तो इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि आज के धनिकों को कमाना तो याद है परन्तु उसकी सुरक्षा करना याद नहीं है।

दूसरे आप लोगों को अपनी मरजी के मुताबिक स्वादिष्ट पदार्थ खाना तो याद है परन्तु शरीर को तन्दुरुस्त रखना याद नहीं है। हां, बीमार हो जाने पर डाक्टर के आदेशानुसार तो कई पदार्थ खाने छोड़ देंगे परन्तु अपनी इच्छा से तो अपथ्यकारी चीजें भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं और यही कारण है कि आप अपने शरीर की रक्षा करने में भी असमर्थ हैं। परन्तु आप अपने शरीर को तभी स्वस्थ रख सकेंगे और इसकी सुरक्षा कर सकेंगे जबकि आप डाक्टरों की अपेक्षा नहीं करते हुए स्वयमेव अखाद्य पदार्थों को छोड़ देंगे। क्योंकि शरीर की रक्षा करना अत्यावश्यक है। यदि आप शरीर की सुरक्षा नहीं कर सकते हैं तो फिर धन की भी रक्षा नहीं कर सकते और सच पूछिए तो आपका अपना मन भी आपके हाथ में नहीं है। यह मन भी दूसरे के इशारे पर नाचने को तैयार हो जाता है। क्योंकि आज दुनिया मे वादों की बाढ सी आई हुई है। जिधर देखो उधर सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रांतवाद, समाजवाद आदि-आदि कई वादों के नेतागण अपनी वाक्पटुता के द्वारा भोले लोगों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करने में संलग्न हैं। इस

प्रकार कई नेताओं के भिन्न-भिन्न विचार सुन-सुन कर आपका मन भी गडबडाने लगता है। आप अपने मन को स्थिर नहीं रख सकते और मन के विगड़ जाने से आपके विचार भी स्थिर नहीं रहने पाते। तो यह मन भी आपके हाथ में नहीं रहा है और उसके मुताविक ही आपकी दृष्टि भी वदल गई है और इसीसे आप अच्छे या वुरे वन गए हैं।

भाई! इतिहास इस वात के लिये साक्षी है कि इस देश में जिस जिस देश, जाति, समाज या धर्म के नेताओं का क्रमश आगमन हुआ और उन्होंने जैसी जैसी विचार धारा पुरजोर शब्दावली मे रखी तो यह मन उनकी ओर आकर्षित होता गया। फिर वह नेता या उसका मत आपके अनुकूल हुआ या नहीं परन्तु आपका मन वरवसत उसकी तरफ खिंचता ही गया और आपके मस्तिष्क में अच्छा या वुरा सोचने की भी ताकत नहीं रही। तो कहने का प्रयोजन यही है कि ऐसी परिस्थिति मे आपकी रक्षा हो तो कैसे हो! क्योंकि आपके दिलोदिमाग में सोचने की शक्ति ही नहीं रही। और सोचा जाता है अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार। तो जितनी जिसके पास बुद्धि होगी उसी के अनुसार ही वह सोच सकेगा। और जो व्यक्ति जिस धर्म या मत में बंध गया तो वह वहीं तक ही सीमित दशा मे विचार करेगा। इससे आगे वह सोच ही नहीं सकता। परन्तु जो व्यक्ति अपने मन के आधीन नहीं है और विशाल दायरे में सोचने की शक्ति रखता है वह किसी एक पक्ष में नहीं वध पाता।

इसके लिये आपके पास उदाहरण है सरदार पटेल का जो कि कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार के गृह मन्त्री पद पर आसीन थे। परन्तु आज वे हमारे बीच में उपस्थित नहीं है। तो जब वे गृह मन्त्री पद को संभाले हुए थे उस समय उनके पास गुजरात वाले एक डेप्युटेशन

लेकर आए। उस प्रतिनिधि मडल ने उनके समक्ष यह भावना व्यक्त की कि आप हमारे प्रांत के हैं अतएव आपको हमारा और हमारे प्रांत का हित करना चाहिये। परन्तु सरदार पटेल दिमागदार थे और संकुचित दायरे मे बंधे हुए नहीं थे अतएव उन्होंने उनके प्रश्न का उत्तर दीर्घ दृष्टि से देते हुए कहा—महाशयों! यद्यपि आप गुजरात प्रांत के हैं और इस नाते आपका कहना यथार्थ है। परन्तु अब मैं केवल गुजरात का नहीं रह कर समूचे भारतवर्ष का सेवक हूँ। इसलिये अब मुझे केवल एक गुजरात का ही विचार नहीं करना है परन्तु चालीस करोड़ भारतवासियों के लिये विचार करना है। कहिए! पटेल सा० के कितने उदार और समुन्नत विचार थे।

यदि ऐसी परिस्थिति में कोई सकुचित विचारधारा वाला जिम्मेवार व्यक्ति होता तो वह पक्ष मे बंध जाता और उसी दायरे में ही विचार करता। उससे आगे बढ़कर वह विचार ही नहीं कर पाता परन्तु जिसका मन विशाल होता है वह संकीर्ण दायरे से हटकर सबके हित की बात सोचने लगता है। और चूं कि आज तक सदियों से हमारा मन गुलामी की जजीरों से जकड़ा हुआ रहा है अतएव वह इससे आगे सोच ही नहीं सकता।

भाई! पहिले भारतवर्ष मे जातिवाद का बोल बाला नहीं था। क्योंकि उस समय इतनी अधिक जातियां भी पैदा नहीं हुई थी। परन्तु जब जातिएं बढने लगीं तो उसी के साथ-साथ जातिवाद भी लोगों के दिलों में प्रवेश कर गया और वे जातिवाद के बन्धन में अच्छी तरह जकड लिए गए। तो परिणाम यह निकला कि एक जाति वाला दूसरी जाति वाले को नफरत की दृष्टि से देखने लगा। और अपनी जाति के स्वार्थ की ही बात सोचने लगा। इसी प्रकार जब प्रान्तवाद का भूत लोगों के दिमाग पर सवार हुआ तो एक प्रांत

वाले अपने ही प्रान्त की बात सोचने लगे। भले ही दूसरे प्रान्त वाले भूखे क्यों न मर जाय परन्तु मेरे प्रान्त वाले भूखे नहीं मरने चाहिए। इसी प्रकार जब यह मन संप्रदायवाद के चंगुल मे फंस गया तो वह भी अपनी ही सप्रदाय का ख्याल रखने लगा और उसी को श्रेष्ठ बताने लगा। वह संकुचित अवस्था मे यही विचार करने लगा कि मेरा धर्म यह है और तुम्हारा धर्म दूसरा है और इस प्रकार विचार करने से मन में विभेद होगया।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि मानव ने अपने मन को इन वादों में बांधकर अपना और समाज का हास कर लिया। परन्तु जब आपको दिलोदिमाग मिला है तो उसका भी तो सदुपयोग करना चाहिए। आपको प्रत्येक वक्ता के विचारों को सुनकर ठंडे दिल से विचार करना चाहिए मनन करना चाहिए और उसके हिताहित के सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिए। इस प्रकार जब आपका मन हिताहित का विचार करने लग जाएगा तो समझ लो कि सम्यक्त्व की प्राप्ति मे फिर देर नहीं है। अन्यथा सकुचित दायरे में विचार करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिए कभी-कभी मैं भी विचार करता हूँ कि लोगों के मन इतने सकीर्ण होगए हैं कि इन्हें सत्यवाद कह दी जाये तो ये अपनी निंदा का अनुभव करने लगते हैं। परन्तु भाई! मैं निंदा नहीं सत्य बात कहता हूँ और वास्तविक बात कहने पर भी आप लोग उसे असत्य समझ कर मेरी निंदा या टीका-टिप्पणी करेंगे तो आप अपने ही कर्मों का बंध करेंगे। तो मैं ठीक कहता हूँ कि आप लोग जड को जड और चेतन को चेतन ही मानें और साधु को असाधु तथा असाधु को साधु न मानें। ऐसा मानने से ही आप सच्चे सम्यक्त्वी कहलायेंगे। तो मैंने इस प्रकार आपके सामने दस प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया है।

हां, तो मैं कह रहा था कि आचार्य महाराज ने फर्माया है कि यह आत्मा अनादि काल से जन्म मरण करती आ रही है। परन्तु इसे अभी तक मोक्ष की प्राप्ति न हो सकी। हां, इस बार इसे पुण्योदय से मानव जन्म प्राप्त होगया है और सब प्रकार के साधन भी उपलब्ध होगए हैं। परन्तु जब तक जीवन मे समकित की प्राप्ति न होगी तब तक कुछ भी बनने वाला नहीं है। तो समकित की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करो और जब समकित की प्राप्ति हो जाये तो उसे निर्मल बनाए रखने के लिए समभाव रखो।

देखो! छ खडों के अधिनायक भरत चक्रवर्ती थे। उनकी सेवा में सोलह हजार देवता रहा करते थे। वे चौदह रत्न और नव-निधान के भी स्वामी थे। परन्तु इतनी रिद्धि-सिद्धि के स्वामी होते हुए भी वे उसमें आसक्त नहीं थे। वे सदैव उन्नत विचार रखते थे। हर समय वे यही विचार किया करते थे कि मैंने ससार की जिम्मेवरी ली है अतएव उसे निभा रहा हूँ। अन्यथा यह छ' खण्ड का राज्य कुछ और है और मैं कुछ और हूँ। तो इतनी जिम्मेवरी रखते हुए भी वे अपने भावों मे निर्मल रहते थे।

तो एक समय की बात है कि आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभ देव ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पधार गए। भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त कर भरत चक्रवर्ती भी भगवान के दर्शन करने तथा वाणी श्रवण करने को पधारे। समोसरण मे बारह ही प्रकार की परिषदा एकत्रित हो चुकी थी। सभी श्रोतागण तन्मय होकर भगवान के मुखारविन्द से फर्माई हुई वाणी को सुन रहे थे। आज के प्रवचन मे भगवान ने मुख्य रूप से अपने सबसे बड़े पुत्र चक्रवर्ती भरत के सम्यक्त्व की तारीफ करते हुए-फर्माया कि—

*"प्रथम जिनेश्वर समवसरण में, प्रकट बात फर्माई रे।*
*भरत भूपति जासी मोक्ष, इणहिज भव मांही रे ॥१॥*

*भरत मन मांही रे, भरत मन मांही रे, वैराग्य भाव में,*
*रहे सदा ही रे। भरत मन मांही रे ॥ टेर ॥*

भाई ! भरत चक्रवर्ती के हृदय में सम्यक्त्व का अकुर प्रस्फुटित हो चुका है। अतएव वे छ खड का शासन करते हुए भी उसमे आसक्त नहीं रहते हैं। और जब सम्यक्त्व का अकुर जीवन में पैदा हो जाता है तो उसमे निकट भविष्य में मोक्ष रूप फल अवश्य लग जाता है। तो भगवान ऋषभदेव ने भी भरत चक्रवर्ती की ओर सकेत करते हुए समस्त श्रोताओं के सामने फर्माया कि हे भव्यात्माओं ! यह भरत सम्राट जो आपके बीच मे बैठा हुआ है, इसी भव में समस्त कर्मों को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा। चूकि भगवान तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे अतएव उन्होंने सामने वाले व्यक्ति के विचारों को प्रसग आने पर उसी रूप मे प्रकट कर दिए।

भगवान का प्रवचन समाप्त होगया। सभी श्रोतागण भगवान को वन्दन नमस्कार कर अपने-अपने घर लौट आए। भरत चक्रवर्ती भी भगवान को सविधि वन्दन कर अपने महल में लौट आए। सभी लोगों ने भरत चक्रवर्ती के सम्यक्त्व की निर्मलता तथा इसी भव में मोक्ष प्राप्त करने की बात सुनकर प्रशसा की। परन्तु जानते हो भाई ! सुनने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु तदनुरूप मानने वाले बहुत कम लोग होते हैं जो पुण्यशाली आत्माएँ होती हैं वे तो दूसरों की प्रशसा की बात सुनकर प्रसन्न होती हैं। परन्तु कई श्रोता ऐसे भी होते हैं जिन्हें दूसरों की प्रशसा सुनकर ईर्ष्या और जलन होने लगती है। भाई ! यह राग-द्वेष की आग मनुष्य लोक मे ही नहीं परन्तु देवलोक में भी लगी हुई है। देवलोक मे भी जब इन्द्र अपनी सभा में किसी मानव के असाधारण गुण की तारीफ करता है तो किसी किसी मिथ्यात्वी देव को प्रशसा की बात सुनकर ईर्ष्या उत्पन्न

हो जाती है। वह देव उस महापुरुष की परीक्षा लेने के लिए मनुष्य लोक मे आता है और नानाविध रूप बनाकर उसे सम्यक्त्व से डिगाने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु जब वह महापुरुष किसी भी प्रकार अपने धर्म से विचलित नहीं होता, तब वही देव अपने रूप में प्रकट होकर तथा नत मस्तक होकर क्षमा याचना करके अपने स्थान को लौट जाता है।

तो भगवान ऋषभदेव के मुखारविन्द से अपने ही पुत्र के सबन्ध में इस प्रकार से प्रशसा की बात सुनकर किसी व्यक्ति को विश्वास नहीं हो पाया। उसके अन्त करण मे वीतराग भगवान के उक्त वचन भी कांटों की तरह चुभने लगे। वह शकाशील बनकर बाजार में दूसरे व्यक्ति से पूछने लगा कि भाई! आप भी तो भगवान की वाणी श्रवण करने गये थे न! तब उस व्यक्ति ने प्रत्युत्तर में कहा—हां भाई! मैं भी व्याख्यान सुनने को गया था।

यह बात सुनकर उसने पुनः उस व्यक्ति से प्रश्न किया कि भाई! यह तो बताओ कि भगवान ने आज क्या विशेष बात फर्माई थी।

दूसरे व्यक्ति ने भी प्रश्नकर्त्ता का जवाब देते हुए कहा—भाई! आज तो भगवान ने व्याख्यान में यह फर्माया था कि भरतजी इतने समभावी हैं कि वे इसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।

जब उस व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के मुँह से भी वही बात कहलवाली तब वह उसके सामने अपने मलीन विचार प्रकट करते हुए कहने लगा कि—

*विषय भोग, आरम्भ-परिग्रह में, रहे सदा मुरझाई रे।*
*कैसे मोक्ष होगा एक-नर चूँ, बात चलाई रे ॥२॥*

भाई ! आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि जब एक व्यक्ति शकाशील बन जाता है और उसका दिमाग बिगड जाता है तो वह एकदम किसी की अच्छी बात को भी हृदय मे ठीक ढग से नहीं परिगमा सकता। वह किसी की प्रशसा की बात को अपने पेट में हजम भी नहीं कर सकता। और ईर्ष्यावश उस बात को अर्थात् अपने हृदयगत कलुषित भावों को दूसरों के सामने प्रकट करने लगता है। यहां तक कि वह यथा शक्ति अपने भावों की छाप दूसरे व्यक्ति के अंत करण पर भी डालने का भरसक प्रयत्न करता है। तो ठीक इसी प्रकार से वह व्यक्ति भी भगवान के वचनों पर श्रद्धा न लाकर अपने मनोगत भाव दूसरे व्यक्ति के सामने प्रकट करने लगा। वह उससे कहने लगा–भाई ! बडे मजे की बात तो यह है कि भगवान ऋषभदेव तो हैं बाप और भरत चक्रवर्ती हैं उनके पाटवी पुत्र। अतएव अब आप ही बताइए कि यदि एक बाप ही अपने बेटे की तारीफ नहीं करेगा तो फिर कौन करेगा। और यदि आप इस पर गभीर दृष्टि से विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इतनी तारीफ केवल बाप बेटे के नाते ही की गई है। अन्यथा इसमें कोई तथ्य नहीं है। यदि भगवान को तारीफ ही करनी थी तो वे किसी दूसरे के संबध मे भी कह सकते थे। परन्तु उन्हें तो अपने चक्रवर्ती पुत्र की ही तारीफ करनी थी अतएव दूसरे की तारीफ कर ही कैसे सकते थे। परन्तु अब हमे यह देखना है कि भरत महाराज क्या इस तारीफ के लायक हैं ? और क्या वे इसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ? क्योंकि हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि भरत चक्रवर्ती आज छ खंड के अधिनायक हैं। उन्हें छ खडों को अपने आधीनस्थ करने में अनेकों व्यक्तियों के प्राण विसर्जन भी करने पड़े हैं। यहां तक कि अपने ही भाई बाहुबलीजी के साथ भी मुष्टि प्रहार आदि द्वन्द्व युद्ध करने पडे हैं। दूसरे ये कितने आरभ परिग्रह और विषय

उन सबने उस व्यक्ति के विचारों का तो समर्थन कर दिया परन्तु निर्णय निकालने की किसी की भी भावना नहीं हुई। अब तो उक्त चर्चा सारी अयोध्या मे बिजली की तरह फैल गई। सभी छोटे-बड़ों के मुंह से बात चीत करते हुए यही बात निकलती है कि क्या कभी इतने आरम्भ-परिग्रह और विषय का सेवन करने वाले की भी मुक्ति हो सकती है?

इधर भरत चक्रवर्ती के शासन की रक्षा के लिए भी अनेक महकमे खुले हुए थे। नगर मे चारों तरफ खुफिया पुलिस के कर्मचारी तैनात थे। वे शहर मे होने वाली प्रत्येक वारदात की खबर अपने-अपने महकमे मे दर्ज करा देते थे। तो शासन की रक्षा और अमन कायम रखने के लिए प्रत्येक राज्य में महकमे कायम करने ही पड़ते हैं अन्यथा राज्य में अराजकता और अशांति फैल जाने का अंदेशा रहता है। तो महकमे कायम होने से जन्म, मरण, लडाई-झगडे, सभा, जुलूस, चोरी और डकैती वगैरह सभी तरह की खबरें समय-समय पर सरकार को मालूम होती रहती हैं और फिर वहां से उनका यथोचित इन्तजाम किया जा सकता है।

अरे! आपके बैंगलोर शहर को ही देख लीजिए न! यह शहर भी कितना लम्बा चौड़ा है। अब आपको तो अपनी दूकान पर बैठे हुए मालूम नहीं होता कि शहर में कहा और क्या नई घटना घटी है। परन्तु जहां जहां पुलिस चौकियां है वहा-वहां शहर की सारी नवीन घटनाएँ दर्ज होती रहती है। यहां तक कि उनमे घटे घटे की रिपोर्ट पहुँचती रहती है और फिर उन चौकियो से सारी रिपोर्टें हैड-ऑफिस मे पहुँच जाती है। इस प्रकार वहां से घटनाओं के मुताबिक यथोचित कार्यवाही की जाती है। इसी प्रकार समस्त प्रान्तों की मुख्य-मुख्य खबरें केन्द्र को भेज दी जाती है और तभी

असेम्बली के मिनिस्टर लोग दिल्ली मे बैठे-बैठे ही अलग-अलग विभाग के सही आंकडे मालूम कर लेते हैं। फिर उन्हीं के आधार पर वे विधान सभा मे बिल और प्रस्ताव पेश करते हैं। इस प्रकार समूचे भारतवर्ष के लोगों की सहूलियतों को मद्देनजर रखते हुए कानून बनाए जाते हैं।

तो भरत चक्रवर्ती भी छ खड के अधिनायक थे। उनके ऊपर भी देश की बडी भारी जिम्मेवरी थी। अतएव उस युग में भी देश की शाति के लिए विभिन्न महकमे खुले हुए थे। जहा कि शहर की अच्छी और बुरी बातों की सूचनाऐं आती रहती थी। तो जब अयोध्या नगरी में चौराहे-चौराहे पर और दूकान-दूकान पर उक्त चर्चा जोरों से होने लगी तो यह बात पुलिस विभाग के कर्मचारियों के कानों में भी पडी। उन्होंने इस राज्य विरुद्ध चर्चा की सूचना अपने डिपार्टमेन्ट में दर्ज कर दी। उक्त खबर दर्ज होते ही उस महकमे के अफसर ने उस चर्चा को विगतवार लिखकर भरत महाराज की सेवा में भिजवादी।

ज्योंही भरत चक्रवर्ती ने लिफाफे को खोलकर समाचार पढ़े तो उसमें लिखा हुआ था महाराज! यद्यपि मुझे आपके विरुद्ध होने वाली चर्चा के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखना चाहिए था परन्तु कर्तव्य के नाते मुझे दो शब्द लिखने पड रहे हैं। आशा है आप निम्न पक्तियों को पढकर उचित आज्ञा प्रदान करेंगे।

"महाराज! एक-दो दिन से सारे शहर में किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने आपके विरुद्ध प्रचार करना शुरु कर दिया है। अन्नदाता! बात दरसल यह है कि जिस दिन आप भगवान 'ऋषभदेव का प्रवचन श्रवण करने पधारे थे और भगवान ने सभा के बीच मे आपके सम्यक्त्व की तारीफ करते हुए कहा था कि आपके बीच में बैठा

हुआ भरत चक्रवर्ती इसी भव में मोक्ष में जाने वाला है। परन्तु यह बात किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति को असह्य हो उठी और उसने भगवान के वचनों पर भी विश्वास नहीं करते हुए गलत प्रचार कर दिया। तो सारे शहर मे इसी बात की चर्चा जोरों से चल रही है कि क्या कभी ऐसे आरम्भ-परिग्रह और विषय सेवन करने वाले की भी कभी मोक्ष हो सकती है ? और यदि ऐसों की भी मोक्ष हो जायेगी तो हमारी तो अवश्य ही मोक्ष हो जानी चाहिए।"

जब भरत महाराज ने उक्त पत्र पढ़ा तो उनके अन्त करण में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। सबसे बड़ा विचार तो उनके हृदय मे यह आया कि यदि मेरे विषय मे कहीं बुराई फैल जाती तब तो कोई बात नहीं थी। परन्तु इन लोगों को तो भगवान का भी भय नहीं है। क्या इन्हें भगवान के वचनों पर भी श्रद्धा नहीं रही ? क्योंकि कहा है कि —

*पहिला भय भगवान का, दूजा भय नर पाल।*
*तीजा भय है लोक का, तू राख्या बिन मत चाल ॥*

भाई! इस ससार में ससारी लोगों के लिए सबसे पहिला भय भगवान का माना गया है। इसके बाद दूसरा भय राजा का और तीसरा भय दुनिया का माना गया है तो जिस व्यक्ति को ससार में शाति पूवक जीवन बसर करना है उसे उक्त तीनों प्रकार के भयों को ध्यान मे रखते हुए आचरण करना चाहिए। अन्यथा उस व्यक्ति का जीवन संसार मे अशातिमय बन जाता है।

तो जिस व्यक्ति ने यह अफवाह और गलत विचार ईर्ष्या के कारण लोगों मे फैलाए हैं उसके हृदय में भगवान, राजा और दुनिया का भी भय नहीं रहा है। तभी तो उसने बिना निर्णय किए ही मेरे

और भगवान के विरुद्ध गलत प्रचार कर दिया ! और दूसरे लोग भी उसके विचारों के समर्थक होगए ! तो उसने मेरे विषय मे जो बुराई की है उसकी तरफ तो मेरा लक्ष्य ही नहीं है परन्तु उसने बिना सोचे-समझे भगवान ऋषभदेव पर जो लाछन लगाया है वह मुझ से कदापि सहन नहीं हो सकता। क्योंकि भगवान तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। उनके ज्ञान में ससार के समस्त पदार्थ भासित होरहे हैं। अतएव उनके वचनों पर विश्वास नहीं लाना अपने आपको जन्म-मरण के चक्कर में अनन्तकाल के लिए फसाना है।

तो यह सूचना पढते ही भरत महाराज के हृदय में खलबली मच गई। वे इसका निराकरण करने के लिए व्याकुल हो उठे। तब उन्होंने क्या किया कि —

*भरत सुनी यह बात तुरत ही, लीनो उसे बुलाई रे।*
*पूर्ण कटोरो भर के तेल दिया, हाथ के मांई रे ॥३॥*

जब यह बात भरत महाराज के हृदय में तीर की तरह प्रवेश कर गई तो उन्होंने उसका निर्णय करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उन्होंने अपने गुप्तचरों को आज्ञा प्रदान की कि जिसके मुँह से इस प्रकार की बात सबसे पहिले निकली हो उसे मेरे सामने लाकर हाजिर करो।

भाई ! यहा प्रत्येक भाई को यह ख्याल रखना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति किसी जिम्मेवार व्यक्ति के खिलाफ कोई बात कर रहा हो तो प्रथम तो उसे वहा खड़े ही नहीं रहना चाहिए और यदि खड़े रह कर कोई बात सुन भी ली तो उसका निर्णय निकाले बिना किसी के सामने कोई बात नहीं करनी चाहिए। अन्यथा उसका भविष्य मे बुरा परिणाम निकले बिना नहीं रहता।

उदाहरण के तौर पर मैं आपके सामने एक सत्य घटना रख देना उचित समझता हूँ। तो एक दिन की बात है कि बैसाख जेठ की गर्मी के दिनों मे किसी जगह कोई साधु किसी के घर पानी के लिये गया। उस घर के मालिक ने महाराज को कडकडाती धूप में आया हुआ देख उनका स्वागत किया और उनके पात्र में ओले के लड्डू वहरा दिये। मुनिराज उन्हे लेकर अपने स्थान पर लौट आए वहा उन्होंने उन लड्डूओं को एक कपडे पर रख दिये। इतने ही में वहां कोई भाई मुनिराजों के दर्शन करने हेतु आगया। उसकी दृष्टि दूर पर रखे हुए ओले के लड्डुओं पर जा पडी। भाई! चूंकि वे लड्डू रग मे सफेद और गोल गोल थे अतएव वे लड्डू उसकी दृष्टि में अडे ही दिखाई दिये। शायद वह व्यक्ति छिद्रान्वेषी होगा। अतएव उसने बाजार मे जाकर यह खबर फैलादी कि महाराज तो अडे खाते है और मैं स्वय अपनी आखों से रखे हुए देखकर आया हूँ। परन्तु जब किसी ने उसकी बात को प्रमाणिक नहीं माना तो वह कहने लगा कि यदि किसी को इस विषय में शका हो तो मैं स्वय चलकर उसे दिखा सकता हूँ। परन्तु एक व्यक्ति ने इस अनहोनी बात का निर्णय करने का विचार कर लिया। वह व्यक्ति उसे लेकर उपाश्रय मे आया। तब उसने उस व्यक्ति को वे ओले के लड्डू पास में लाकर दिखाये और कहने लगा भाई! क्या इन्हें ही तुम्हारी छिद्रान्वेषी आखे अडे समझ रही थीं? अब तुम इन्हे अपनी आखे खोल कर देख लो कि ये अडे हैं या शक्कर के लड्डू? जब सत्य बात का निर्णय होगया तो वह व्यक्ति पश्चाताप करने लगा और कहने लगा कि मेरी तो दृष्टि ही ऐसी पड गई थी। भाई! यदि उसी समय गलत बात का निर्णय नहीं हो जाता तो कितनी नामोशी की बात हो जाती। तो दुनियां मे अधिकाश लोग ऐसे हैं कि वे कानों से

किसी बात को सुन तो लेते हैं परन्तु निर्णय किये बिना ही उसे आगे बढा देते हैं।

तो भरत महाराज के हृदय पर भी इस बात का बहुत बुरा प्रभाव पडा। उन्होंने विचार किया कि जिस व्यक्ति ने मुझे झूठा बनाने की कोशिश की है उसकी तो मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। परन्तु उसने तो भगवान को भी झूठा बनाने का प्रयत्न किया है। अतएव मैं ऐसे व्यक्ति को तो शिक्षा दिये बिना और उसी के मुंह से निर्णय कराए बिना कैसे छोड़ सकता हूँ।

हां, तो जब भरत महाराज ने गुप्तचरों को आदेश दिया कि वे उस व्यक्ति को पकड कर लायें जिसके मुह से यह बात सुनी गई है तब गुप्तचर गए और उन्होंने एक व्यक्ति को महाराज की सेवा मे लाकर उपस्थित कर दिया। उसे सामने खडा हुआ देखकर भरत महाराज ने उससे पूछा भाई! तुमने यह बात किससे सुनी है? प्रत्युत्तर में उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर अर्ज की महाराज! मैंने तो अमुक व्यक्ति से यह बात सुनी थी। जब उसके मुह से दूसरे की तरफ संकेत कर दिया गया तो उसे छोड़ दिया गया और दूसरे व्यक्ति को बुलाया गया। इस प्रकार आगे से आगे निर्णय निकलने लगा। और अन्त में वही व्यक्ति पकड़ लिया गया जिसके मुह से प्रारम्भ में यह निर्मूल बात निकली थी। अब वह भाग कर भी कहा जा सकता था? क्योंकि सरकार के हाथ भी बहुत लम्बे होते हैं। अतएव जब वह व्यक्ति गिरफ्तार करके भरत चक्रवर्ती के सामने लाकर खड़ा किया गया तो वह थर थर धूजने लगा। गुप्तचरों ने भी महाराज से अर्ज की अन्नदाता! यही वह व्यक्ति है जिसने भगवान, राजा और दुनियां के भय से रहित होकर गलत विचारों का सारे शहर में प्रचार किया है।

तब भरत महाराज ने उस व्यक्ति से पूछा कहो ! क्या तुमने ही निर्णय किये विना ही गलत प्रचार किया था ?

यह सुनते ही उस व्यक्ति की गर्दन भरत महाराज के चरणों में झुक गई और मौन साधना करके स्तब्ध सा रह गया। उसकी उस समय 'शरीर को काटो तो खून नहीं' वाली स्थिति हो रही थी। वह अपने मुंह से एक भी शब्द न बोल सका।

यह देख भरत महाराज विचार करने लगे कि अब मुझे पुनः सत्य बात का प्रचार कराने और इसके मानसिक विचारों को बदलने के लिये क्या करना चाहिए ? परन्तु, जब तक इसके मुंह से अपनी गल्ती कबूल नहीं होजाती और यह अपनी गल्ती के लिये पश्चाताप नहीं कर लेता तब तक मुझे आगे कदम नहीं उठाना चाहिये। अतएव उन्होंने पुनः उससे पूछा भाई ! क्या तुमने ही सारे शहर में इस अफवाह को फैलाने का साहस किया है ?

भरत महाराज के मुखारविंद से पुनः प्रश्न करने पर उस व्यक्ति ने विचार किया कि मुझे सत्य बात अवश्यमेव महाराज के सामने प्रकट कर देना चाहिये। क्योंकि नीतिकारों ने भी कहा है कि,

*गुरु, वैद्य, माता, पिता, और भूप के पास।*
*'सुब' कहे पूछे तभी, दीजे साफ प्रकाश ॥*

भाई ! नीतिकारों का कहना है कि जो कोई भी अपने से अपराध होगया हो या कोई गुप्त रोग भी क्यों न होगया हो परन्तु उसे राजा, गुरु, माता-पिता या वैद्य के सामने स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देना चाहिये। उक्त पांचों व्यक्तियों के समक्ष कोई भी बात परोक्ष रूप में नहीं रखनी चाहिये। क्योंकि सत्य बात प्रकट कर देने से वे किसी

भी तरह उसकी रक्षा करने मे समर्थ हो सकते हैं। अन्यथा नुकसान होने की ही संभावना रहती है।

तो उस व्यक्ति को भी उक्त नीति का दोहा याद आगया। उसने तुरन्त भरत महाराज के सामने विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर अर्ज की— हे चक्रवर्ती सम्राट! मुझसे भयकर भूल होगई। मुझे इसके लिये अत्यधिक पश्चाताप है। मैंने आप जैसों के लिये व्यर्थ ही निर्मूल शका कर ली। और उस शका का भगवान के समक्ष निराकरण किये बिना ही दूसरे के सामने पुरज़ोर आलोचना और टीका-टिप्पणी कर दी। महाराज! मुझे इस प्रकार का गलत प्रचार कदापि नहीं करना था। परन्तु उस समय भगवान के मुखारविन्द से आपके सम्यक्त्व की तारीफ सुनकर और आपके इसी भव में समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त करने के विचार सुनकर मेरे हृदय में उथल पुथल मच गई मेरे पेट में आफरा सा आगया। और उस समय मेरे मन में केवल यही विचार आया कि भरत महाराज को इतने बडे राज्य का संचालन करते हुए, महान आरंभ परिग्रह के धारक होते हुए और इतने विषय भोगों में रमण करते हुए मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? यदि ऐसों की भी मोक्ष हो सकती है तो हमारी तो निस्सदेह मोक्ष हो जायेगी। तो महाराज! उक्त विचार मेरे हृदय में नहीं रह सके और दुनिया के सामने प्रकट रूप में आ ही गए। कृपया मुझे अपनी महान गलती के लिये क्षमा करें।

उक्त व्यक्ति के मुँह से हृदयोद्गार सुनकर भरत-चक्रवर्ती ने विचार किया कि यद्यपि इसने अपनी गलती मजूर कर ली और इसे पश्चाताप भी होरहा है। परन्तु पुनः इसके मुँह से ही सत्य प्रचार कराए बिना और इसे अपने अपराध की उचित शिक्षा दिए बिना छोड़ देना भी उचित नहीं लगता। क्योंकि यदि मैं इसे इसी प्रकार

क्षमा कर छोड़ देता हूँ तो इसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतएव इसे अपने अपराध की सजा तो अवश्य ही मिलनी चाहिए।

इस प्रकार का निश्चय करके भरत महाराज ने उस व्यक्ति को, अलग स्थान पर बिठवा दिया। इसके पश्चात उन्होंने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि भरत नामक बाजार को आकर्षक ढग से सजाया जाये। उसकी सजावट में स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोतेन्द्रिय आदि पांचों ही इन्द्रियों को पोषण करने वाली, मन को लुभाने वाली और आकर्षित करने वाली सभी तरह की चीजें एकत्रित की जाये। उस बाजार की सजावट को देख कर भोगी का ही नहीं परन्तु एक बार तो त्यागी पुरुष का मन भी विचलित हो जाए। और यह सब कार्य यथा शीघ्र होजाना चाहिए।

तो भरत महाराज की आज्ञा प्राप्त होते ही उक्त कर्मचारियों ने भरत बाजार को महाराज के आदेशानुसार ही सजवा दिया। अब सारे बाजार की सजावट अत्यन्त आकर्षक और मनमोहक हो चुकी थी।

जब सारा बाजार असाधारण ढंग से सजवा दिया गया तो उन कर्मचारियों ने भरत महाराज की सेवा में उपस्थित होकर अर्ज की- महाराज! आपकी आज्ञानुसार भरत बाजार अद्वितीय ढग में सजा दिया गया है।

यह समाचार सुनते ही भरत चक्रवर्ती ने उस व्यक्ति को अपने पास बुलवाया। और एक तेल से लबालब भरा हुआ कटोरा मंगाकर उसके हाथ मे दिलवाया। इसके साथ ही उन्होंने उससे कहा-देखो इस तेल से भरे हुए कटोरे को लेकर भरत बाजार की सजावट देखने जाओ और वहा से लौट कर सारी रौनक के समाचार मुझे

सुनाओ। परन्तु साथ ही मेरी एक शर्त भी है जिसका पालन करना निहायत जरूरी है।

तो उन्होंने अपनी शर्त उसके सामने रखते हुए कहा—

*बीच बाजार होकर जाओ तुम, रहिजो संग सिपाही रे।*
*एक बूंद भी गिरे तो दीजो, शीश उड़ाई रे ॥४॥*

भरत महाराज ने उसके सामने यह शर्त रखी कि इस कटोरे में तेल की एक बूंद भी जमीन पर नहीं गिरनी चाहिए। फिर अपने सिपाहियों को आदेश देते हुए कहा-देखो! यदि इस व्यक्ति की असावधानी से कटोरे मे से एक भी तेल की बूंद जमीन पर गिर पडे तो तुम तलवार से इसका सिर धड से जुदा कर देना। इस प्रकार का भय महाराज ने उस व्यक्ति के हृदय मे प्रवेश करा दिया। एकान्त मे सिपाहियों को कह दिया कि इसकी गर्दन धड़ से जुदा नहीं करनी है परन्तु मैंने केवल इसके मन मे भय प्रवेश कराने के लिये ही प्रत्यक्ष में ऐसा आदेश दिया है।

भाई! ज्यों ही उस व्यक्ति ने भरत चक्रवर्ती की आज्ञा सुनी तो उसका मन प्राण विसर्जन होजाने के भय से आतंकित होगया। परन्तु महाराज की आज्ञा का पालन करना भी तो उसके लिये अनिवार्य था अतएव वह जान के खतरे से अपने कदम बड़ी सावधानी के साथ और फूंक फूंक जमीन पर रखते हुए चलने लगा। उसके मन में एक मात्र यही आशंका बनी रही कि कहीं एक भी बूंद जमीन पर गिरी नहीं कि इन सिपाहियों के द्वारा नगी तलवार से मेरा सर धड़ से जुदा कर दिया जायगा। अतएव उसने अपनी दृष्टि उस कटोरे की तरफ ही स्थिर कर ली।

इस प्रकार सभल सभल कर चलते हुए जब वह भरत नामक बाजार में प्रविष्ट हुआ तो वहा की रौनक पांचों इन्द्रियों को ही बर बसत अपनी ओर आकृष्ट करने वाली थी।

कवि महोदय उस बाजार की सजावट का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि·

*विविध भांति वस्तु हट्टियों पर, दीनी खूब सजाई रे।*
*उस रास्ते होकर उस नर को, सौंप्यो लाई रे॥ ५॥*

भाई! उस भरत नामक बाजार मे विविध प्रकार की वस्तुओं से दूकानें सजाई हुई थी। कहीं तो हलवाईयों ने अपनी दूकानों को तरह तरह की मिठाइयों से चमचमाते हुए थालों को भर कर और सोने चांदी के वर्क लगाकर सजा रखी थी और कहीं सर्राफों ने सोने चादी के चमकीले आभूषणों से अपनी दूकानें सजा रखी थीं। इसी प्रकार बर्तन वालों ने, कपडे वालों ने, इत्र फरोशों ने और दूसरे दूसरे दूकानदारों ने भी इसी प्रकार अपनी अपनी दूकानों को सजा कर आकर्षित बना दी थी और इनके अतिरिक्त चौराहों चौराहों पर तरह तरह के सुरीले वाद्य यन्त्र बज रहे थे और विविध प्रकार के खेल तमाशे भी हो रहे थे। तो बहरहाल सारा भरत बाजार देवपुरी के सदृश दिखाई देने लगा। प्रत्येक दर्शक का मन एक एक दुकान की सजावट की ओर आकर्षित हो रहा था। तो इस प्रकार कानों को आकर्षित करने वाली आखों को लुभाने वाली, नाक को अपनी ओर खींचने वाली, जिह्वा को बेभान करने वाली और शरीर से भोगी जाने वाली तमाम चीजे उस बाजार में सजी हुई थी। और बाजार की नुमाइश को देखने वाले दर्शकों की भीड़ भी अपार लगी हुई थी।

परन्तु ज्योंही वह व्यक्ति पांचों प्रकार की इद्रियों को ललचाने वाले सजे हुए बाजार में से होकर सन्तरियों के द्वारा लाया गया त्यों ही उसकी आंखे और भी सजग होगई। उसकी दृष्टि किसी भी आकर्षित पदार्थ की ओर नहीं गई। उसकी दृष्टि तो एक मात्र कटोरे की तरफ गडी हुई थी। क्योंकि उसे तो अपने प्राणों की पडी हुई थी अतएव उसने किसी तरफ भी लक्ष्य नहीं दिया। बल्कि उसी मद गति से सावधानी पूर्वक कदम आगे बढ़ाते हुए चलता रहा। इस प्रकार उसे देखकर उसके परिचित लोग उसकी तरफ आवाजें कसते हैं और कहते हैं कि भाई! इस तरफ भी तो जरा देखो, सुनो, सूघो, चाखो और भोग भोग लो। परन्तु वह तो अपनी जान की खैर मनाता हुआ सबकी सुनी अनसुनी करता हुआ आगे की ओर ही बढ़ता गया। उसे तो ऐसा मालूम होरहा था जैसे बाजार सजाया ही नहीं गया है। उसके मन मे तो यही विचार उमड-उमड़ कर आरहे थे कि—"जान बची तो लाखों पाए" अर्थात्—जान बच गई तो सब कुछ देखेंगे, खायेंगे, पियेंगे, सूघेंगे, सुनेंगे और दुनिया के भोग भोगेंगे।

तो इस प्रकार निश्चय और एकाग्र भाव से चलता हुआ वह व्यक्ति अपनी मजिल को पार कर निर्विघ्नता पूर्वक भरत महाराज की सेवा मे उपस्थित होगया। उसका सारा शरीर भय के मारे धूजने लगा था। परन्तु जब वह अपने निर्धारित लक्ष्य पर पुन. सही सलामत पहुँच गया तो उसकी जान में जान आई। उसने उसी वक्त भरत महाराज को प्रणाम किया और उस तैल से भरे हुए कटोरे को सावधानी के साथ जमीन पर रख दिया।

-उसकी इस प्रकार की विचित्र परिस्थिति को देखकर भरत-चक्रवर्ती पूछने लगे कि—

*क्या क्या देखी चंगी चीज, आवत रस्ना के मांई रे।*
*फक्त कटोरा बीच ध्यान, चित गयो न कांई रे ॥६॥*

भरत महाराज ने बड़े प्रेम से उस व्यक्ति से प्रश्न किया-भाई! तुम भरत बाजार की सजावट देखकर इतनी देर बाद लौटे हो तो यह बताओ कि तुमने वहा कौन-कौनसी चीजें देखी और उनमे से तुम्हें कौन-कौन सी चीजे पसंद आई ? अरे! तुमने बाजार में क्या देखा, क्या सुना, क्या खाया, क्या सूंघा और क्या-क्या भोगा ?

तब वह व्यक्ति महाराज के प्रश्न के प्रत्युत्तर में हाथ जोडकर अर्ज करने लगा—महाराज! मैं भरत-बाजार की सजावट का और वहां के दृश्यों का क्या बयान कर सकता हूँ! महाराज! मेरे लिए तो तमाम बाजार की सजावट श्मशान तुल्य थी। क्योंकि आपका आदेश मेरे सिर पर काल की तरह घूम रहा था। अतएव किसी भी प्राणधारी को अपने प्राणों से बढ़कर अन्य प्रिय वस्तु क्या लग सकती थी। तो महाराज! मेरा तो एक मात्र लक्ष्य उस तैल से भरे हुए कटोरे की ही तरफ था। मुझे तो यही महान भय भयभीत कर रहा था कि कहीं एक बूंद भी कटोरे मे से जमीन पर गिरी नहीं कि मेरा सिर धड से जुदा कर दिया जायेगा। बस! इसी चिंता के कारण मैं बाजार मे न तो कोई चीज देख सका,खा सका,सूंघ सका, सुन सका और न ही स्पर्श कर सका। महाराज! मैं तो जैसे-तैसे अपनी मंजिल पारकर निश्चित स्थान पर पहुँच पाया हूँ और जबकि मेरा लक्ष्य एक मात्र कटोरे की तरफ था तब महाराज! मैं बाजार की सजावट का बयान भी कैसे कर सकता हूँ।

उस व्यक्ति के मुँह से जब भरत महाराज ने उसके जीवन का वृतान्त सुन लिया तो वे उसे शिक्षा के रूप में कहने लगे कि—

*यों मुझ मन वैराग्य बसे, नहीं आरंभ परिग्रह मांई रे।*
*न्याय सहित उस मानव को दियो, भ्रम मिटाई रे ॥७॥*

*उन्नीसे पच्चास ऊपर, छब्बीस साल के मांई रे।*
*मुनि नंदलाल तणा शिष्य, अलवर जोड बनाई रे ॥८॥*

तब भरत महाराज उस व्यक्ति की निर्मूल शका का निवारण करते हुए कहने लगे—भाई ! जिस तरह तेरा ध्यान काल के भय से एक मात्र कटोरे की तरफ ही था और अन्यान्य आकर्षक पदार्थों की तरफ तेरा किंचिदपि ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ उसी प्रकार मेरा मन भी इन सब भोग पदार्थों के होते हुए भी और छ खड का अधिनायक होते हुए भी वैराग्य में बस रहा है। मेरा मन सम्यक्त्व मे लीन होरहा है। जैसे तेरे सामने भरत-बाजार मे पाचों ही इद्रियों को लुभाने वाले पदार्थ आए थे परन्तु तेरा ध्यान किसी तरफ भी नहीं गया उसी तरह मेरे सामने भी इतना आरम्भ-परिग्रह और इतने विषय भोग के साधन मौजूद हैं परन्तु फिर भी मेरा इनमें तनिक भी आसक्तिभाव नहीं है। मैं सब कुछ आरम्भ परिग्रह का सेवन करते हुए भी वैराग्य में लीन रहता हूँ।

इस प्रकार भरत चक्रवर्ती ने अपनी विलक्षण बुद्धि के द्वारा उस व्यक्ति की निर्मूल शका का निराकरण कर दिया। जब उसकी आखों के आगे से असत्य का पर्दा हट गया और सत्य सामने आ गया तो वह भरत महाराज से अपनी गलती के लिए क्षमा याचना करने लगा। भरत महाराज ने भी उसे क्षमा कर दिया। फिर उसने बाजार में जाकर एक-एक व्यक्ति के सामने कहा—भाई ! मैंने भरत महाराज के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह गलत था। और भरत महाराज के लिए भगवान ऋषभदेव ने जो प्रशसा की थी वह यथार्थ है। उनके तो रोम-रोम में सम्यक्त्व और वैराग्य समा रहा है।

तो भाई ! वैराग्य मे ध्यान कब होता है ? जबकि मानव के मन मे मृत्यु का भय लगा रहता है।

देखो ! संत कवीर ने भी वैराग्य से परिपूर्ण बात कहते हुए दुनिया के लोगों को सावधान किया है कि —

*'कविरा' थोडा जीवन, मांड्या वहुत मंडान।*
*पाडोसी में बीत गई, सो अपने में जान॥*

कवीरजी उद्बोधन देते हुए कह रहे हैं कि - ऐ दुनिया के लोगों ! अब भी तो सावधान हो जाओ ! अरे ! तुम लोग थोडी सी जिंदगी के खातिर इतनी उछल-कूद क्यों कर रहे हो ! अरे ! तुम्हें क्या पता नहीं कि जिस प्रकार तुम्हारे पडौसी पर वीती है उसी प्रकार तुम्हारे ऊपर भी निकट भविष्य मे बीतने वाली है ? इसलिए ससार मे रहते हुए भी मौत को मत भूलो। भाई ! मृत्यु को हमेशा सोते-जागते, उठने वैठते, खाते-पीते और प्रत्येक जीवन सबन्धी कार्य करते हुए याद रखो। यदि तुम मृत्यु को सदैव याद रखोगे तो तुम्हारे द्वारा दुष्कर्म नहीं होने पाएँगे और तुम्हारी आत्मा निर्भय बन जायेगी।

तो प्रत्येक आत्मा को ससार सम्बन्धी कार्य करते हुए भी भरत महाराज की तरह वैराग्य मे ओत-पोत रहना चाहिए। कितना ही आरम्भ-परिग्रह और विषय भोग के साधन सुलभ हो जाने पर भी मानव का मन उनसे जुदा रहना चाहिए। उस तो हर वक्त यही ख्याल रखना चाहिए कि ये ससार के पदार्थ कुछ और है और मैं कुछ और हूँ।

इस प्रकार जो सम्यक्त्वी होता है वह सदैव यही विचार करता है कि:—

*अहो ! समदृष्टि जीवडा, करै कुटुम्ब प्रतिपाल ।*
*अंतरगत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल ॥*

भाई ! समकित धारी आत्मा का यही लक्षण है कि वह अपने कुटुम्ब की प्रतिपालना करते हुए भी अंतर्हृदय से सबसे पृथक रहता है। जैसे कोई धाय माता किसी सद्गृहस्थ के बच्चे को अपने स्तन का पान कराती हुई और सब प्रकार से लाड़ लड़ाती हुई भी मन मे यही विचार रखती है कि यह पुत्र मेरा नहीं है और न ही मैं इसकी माता हूँ। तो ठीक इसी प्रकार से सम्यक्त्वी जीव भी संसार के सारे कर्तव्य करते हुए भी यही विचार करता है कि मैं तो सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ ! न तो ये पदार्थ मेरे हैं और न मैं ही इनका हूँ। इस प्रकार वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझकर अपने जीवन को विशुद्ध रूप में व्यतीत करता है।

तो भरत चक्रवर्ती भी जिस वैराग्य भावना में ओत-प्रोत रहते थे तो एक दिन उसी का साकार रूप प्रकट में आने का अवसर आ गया। भगवान ऋषभदेव ने उनके सम्यक्त्व की जैसी तारीफ की थी और उसी भव में मोक्ष प्राप्त करने का जो उन्हें सर्टिफिकेट (प्रमाण-पत्र) अपने मुखारविन्द से सभा के बीच मे दिया था उसके प्रमाणित होने का समय भी अब सन्निकट पहुँच चुका था। अतएव एक दिन जबकि वे आरीसा-भवन में वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर पहुँचते हैं तब वे दर्पण मे अपने वस्त्रालंकारों का निरीक्षण करते हुए विचारने लगते हैं कि ओ हो ! मैं तो इन पर पुद्गलों से ही विशेष रूप से शोभित हो रहा हूँ। परन्तु विचार करते करते अचानक उनकी दृष्टि उस उँगली पर जा पडी जिसमें मुद्रिका नहीं थी और जब उनकी दृष्टि उस मुद्रिका रहित उगली पर पड़ी तो वे पुनः विचार करने लगे कि ओ हो ! इन अमूल्य आभूषणों से सुसज्जित अंगो-

पागों के बीच में यह उंगली कितनी भद्दी लग रही है। अब वे इससे आगे बढ़कर विचार करने लगे कि यदि दूसरे शरीर के अगोपांगों के आभूषण उतार दिए जांये तो क्या वे भी इसी प्रकार भद्दे और अशोभनिक मालूम होंगे।

और इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने शरीर के प्रत्येक अगोपांग से आभूषण उतारने शुरू कर दिये। इस प्रकार शरीर के समस्त आभूषणों को उतार देने के पश्चात जब उन्होंने आभूषणों से रहित अगोंपागो का दर्पण मे निरीक्षण किया तो उनकी सुन्दरता में और भी फर्क नजर आने लगा! अब इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने सारे वस्त्र भी उतार दिये। और जब नग्नावस्था में उन्होंने अपने शरीर का निरीक्षण किया तो अब शरीर का रूप कुछ विचित्र सा ही दिखाई देने लगा। इस प्रकार भरत महाराज के भावों में जब उद्रेक हुआ तो वे अपने मन मे कहने लगे कि ओहो! इस नश्वर शरीर की सुन्दरता जो प्रत्यक्ष मे दिखलाई दे रही है वह केवल पर पुद्‌गलों के आधार पर ही है। अन्यथा इस आत्मा की कीमत तो इनके विरुद्ध आत्मा में रहे हुए सद्‌गुणों के कारण ही है। इस प्रकार स्व-पर का विचार करते करते भरत महाराज को सहसा आरीसा भवन में ही केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति होगई।

इस प्रकार केवल ज्ञान उत्पन्न होते ही महोत्सव मनाने के लिए देवता सेवा में हाजिर हो गए। उन्होंने भरत चक्रवर्ती को साधु वेष दिया। भरत महाराज ने उस साधु वेश को धारण कर लिया और महलों से निकल कर बाहर आगये।

परन्तु जब भरत महाराज की रानियों ने उन्हें साधु वेष में देखा तो वे सब खिलखिला कर हसने लगीं।

तो इसी बात को कवि अपनी भाषा में प्रकट करते हुए कह रहा है कि —

*रूप देख भ'तेश्वर केरो, राणयां हसवा लागी।*
*अणी हसवा की खबर पडेगा, थे रहीज्यो मासूं आगी॥*
*भरतजी भूपत भयो रे वरागी॥*

तो वे सब रानियां भरत महाराज को साधु वेश में देख कर हसती हुई कहने लगीं—हे नाथ! आज आपने यह वेष कैसा बना रखा है।

तब भरत महाराज ने रानियों को सकेत करते हुए कहा-रानियों अब तुम सब मुझसे दूर रहना। और हसने की वात तुम्हें फिर मालूम पडेगी।

इसी प्रकार भरत सम्राट को सिहासन पर आसीन कराने के लिये जो बत्तीस हजार मुकुबवन्द राजा सभा में बैठे हुए थे वे भी भरत महाराज को साधु वेष में देखकर अर्ज करने लगे-महाराज! आज आपने यह क्या स्वाग बना रखा है? हम सब तो आपको राजसिंहासन पर आरूढ कराने के लिये बैचेन हो रहे हैं।

तब भरत सम्राट ने उन सबके बीच में धर्मोपदेश दिया। उस धर्मोपदेश का उन सब राजाओं के हृदय पर इतना गहरा असर हुआ कि उनमें से दस हजार राजा वैराग्य धारण कर साधु बन गए।

देखो! भरत चक्रवर्ती के तो एक दिन के ही धर्मोपदेश को श्रवण कर दस हजार राजा साधु बन गए। जबकि मैं तो आप भाई बहनों के समक्ष चार चार मास पर्यन्त उपदेश सुनाता रहता हूँ परन्तु एक व्यक्ति भी साधु बनने की भावना नहीं लाता। तो इसका

भी एक मात्र कारण यही है कि हमारा काम तो उपदेश देने का है और आप लोगों का काम केवल इस कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने का रह गया है। तब फिर उपदेश का आप लोगों के हृदय पर असर पडे तो कैसे पडे ?

इस प्रकार भरत महाराज अपने शिष्य परिवार सहित महि मंडल में धर्म प्रचार करते हुए विचरने लगे। और एक दिन समस्त कर्मों को काट कर उसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर लिया।

इसीलिये आचार्य महाराज भी कह रहे हैं कि यह श्रद्धा और सम्यक्त्व भी उसी को प्राप्त होती है जिसके अखूट पुण्य होते हैं। तो हम सब को भी सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये पुण्योपार्जन करते रहना चाहिये।

इस प्रकार जो भव्यात्माएं अपनी आत्मा को इस लोक तथा परलोक मे सुखी बनाना चाहती हैं उन्हें अपने सच्चे देव, गुरु तथा धर्म पर अटूट श्रद्धा रखनी चाहिये।

बैंगलोर (कन्टोन्मेन्ट)
ता० २६-८-५६
शनिवार

# :: आत्मविजय ::

卐

*सिद्धाणं बुद्धाण, पारगयाण परपरा गयाणं ।*
*लोयग्ग मुव गयाणं, नमो समा सव्व सिद्धाणं ॥१॥*
*जो देवाण वि देवो, ज देवा पजली नम सति ।*
*त देवा देवमहिब, सिरसा वन्दे महावीरं ॥२॥*
*इक्को विनमुक्कारो, जिणवर वसहस वद्धमाणस्स ।*
*ससार सागराठ, तरइ नरं व, नारी वा ॥ ३ ॥*

卐

**प्रासंगिकः—**

कालीवुरप मोहल्ले के उपाश्रय में एक सप्ताह से भगवान शान्तिनाथ के पावन नाम का जाप हो रहा था। आज वह पूर्ण हो रहा है।

आज ससार में सर्वत्र अशान्ति दृष्टिगोचर होरही है, शासन के क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र मे, सामाजिक क्षेत्र मे, यहा तक कि पारिवारिक क्षेत्र मे भी अशान्ति का ही प्रसार देखा जा रहा है। जब बाहर का वातावरण क्षोभमय होता है तो चित्त पर उसका प्रभाव पड़ता ही है और चित्तक्षोभ की स्थिति में मनुष्य न शान्ति का अनुभव कर पाता है, न समभाव को स्थिर रख सकता है और न धर्म

की यथावत् आराधना कर सकता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति के लिए यही उचित है कि वह अपनी शक्ति और सही समझ के अनुसार शान्ति प्रसार के लिए प्रयत्न करे और विश्वशान्ति की स्थापना में योग दे।

शान्ति की स्थापना के अनेक उपाय और तरीके हैं, किन्तु उनमें शान्तिनाथ भगवान् के नाम का जप और स्मरण सर्वश्रेष्ठ उपाय है। भगवान के नामजपन से आन्तरिक शान्ति के साम्राज्य का निर्माण होता है और ऐसी ही शान्ति स्थायी और वास्तविक होती है।

सन्त जनों ने अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि परमात्मा के नाम के जाप में अद्भुत, अनिर्वचनीय और असीम सामर्थ्य निहित है। नाम की अपार महिमा है। वह साधारणजनों के चिन्तन मे नहीं आ सकती। अतएव हमे भी सन्तों के उस अनुभव के प्रकाश में चलना चाहिए और सब प्रकार की अशान्ति को दूर करने के लिए भवगत्-नाम का सहारा लेना चाहिए।

जो भगवान् शान्तिनाथ के नाम का जाप करता है, वह तो आनन्द का भागी होता ही है। साथ ही इससे सारे लोक मे भी शान्ति का प्रसार होता है।

दूसरी प्रासगिक बात भी कह दूँ। आज इस भव्य पंडाल के अदर आप लोग प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हो सके है, इसका एक संक्षिप्त इतिहास है। मोरसली और सपीन्स रोड वाले भाइयों की भावना थी कि मुनि श्री यहां चातुर्मास करें तो हमारे यहां भी धर्म-ध्यान करने के लिए एक स्थान की कोशिश हो सकेगी। उन धर्म प्रेमी भाईयों ने इस भावना से प्रेरित होकर हमसे बहुत अनुरोध

और आग्रह किया। उनके उच्च विचारों को लक्ष्य मे रख कर हमने चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

उक्त भाइयों की भावना प्रबल और उत्कृष्ट थी, अतएव वह कार्य रूप में परिणत होगई और इक्यावन हजार मे यह बंगला ले लिया गया है। इस प्रकार आपके धर्म-ध्यान के लिए एक नियत स्थान की पूर्ति हो गई।

धर्म ध्यान के लिए सार्वजनिक स्थान होने से अनेक धार्मिक लाभ होते हैं। अनेक भाई एक जगह इकट्ठे होते हैं तो एक को दूसरे से धार्मिक प्रेरणा एवं उत्साह की प्राप्ति होती है। ज्ञान का पारस्परिक आदान-प्रदान हो सकता है। धर्म चर्चा का अवसर प्राप्त होता है। समाज एव धर्म के अभ्युदय की विचारणा करने का वातावरण निर्मित होता है।

हा, तो इसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय सेठ चुन्नीलालजी कातरेला की धर्मपत्नी धर्मनिष्ठा वेवरबाई को है, जिन्होंने उदारतापूर्वक अपना बगला धर्म ध्यान करने के लिए दिया और इक्कीस हजार की उदारता भी प्रदर्शित की। उनका यह ममता त्याग प्रशंसनीय है।

आप सबके लिए यह उचित होगा कि अब आसपास के सब भाई यहां विशेष रूप से धर्म ध्यान करे। सन्तों की उपस्थिति से लाभ उठावें और जब सन्तों का सान्निध्य न हो तब भी अपना धर्म ध्यान बराबर चालू रक्खें और सामायिक, स्वाध्याय आदि की प्रवृत्ति को वृद्धिंगत करें, जिससे आपका कल्याण हो और समाज मे भी धार्मिक वातावरण का नूतन निर्माण हो।

*वल्गान्तुरगगज गर्जित भीमनाद,*
*माजौ वल वलवतामपि भूपतीनाम।*
*उद्य दिवाकर मयूख शिखाय विद्ध*
*त्वत्कीर्तनात्तम् इवाशु भिदामुपैति ॥*

श्रीमान तुंगाचार्य ने लोहमय वन्धनों से जकड़े हुए अपने शरीर को निर्वन्धन करने के लिये भक्तामरस्तोत्र की रचना की थी। मगर वास्तव में भगवान का स्तोत्र न केवल शारीरिक बन्धनों को ही वरन् अनादिकालीन आत्मिक वन्धनों को भी विनष्ट करने का अमोघ उपाय है।

भगवान तीर्थङ्करों का परम पावन नाम ससार के आठ प्रकार के भयों को निवारण करने वाला है। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक, अविचल श्रद्धा से अनन्य भाव से, भगवान की स्तुति करता है और अपने आपको भगवान के चरण शरण मे समर्पित कर देता है, उस के सामने आये हुए समस्त भय नष्ट हो जाते हैं। उसके लिये भविष्यत कालीन विपत्ति भी सम्पति के रूप में परिणत होजाती है। वह सर्वथा निर्भय निर्द्वंद्व वन जाता है।

अभी जो श्लोक पढ़ा गया है, उसमें पांचवें भय सग्राम सवधी सकट के निवारण का उल्लेख किया गया है। आचार्य महाराज कहते हैं प्रभो! जो भक्त आपके नाम का स्मरण करता है, उसे अवश्य ही युद्ध में विजय श्री की प्राप्ति होती है।

महासग्राम का अवसर उपस्थित है। दो वलवान राजाओं की प्रचण्ड सेनाएं, मैदान मे, आमने सामने डटी हैं। भीषण रण हो रहा है। घोडों और हाथियों की हृदय को दहला देने वाली हिन

हिनाहट और चिंघाड़ हो रही है। विजय की सभावना नहीं है। तथापि जो मनुष्य निर्भय भाव से, आपके नाम को ही परम बल मान कर जपता है, उसे अवश्य विजय प्राप्त होती है। बलवान भूपतियों की विशाल सेना भी उसके सामने से उसी प्रकार विलीन हो जाती है, जैसे दिवाकर की प्रखर एव प्रचण्ड रश्मियों से सघन अधकार क्षण भर में गायब हो जाता है।

इस श्लोक का आशय यह है कि दो राजाओं की सेनाओं में युद्ध हो रहा है। एक ओर बहुसख्यक और प्रचण्ड हाथी हैं, घोड़े हैं रथ हैं और पैदल सैनिक हैं। दूसरी ओर स्वल्प सख्यक सेना है। स्वल्प सेना वाले के दिल में यह खयाल पैदा होता है कि मेरे पास भौतिक बल थोड़ा है। विरोधी राजा अधिक प्रबल है। इस परिस्थिति मे मुझे विजय प्राप्त होना कठिन है। तब वह भौतिक बल का सहारा त्याग कर आध्यात्मिक पारमात्मिक बल का आश्रय लेता है वह परमात्मा को पवित्र भाव से स्मरण करता है। कहता है 'भगवन आप ही मेरे रक्षक हो, आप ही त्राता हो, शरणदाता हो, और आपके नाम महात्म्य से ही मेरा निस्तार हो सकता है। आपके सिवाय दूसरा कोई मेरा सहायक नहीं है।' जब इस प्रकार के विचारों से हृदय परिपूर्ण हो जाता है और भगवान के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा का भाव उदित होता है, तो आचार्य कहते हैं—जैसे सूर्योदय से अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार सच्चे हृदय से भगवान का स्मरण करते ही विरोधी सशक्त सेना भी कुण्ठित होकर भाग जाती है और विजय श्री उसके गले में बरमाला डालने को प्रस्तुत हो जाती है।

यह भगवान् के नाम का माहात्म्य है। भगवत् नाम में कैसी और कितनी क्षमता है, कैसी अपूर्व शक्ति है, यह तो वही जान

सकता है जो ससार के वलों की आशा त्याग कर एक मात्र परमात्मा के नाम वल का ही आश्रय लेता है।

यह तो वाह्य विजय है। ऐसी विजय क्षुद्र है, अस्थायी है, अकिंचित्कर है। अनादिकाल से भवभ्रमण करते इस जीव ने अनन्त वार ऐसी विजय प्राप्त की है। मगर उस विजय से आखिर आत्मा का क्या भला हुआ? भौतिक विजय कभी-कभी तो एक जीवन पर्यन्त भी स्थायी नहीं रहती और कदाचित् पुण्य योग से रह गई तो जीवन के अन्त के साथ उसका अन्त अनिवार्य है। लोगों की यह धारणा भ्रमणा मात्र है कि भौतिक विजय से शत्रुओं का अन्त किया जा सकता है। भौतिक विजय नवीन-नवीन शत्रुओं को जन्म देती है, शत्रुता की वृद्धि करती है और आखिर घोर पराजय के रूप में परिणत होकर विजेता का मार्मिक उपहास करती है। इस विजय की मृगतृष्णा में पडकर बहुतों ने अशान्ति की ज्वालाएँ प्रज्वलित कीं, अपने को, अपने परिवार को, समग्र देश को परदेशों को संतप्त किया। मगर परिणाम क्या निकला? अशान्ति का विकराल दैत्य ही अपनी भीषण और सर्वग्रासिनी लीला करता नजर आया। इस प्रकार की विजय का परिणाम इसके अतिरिक्त अन्य हो ही क्या सकता है!

मानव की सच्ची विजय आन्तरिक विजय है और आन्तरिक विजय का अर्थ है—राग, द्वेष और मोह आदि आत्मिक विकारों को जीतना और उनके चगुल से आत्मा को मुक्त कर लेना। आत्मा अनादि काल से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन आठ कर्म शत्रुओं के अधीन हो रही है। इन्हीं के प्रभाव से आत्मा मे रागादि विकार उत्पन्न होते हैं और जब रागादि विकार उत्पन्न होते हैं तो फिर नये सिरे से

ज्ञानावरण आदि कर्मों का बन्ध होता है। इस प्रकार बीज और वृक्ष की भांति यह कार्यकारण भाव अनादि से चल रहा है। इस परम्परा को समाप्त कर देना ही सच्ची विजय है, आन्तरिक और आध्यात्मिक विजय है।

आध्यात्मिक विजय की विशेषता इस बात मे है कि इस विजय के पश्चात् कभी पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ता। यह अन्तिम, स्थायी और सब प्रकार से कल्याणकारी होती है। इस विजय से कोई शत्रु रह ही नहीं जाता। अतएव मनुष्य मात्र का यही परम कर्त्तव्य है कि वह इस प्रकार की विजय प्राप्त करने का ही प्रयत्न करे और इस उत्तम भव की चरम सफलता प्राप्त करे। अगर कर्मशत्रुओं को नष्ट करने के लिए पूरी तरह पराक्रम किया तो वे सदा के लिए दूर हो जाएंगे और आत्मा को अक्षय आनन्द की उपलब्धि होगी।

मिथिला के राजा नमि के शरीर में दाहज्वर उत्पन्न होगया। सम्पूर्ण शरीर में जलन होने लगी। राज वैद्यों ने सोच-विचार कर कहा—महाराज के शरीर पर बावन चन्दन का लेपन किया जाय। तब रानियां अपने हाथों से चन्दन घिसने लगीं। चन्दन घिसते समय, हाथों मे पहनी हुई चूड़ियों के टकराने से खन-खन की आवाज होने लगी। वह खन खनाहट राजा नमि को अत्यन्त दुस्सह हुई। तब राजा ने कहा—यह आवाज मुझे सहन नहीं हो रही है। इसे बंद करो।

राजा की बात रानियों के कानों मे पडी। उन्होंने सोचा जिस आवाज से पतिदेव को कष्ट होता है, उसे बंद कर देना ही उचित है। हम उनके कष्ट को कम करने का प्रयत्न कर रही हैं, ऐसी स्थिति में उसे बढ़ाने का कारण तो नहीं ही उपस्थित करना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर उन्होंने सौभाग्य चिह्न के रूप में एक-एक चूडी एक-एक हाथ मे रख ली और शेष चूड़ियां उतार कर रख दीं। फिर चन्दन घिसने का कार्य आरम्भ कर दिया।

एकदम शान्ति और निस्तब्धता छा गई। तब राजा नमि ने पूछा— रानियों! क्या तुम सबने चन्दन घिसना बंद कर दिया? रानियों ने उत्तर दिया - नहीं महाराज, चन्दन बराबर घिसा जा रहा है, सिर्फ ज्यादा चूड़ियां उतार कर रख दी है, एक-एक चूड़ी रहने दी है।

रानियों के शब्द साधारण थे, किन्तु जब अवसर का परिपाक होता है और उपादान की प्रबलता होती है तो सामान्य निमित्त भी महत्त्वपूर्ण बन जाता है। रानियों के सामान्य उत्तर को सुनकर नमि राजा की परिणाम-धारा एक नूतन दिशा की ओर मुड गई। चित्त में जो विचार अब तक कभी न आया था, अचानक आगया। राजा ने सोचा—जब चूडियां अनेक थीं और उनका सयोग था, तब तक टक्कर थी और अशान्ति थी। अब सयोग के हटते ही टक्कर जाती रही और शान्ति का आभास होने लगा। शोरगुल बंद हो गया। सचमुच ससार की समस्त अशान्ति का मूल सयोग ही है। सयोग की बदौलत ही यह जीव दु:खों और अशान्ति का पात्र बन रहा है।

*सयोगोर्जाव मूलाए, दुक्खाएत परम्परा।*

और इसीलिए साधुता की पहली शर्त सयोग त्याग है। 'सजोगा विप्पमुक्कस्स' यह शास्त्र की उद्घोषणा है। एक के साथ दूसरे का मिलना संयोग कहलाता है। आत्मा अपने स्वरूप से शुद्ध है, निरालिम है, एकाकी है, परन्तु अनादि काल से पर-पदार्थों के

साथ इसका सयोग हो रहा है। यही सयोग आत्मा के समस्त संकटों का बीज है। कर्मों का संयोग, शरीर का संयोग, इन्द्रियों का सयोग और जन-धन-भवन आदि का सयोग ही इसकी दुर्गति का कारण है। जिस दिन इस सयोग का अन्त आ जाएगा, उसी दिन आत्मा सिद्ध, बुद्ध एव सुविशुद्ध होकर अपने वास्तविक स्वरूप मे आ जाएगा और समस्त दु खों का अन्त हो जाएगा। उसी समय इस आत्मा को अखण्ड और अक्षय शान्ति की प्राप्ति होगी।

राजा ने पुन विचार किया—आत्मा अकेली ही आती और अकेली ही जाती है। न साथ में ससार का वैभव लाई थी, न ले जाएगी। इस सत्य से मनुष्य मात्र परिचित है फिर भी आश्चर्य की बात है कि मोह का जबर्दस्त पर्दा उसके नेत्र नहीं खुलने देता। मैं क्या बांध कर लाया था? मगर आज मैं मानता हूँ कि मेरा लम्बा-चौड़ा राज्य है, नौकर-चाकर हैं, दास-दासिया हैं, अन्त पुर है, चतुरगी विशाल सेना है। मगर क्या यह सब वस्तुएँ सदा मेरा साथ दे सकेंगी? नहीं। तो फिर मेरी कैसे कहलाई? निश्चय ही ये सब और हैं तथा मैं और हूँ।

राजा नमि इस प्रकार एकत्व भावना की गहराई में निमग्न हो गये। परिणामों मे विशुद्धता आई, लेश्या शुद्ध हुई और मतिज्ञाना-वरण कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम हुआ। इससे उन्हें जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उन्होंने अपने पूर्वभव को जान लिया।

ज्ञान प्राप्त होते ही उन्हें अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। उन्होंने 'संजोगा विप्पमुक्क' अर्थात् साधु बनने का निश्चय कर लिया। ससार से विरक्त होकर, पुत्र को राज्य का भार सौंप कर स्वयं अशोक वाटिका में साधु बनने को चल पड़े। वह अशोक वाटिका मे बैठे

चिन्तन मग्न थे कि उसी समय ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र वैराग्य की परीक्षा लेने आ गये। इन्द्र ने अनेक प्रश्न किये। जिनमें से एक का आशय यह है कि क्षत्रिय राजा का प्रथम कर्त्तव्य अपने शत्रुओं को पराजित और परत करना है। अतएव पहले आप अपने शत्रुओं को दबाओ और फिर साधु बनने का विचार करो। यही आपके लिए उचित है।

नमि राजा की आत्मा सम्यग्ज्ञान के आलोक से आलोकित हो उठी थी। अतएव वे बोले—

*जो सहस्स सहस्साण, संगामे दुज्जए जिणे।*
*एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमोजओ॥*

उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय ६ वाकी ३४ गाथा

एक ओर लाखों शत्रुओं के दांत खट्टे कर देने वाला कोई वासुदेव सरीखा महान् और अजेय शूरवीर योद्धा है और दूसरी ओर अकेली अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाला आत्मविजेता है। इन दोनों की विजय मे से किसकी विजय महान् है? कौन विजेता अधिक प्रशसनीय है? ज्ञानी जन कहते हैं-आत्मविजेता की विजय महान् है, प्रशसनीय है। आत्मविजय परम विजय है और चरम विजय है, क्योंकि उसके बाद फिर कोई विजय प्राप्त करना शेष नहीं रहता। लाखों योद्धाओं को पराजित कर देना सच्ची विजय नहीं है, क्योंकि वह विजय पराजय के गड्ढे में गिराने वाली है, आत्मा के अध. पतन का कारण है। अतएव महापुरुषों की घोषणा है कि—

*अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ।*
*अप्पणा चेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए॥*

उत्तराध्ययन सूत्र ॥ अ. ६ गाथा ३५ ॥

एक मनुष्य ऐसा है जो अपनी आत्मा के शत्रुओं के साथ युद्ध करता है और उसका यह आध्यात्मिक युद्ध बाह्य युद्ध से कहीं अधिक जबर्दस्त है। बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाने वाली विजय अस्थायी होती है। जब उससे भी अधिक प्रबल योद्धा सामने आ जाता है तो उसकी विजय पराजय के रूप में परिणत होजाती है। ऐसा न हुआ तो भी उस विजेता को एक दिन मरण-शरण होना ही पडता है। उस समय विजय से प्राप्त समस्त साम्राज्य और वैभव को त्याग कर ही उसे परलोक के बीहड़ मार्ग पर जाना पड़ता है। किंतु आत्मिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाने वाली विजय में ऐसी बुराई नहीं। वह शाश्वत और सच्ची विजय है। अतएव ज्ञानीजन कहते हैं—भाई, तू युद्ध करना चाहता है तो आत्मा के साथ ही कर, बाहरी युद्ध से तेरा क्या भला होने वाला है। अरे, अपनी आत्मा से ही आत्मा को जीतकर सुखी बन। यही सुख प्राप्ति का राजमार्ग है।

फिर कहा गया है —

*पंचिदियाणी कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।*
*दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं॥*

उ० सूत्र० अ० ६ गाथा ॥ ३६ ॥

वे आत्मा के शत्रु कौन हैं जिन पर विजय प्राप्त करने से आत्मा को शाश्वत सुख की सम्प्राप्ति होती है ? इस प्रश्न का उत्तर यहां दिया गया है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र यह पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार कषाय तथा मन, इनको जीतना ही आत्म विजय है और जिसने आत्मा को जीत लिया उसने सभी को जीत लिया—वह विश्व विजयी होगया, त्रिलोकीनाथ का महान् गौरव उसे प्राप्त होगया!

मगर इस सच्ची विजय की ओर किसका ध्यान जाता है ? जगत के अधिकांश जीव बाह्य विजय प्राप्त करने में ही संलग्न हैं और अत में बुरी तरह पराजित होते हैं।

आपने सिकन्दर बादशाह के विषय में सुना होगा, जिसने अनेक देशों को जीत कर अपने अधीन किया था। एक बार उसने सिंध प्रदेश पर अधिकार करने का इरादा किया। तब पहले वह अपने गुरु के पास गया और नमस्कार करके बोला—आपकी आज्ञा हो तो सिन्ध पर विजय प्राप्त करने के लिये जाऊ।

सिकन्दर का गुरु समझदार था और उसने समझ लिया कि इस समय यह भावावेष में है। कदाचित् मैंने जाने के लिये इंकार किया तो भी मानने वाला नहीं है। मगर इसे रास्ते पर तो लाना ही है। तब सोच विचार कर उसने कहा तुम सिंध पर विजय करने के लिये जाना चाहते हो सो ठीक है, किंतु एक काम अवश्य करना। लौटते समय किसी जैन साधु को अवश्य साथ लेते आना।

सिकन्दर ने गुरु का आदेश शिरोधार्य किया और आशीर्वाद लेकर विशाल सेना के साथ सिध की ओर कूच कर दिया। घमासान युद्ध के पश्चात उसने सिंध पर विजय प्राप्त की। सम्पति लूटी। जब वापिस लौटने लगा तो उसे गुरु के आदेश का स्मरण आया। सोचा-अगर गुरु का काम नहीं किया तो उन्हें मुंह कैसे दिखलाऊंगा ? उनके आदेश का पालन अवश्य करना ही चाहिये।

तो सिकन्दर ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया—इस देश में जहां कहीं जैन साधु मिले, उन्हें मेरे पास ले कर आओ। अगर वे आने से इंकार करें तो कह देना सिकन्दर तुम्हें बुला रहा है।

आज्ञा होते ही सिपाही साधुओं की तलाश में निकले। तलाश करते करते एक स्थान पर उन्हें ध्यानावस्था में बैठे साधु मिले। सिपाहियों ने सोचा—ध्यानावस्था मे इन्हें छेड़ना उचित नहीं। अतएव थोड़ी देर ठहर जाएं और ध्यान समाप्त होने पर बातचीत करें। यह सोच कर वे वहीं बैठ गये। जब महात्मा का ध्यान पूरा हुआ तो बोले—महाराज, बादशाह सिकन्दर इस देश में आए हुए हैं और आपको बुला रहे हैं।

महात्मा ने उनकी बात सुनकर उत्तर दिया—तुम्हारे सिकन्दर से मुझे क्या लेना देना है? इस दुनिया में बहुत से सिकन्दर हो गये हैं। मुझे नहीं मालूम तुम्हारा सिकन्दर कौनसा है?

सिपाहियों ने कहा—महाराज, जिसने अनेक देशों पर अपनी विजय पताका फहराई है और जिसने बड़े बड़े अभिमानी राजाओं को भी अपने चरणों मे झुकाया है, वह सिकन्दर आपको बुला रहे हैं। ऐसे सिकन्दर दुनिया में बहुत नहीं हुए हैं। हमारे सिकन्दर की शान निराली है।

महात्मा बोले—जो हो, मुझे तुम्हारे सिकन्दर से भी कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी इच्छा वहां जाने की नहीं है। साधु निस्पृह थे। उन्हें ससार संबंधी कोई कामना नहीं थी। अपनी साधना में लीन थे। राजा और रक को समान दृष्टि से देखते थे। जिसके चित्त मे परिग्रह के प्रति ममता नहीं होती, वह परिग्रहवान् की क्यों खुशामद करेगा? उसे दुनिया की झंझटों से मतलब ही क्या हो सकता है? कहा है—

*चाह नहीं चिन्ता नहीं, मनुआ बेपरवाह।*
*जिसको कछु न चाहिये, वो जग शाहशाह॥*

जहां चाह होती है वहीं चिंता होती है। जिसने चाह को समाप्त कर दिया उसे चिंता किस बात की? साधु निरीह थे, निष्काम थे, निश्चित थे। अतएव उन्होंने स्पष्ट कह दिया—होगा कोई सिकन्दर! मुझे उससे मिलने की आवश्यकता नहीं है।

सिकन्दर के सिपाहियों ने सोचा—महात्मा को तंग और नाराज करना ठीक नहीं। कहीं ऐसा न हो कि ये नाराज होकर हमें भस्म कर दें। ऐसा सोच कर वे वापिस लौट गये। उन्होंने जाकर सिकन्दर से कहा—जहापनाह, हम एक जैन साधु के पास गये, मगर वे आने को तैयार नहीं हुए। बोले—इस धराधाम पर बहुतेरे सिकन्दर होगये हैं तुम्हारे सिकन्दर सरीखे। मुझे उनसे कुछ प्रयोजन नहीं। मिलना चाहें तो यहीं आने को कह देना।

सेना और शस्त्रों के घमंड में चूर सिकन्दर ने कहा—साधु की यह मजाल कि आने से इंकार कर दे! जाओ, उसे पकड़ कर ले आओ।

सिपाहियों ने दीनता पूर्वक कहा—अन्नदाता, वे पकड़ने से भी नहीं आते।

सिकन्दर ने सोचा—अगर मैं साधु को लिये बिना ही चला गया तो गुरु महाराज उपालम्भ देंगे। साधु को नाराज कर के ले जाना भी उचित नहीं है। गुरुजी को मेरा ऐसा करना पसंद नहीं आएगा। बेहतर है मैं स्वयं साधु के पास चला जाऊं और मना कर ले आऊं।

वह साधु के पास पहुँचा। उनसे बोला—गुरु महाराज, आप मेरे साथ चलिये। आपको मेरे गुरु ने बुलाया है। मैं वही सिकन्दर आपके सामने अर्ज कर रहा हूँ जिसने सिन्ध पर विजय प्राप्त की है।

तब महात्मा ने कहा—ऐ सिकन्दर ! तूने जिस पृथ्वी पर और जिन मनुष्यों पर विजय प्राप्त की है वे तेरे नहीं हो सकते। तेरी विजय स्थायी नहीं है। तू समझता है मैं विजेता हूँ, मगर वास्तव मे तू पराजित है। यह विजय सच्ची विजय नहीं है। सच्ची विजय प्राप्त करना है तो अपनी पाचों इन्द्रियों को जीत, चारों कषायों को जीत और अपने मन को जीत। जब इनको जीत लेगा तभी सच्चा विजेता कहलाएगा। राजन् ! तूने बहुत से देशों को जीता है, लूटा है और अपना राज्य बढाया है और खजाना भर लिया है, मगर यह तो बतला कि इनमे से क्या-क्या अपने साथ ले जायगा ! आखिर मनुष्य मात्र को एक दिन इस दुनिया से कूच करना होता है। तुझे भी विदा होना होगा। उस समय कितना वैभव साथ लेकर जायगा ? क्या तेरी विशाल सेना यमदूतों के साथ लडकर उन्हें भगा देगी और तुझे बचा सकेगी ? इस पृथ्वी पर असख्य पराक्रमी राजा हो चुके हैं और उन्होंने अनेक बार विजय प्राप्त की है। मगर वे सब काल के विकराल गाल में समा गये। आज उनका कहीं नाम-निशान तक नहीं रहा। यह जमीन यहीं की यहीं रही है। किसी के साथ नहीं गई, न जाने वाली है। वह कह रही है—

*पृथ्वी अकनकुमारीयां, वर कीधा कई लाख।*
*मुसलमान तो गड़ गये, हिन्दू हो गए राख॥*

पृथ्वी कहती है—मुझे व्याहने वाले अनेक हुए, फिर भी मैं तो कुआरी की कुआरी ही रही।

राजन् ! तेरा सोचना कुछ और है, मेरा सोचना कुछ और है। मगर सचाई किस ओर है, यह तो विचार करने पर छिप नहीं सकता। केवल दृष्टि बदलने की आवश्यकता है। सही दृष्टिकोण से

देखने पर सभी प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं। मेरा कहना मानो और दूसरों को सताना छोड़ो। परलोक जाना है, जाना ही पडेगा। कुछ वहां के लिए भी सामान जुटा लो। यहां की सामग्री में से एक भी कण वहा जाने वाला नहीं है। वह दुनिया नये सिरे से बसानी पडेगी और साथ में जो पुण्य-पाप ले जाओगे, उसी के आधार पर वह बसेगी। अतएव मेरा तुम्हें यही सदेश है कि इन्द्रियों को, कषायों को और मन को जीतने का प्रयत्न करो। विश्वविजय की बात छोड़ो और स्वविजय का सग्राम छेड़ो। स्व० विजय प्राप्त कर लेना ही विश्व विजय का एक मात्र मार्ग है।

महात्मा का उपदेश सिकन्दर के मन में बैठ गया। उसने हमेशा के लिए युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ली और अपने देश की ओर प्रस्थान कर दिया।

वैष्णव समाज में एक दोहा प्रचलित है—

*राम नाम सब ही कहे, दशरथ कहे न कोय।*
*एक बार दशरथ कहे, कोडयज्ञ फल होय॥*

अर्थात् दुनिया राम का नाम तो लेती है, मगर दशरथ का राम के पिता का नाम नहीं लेती। अगर एक बार भी दशरथ का नाम ले लिया जाय तो राम-नाम से करोड गुना फल प्राप्त होता है। यदि इसमें थोडा-सा परिवर्तन कर दिया जाय और वह यह है कि— राम नाम सब ही कहे, दशरथ करे न कोय, तो बात अधिक सगत हो जाती है। अर्थात यदि कोई दस चीजों को रद्द कर दे अर्थात त्याग दे और फिर राम का नाम ले तो उसे करोड गुने फल की प्राप्ति होगी। वह दस चीजें वही हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है—पाच इन्द्रिया, चार कषाय और मन।

लोक में कहावत प्रचलित है—'नौ नकद तेरा उधार' अर्थात् पांच इन्द्रियों और चार कषायों को रोक लेगा तो तेरा उद्धार हो जाएगा।

नाथ सम्प्रदाय मे कहते है—'नौ नाथ चौरासी सिद्ध।' अर्थात् यदि तू नौ चीजों को नाथ लेगा अर्थात वशीभूत कर लेगा तो चौरासी के चक्कर से निकल कर सिद्ध हो जाएगा–चौरासी सिद्ध हो जाएगी।

आशय यह है कि इन दस चीजों को जीतने पर ही सच्ची विजय प्राप्त होती है। ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि इन सबका नेता मन है। मन के द्वारा ही इन्द्रियां सचालित होती है। अतएव अगर मन को जीत लिया जाय तो शेष नौ को जीतने में कुछ भी कठिनाई नहीं रह जाती। मगर मन को जीतना हँसी खेल नहीं, बहुत कठिन है।

एक मन भारी पदार्थों को तोलने के काम आता है और वह चालीस सेर का होता है। एक शेर जगल में रहता है और उसके चार पाव होते हैं और एक सेर के भी चार पाव होते हैं। जब जगल में रहने वाले चार पाव वाले शेर को भी जीतना मुश्किल होता है तो १६० पाव वाले मन को जीतना कितना कठिन न होगा !

एक शेर को जीतने के लिए कितना परिश्रम और जोखिम उठाना पड़ता है ! शेर की मांद के पास कई दिन पहले मचान बनाना पड़ता है और शेर को लालच देने के लिए बकरा भी बांधना पड़ता है। कई दिन ऐसा करने के बाद वहा एक पींजरा रख दिया जाता है और उसके भीतर बकरा बांध दिया जाता है। जब शेर अपने शिकार की तलाश में निकलता है और उसे बकरे की गध आती है तो वह उसी ओर जाता है और पींजरे में बकरे को देख कर निर्भय

होकर उसमें घुस जाता है। जब वह उसे मार कर खाने लगता है, उसी समय छिपे हुए आदमी, ऊपर से ही पींजरे को बंद कर देते हैं और शेर पकड में आ जाता है वह या तो प्राणों से हाथ धो बैठता है या चिडियाघर के क़ैदखाने में अपना जीवन समाप्त करता है।

इतने परिश्रम और आयोजन के बाद शेर तो काबू में कर भी लिया जाता है, किन्तु जो चालीस सेर वाला एक मन है, उसे कब्जे में करना अत्यन्त ही कठिन है।

तात्पर्य यह है कि मन बड़ा ही जबर्दस्त है और इसको जीतना सरल नहीं है। इसे जीतने के लिए कई जन्मों में साधना करनी पड़ती है। वह बड़ा ही चंचल है। कहते हैं–'छिन में कोस हजार' अर्थात् अभी यहां है तो क्षण भर में न जाने कहां से कहां जा पहुँचता है। कठिनाई यह है कि ज्यों-ज्यों उसे रोकने का प्रयत्न किया जाता है, त्यों-त्यों वह उलटा गतिशील होता है। वह आत्मा को सदैव धोखा देता रहता है। बडे-बडे योगी भी उससे हार मान बैठते हैं। मगर यह न समझिए कि उसे जीतना सर्वथा असंभव है। मन बड़ा सामर्थ्यवान् है तो आत्मा उससे भी अधिक शक्ति सम्पन्न है। आखिर तो उसका आधार और स्वामी आत्मा ही है। जब आत्मा मन पर नियंत्रण स्थापित करने का पूर्ण संकल्प कर लेता है और उसके लिए उद्योगशील हो जाता है तो अवश्य उसे नियंत्रित और वशीभूत कर सकता है।

मन पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् इन्द्रियां स्वयं ही वशीभूत हो जाती हैं। अतएव सर्व प्रथम मन को ही जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीतने का प्रधान उपाय ध्यान है। ध्यान का

अर्थ है-मन को किसी भी प्रशस्त वस्तु पर एकाग्र करना। ध्यान में आसन का कोई नियम नहीं है। जिस आसन से बैठने में सुविधा हो उसी आसन का प्रयोग किया जा सकता है, मगर शरीर को स्थिर रखना चाहिए। मौन धारण करना भी अनिवार्य है, क्योंकि वार्तालाप के समय चित्त स्थिर नहीं रह सकता। जैसे-जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाएगा, मन की वृत्ति बदलती ही जाएगी और जब चित्तवृत्ति बदलती रहेगी तो मन एकाग्र नहीं होगा।

ध्यान चार प्रकार के हैं—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पाप बन्ध के कारण हैं, अतएव परिवर्जनीय है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान उपादेय हैं। यह दोनों ध्यान आत्म शुद्धि के कारण हैं।

योगी जनों का कथन है कि ध्यान में मन, वचन और काय रूप तीनों योगों को स्थिर करना चाहिए। जब तीनों में पूर्ण स्थिरता आ जाती है तभी उत्कृष्ट ध्यान होता है। मगर यह स्थिति शीघ्र नहीं आ सकती। शुक्ल ध्यान के चौथे भेद मे पूर्ण एकाग्रता आती है, क्योंकि वहा अयोगी अवस्था होने से आत्म प्रदेश एकदम निश्चल हो जाते हैं। ध्यान में पूर्णता आते ही निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है यह ध्यान की आदर्श स्थिति है। इससे पहले ध्यान में जितनी-जितनी चचलता रहती है, उतनी ही उसमे त्रुटि समझना चाहिए।

स्थूल रूप से वचन और काय को स्थिर करना उतना कठिन नहीं, मगर मन तो बिना लगाम का घोड़ा है। इसे सतत् प्रयास से ही वश में किया जाता है। केशी स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् गोतम ने कहा था—

*मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।*
*तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं ॥*

उत्तराध्ययन अ० २३ गाथा ५८

यह मन दुष्ट अश्व है, जो बड़ा साहसी और उद्दण्ड है। इसे मैं धर्म शिक्षा की लगाम से वश में करता हूँ।

गीता में भी मन को बलवान् और जबर्दस्त बतलाया गया है और अभ्यास तथा वैराग्य से उसका वश में होना कहा गया है। जब तक सांसारिक पदार्थों के प्रति अनुराग विद्यमान है, तब तक मनोविजय की कोई संभावना नहीं की जा सकती।

जहां तक संसार से आपका सम्बन्ध ६३ के अंक जैसा है वहां तक वैराग्य कैसे आ सकता है ? वैराग्य का आविर्भाव तो तभी होगा जब आपका संसार और संसार के पदार्थों से ३६ के अंक जैसा सम्बन्ध होगा, अर्थात् जब दुनिया के बड़े से बड़े वैभव से भी आप विमुख ही रह सकेंगे।

महापुरुषों ने मनोविजय के उपाय बतला दिये हैं और मैंने आपको बतला दिये हैं, मगर जान लेने मात्र से ही काम नहीं चलता। उन उपायों को प्रगाढ़ श्रद्धा और प्रबल अध्यवसाय से जब काम में लाएँगे, तभी लाभ होगा। अतएव आपको अपने हृदय में वैराग्य भावना विकसित करनी चाहिए। राग भाव को शनैः शनैः कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। राग भावना, जिसे आसक्ति, गृद्धि, मूर्च्छा और ममता आदि कहते हैं, समस्त दुःखों का मूल है। इससे वर्त्तमान जीवन भी दुःखमय बनता है और आगामी जीवन भी। अतएव इसे त्याग कर विरक्ति का आलोक अन्तःकरण में

जागृत करो और फिर उस आलोक मे अभ्यास बढ़ाते चलो। ऐसा करने पर आप अपने मन के दास न रह कर स्वामी बन जाओगे। मन आपका होगा, आप मन के नहीं होंगे। मन आपका चलाया चलेगा।

*मोती भांगो बींधता, मन भांगो कुबोल।*
*मोती मोल मगाय लो, मन नहि आवे मोल॥*

मोती सीप के अन्दर से निकलता है और फिर उसमें छेद किया जाता है। छेद करते कभी-कभी उसके टुकडे हो जाते हैं। मगर टूट जाने के बाद मोती फिर जुड़ता नहीं है। वह तो भस्म बनाने के ही काम आता है।

मन का भी यही हाल है। वह भी फट जाने के बाद मुश्किल से ही मिलता है। ससार मे रहते हुए किसी समय किसी के द्वारा वचन का बाण लग जाता है अथवा कोई अन्य संयोग मिल जाता है और एक बार दिल फट जाता है तो फिर वहा का वहा नहीं आता है। स्वर्गीय पूज्य खूबचन्द्रजी महाराज कभी-कभी एक दृष्टान्त दिया करते थे।

सोने-चादी का धधा करने वाला एक सर्राफ था। उसके पास धन तो प्रचुर था किन्तु लड़का नहीं था। सर्राफ एक दिन दुकान जा रहा था कि सेठानी ने कोई वस्तु लेते आने की फरमाइश की। सेठ ने लेते आने की हां भरी।

सयोगवश उस दिन दुकान सम्बन्धी काम अधिक होने से सेठ दिन भर व्यस्त रहे और सेठानी की फरमाइश को लाना भूल गये। दुकान वद करने का समय हुआ तो जोखिम की पेटी मजदूर के सिर

पर रखवा कर, उसके साथ घर लौट आए। मजदूर अपनी मजदूरी लेकर और पेटी सेठजी के घर उतार कर रवाना होगया। सेठानी ने वह पेटी तिजोरी मे बंद कर दी।

इतना सब हो जाने के पश्चात् सेठानी ने अपनी चीज लाने के विषय मे पूछा। दिन भर व्यस्त रहने के कारण सेठ का दिमाग गर्म हो रहा था। सेठानी की बात सुन कर वह झुंझला उठे और तेजी में आकर बोले—'नहीं लाया!'

प्राय. देखा जाता है कि क्रोध, से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जब एक मनुष्य क्रुद्ध होता है और क्रोध मे बात करता है तो सामने वाले को भी क्रोध आ जाता है। जब सेठ ने क्रोध में आकर उत्तर दिया तो सेठानी के मन पर भी उसका प्रभाव पडा और उसे भी क्रोध आ गया। उसने कहा—नहीं लाये तो न सही! मगर इस प्रकार झिडकते हुए बोलने की क्या आवश्यकता है? मैं उसके बिना मर नहीं जाऊँगी, मगर आवश्यक चीज के लिए आपसे नहीं कहूँगी तो किससे कहूँगी! कोई दूसरा तो लाकर देगा नहीं! फिर इस प्रकार चिढ़ने की क्या आवश्यकता है।

बात बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ जाती है कि फिर संभालना कठिन हो जाता है। जरा-सी चिनकारी बढ़कर दावानल का रूप ग्रहण कर लेती है और हरे-भरे जगल को भस्म कर देती है। जीभ पर अंकुश न रहने से कितना अनर्थ होता है, यह बात आपको समझाने की आवश्यकता नहीं। और क्रोध की अवस्था में सबसे पहले जीभ का अकुश ही हटता है। जीभ निरकुश हो जाती है तो मनुष्य यद्वा तद्वा बोलता है और फिर उसका कुपरिणाम उसे भुगतना पड़ता है। द्रौपदी ने दुर्योधन से एक अनुचित वाक्य कह दिया था—'अन्वे की

सन्तान भी अंधी होती है।' इस वाक्य का कितना भीषण परिणाम निकला, यह किसे मालूम नहीं। महाभारत संग्राम हुआ जिससे इस देश के अधिकांश शूरवीर योद्धा काम आ गये और देश लम्बे समय के लिए जर्जरित होगया।

बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह वार्तालाप के समय अपनी वृत्ति को समतोल रखे, चित्त को स्वस्थ रखे और उसमें आवेश या क्रोध का प्रवेश न होने दें। ऐसा करने से उसकी बात अधिक सबल बनती है और सुनने वाले के चित्त पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। क्रोधावेश मे कही हुई बात न बलवान होती है और न प्रभावोत्पादक ही हो सकती है। क्रोधावेश मनुष्य की दुर्बलता का सूचक है। सत्वशाली पुरुष अपने भीतर इस प्रकार की दुर्बलता का प्रवेश नहीं होने देते।

तो सेठ और सेठानी, दोनों दुर्बलता के शिकार होगये। छोटी सी बात ने बड़ा रूप धारण कर लिया। आप जानते ही हैं कि क्रोध को चाण्डाल की उपमा दी जाती है। जिस घर में चाण्डाल का प्रवेश हो जाता है, उसकी कोई वस्तु पवित्र नहीं रह जाती ऐसा लोग मानते हैं। यह कहा तक ठीक है या नहीं, यह बात दूसरी है, किन्तु इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं कि क्रोध चाण्डाल जिस अन्तःकरण मे प्रविष्ट हो जाता है, उसकी समग्र पवित्रता नष्ट हो जाती है। क्रोधी मनुष्य स्वयं सन्तप्त होता है, जलता है और दूसरों को जलाने में प्रयत्न करता है। वह दूसरों को जलाने में सफल हो अथवा न हो सके, परन्तु स्वयं तो जले बिना रह नहीं सकता।

पति और पत्नि दोनों क्रोध के वशीभूत हो गये और क्रोध की अग्नि में उनका विवेक नष्ट हो गया। वे यद्वा तद्वा बोलने लगे।

उन्होंने अन्त में यहां तक कह दिया—अगर मैं महाजन की सन्तान होऊ तो बोलूंगा ही नहीं।

दोनों एक दूसरे से रूठ कर अपने अपने कमरे में चले गये। रात हुई और बीतने लगी। सेठानी को आज नींद नहीं आ रही थी। बिस्तर पर पड़ी पड़ी सोचने लगी—हाय राम, मेरे माता पिता ने मुझे किसके गले से बांध दिया! मेरी तकदीर कैसी खोटी थी कि मुझे ऐसा आदमी मिला! कोई चीज लाकर देता नहीं और मैं कहती हूँ तो लड़ने झगड़ने पर आमादा हो जाता है।

उधर सेठ भी इसी प्रकार की बातें सोच रहा था—कैसी कर्कशा से पाला पड गया है! जो मन मे आता है, वही बकने लगती है! कैसे हीन कुल की है! जरा सी बात के लिये झगडने लगती है।

इस प्रकार आर्त्तध्यान करते करते दोनों बड़ी देर से सोये तो नींद भी देर से उडी। सेठानी जब सोकर उठी तो देखा कि दिन काफी चढ़ गया है। उसे अपने दैनिक काम काज की चिन्ता हुई। उसने सोचा - लड़ाई हुई तो हुई, मगर दोनों की लडाई मे घर का काम करने कोई तीसरा तो आएगा नहीं। फिर सोचा—घर का मालिक तो अभी उठा ही नहीं। ऐसे कैसे काम चलेगा? किन्तु उठाऊं तो कैसे उठाऊं? रात को नहीं बोलने का निश्चय किया है। उस समय जो शब्द मुंह से निकल गये हैं, वे याद आजाते हैं।

इस प्रकार विचार कर सेठानी अपने आप कुछ गाती है और कहती है—'दिन तो निकल गया कोई हट्टी पर जाए तो।'

सेठानी के गीत से सेठ की आंख खुल गई। देखा, दिन काफी चढ़ गया है, किंतु इसने मुझे सीधी तरह नहीं जगाया है। चार पहर ही मे मैं 'कोई' होगया। मगर सेठ को दुकान जाना था। अतएव

उसने आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर सेठानी के ही लहजे में कहा—'जाने वाला जाये सदूक कोई दे जाए तो।'

सेठानी ने यह सुनकर तिजोरी खोल कर सदूक निकाल ली और रख दी। फिर बोली सदूक तो तैयार है कोई जाने वाला जाए तो।'

सेठ ने सोचा—दिन बहुत चढ़ गया है और दुकान दूर है। जाने के बाद आना नहीं होगा। अतएव भोजन करके ही जाना उचित होगा। यह सोच उसने कहा -'जाने वाला जाये, कोई भोजन देय बनाए तो।'

यह सुनकर सेठानी ने फौरन भोजन तैयार कर दिया। इसी बीच वह स्नानादि से निवृत्त हो गया। तभी सेठानी ने आवाज लगाई—'भोजन तो तैयार है, कोई खाने वाला खाए तो।'

सेठ भोजन के लिये तैयार ही था, मगर उसने कहा—'खाना वाला खाए, कोई हाथ पकड़ ले जाए तो।'

यह सुनते ही सेठानी को क्रोध आगया। उसने सोचा मैं हाथ पकड़ूं ? कभी नहीं। और फिर बोली—'मेरे तो गर्ज नहीं चाहे कोई भूखा जाए तो।'

आशय यह है कि जब मन फट जाता है चित्त विमुख होजाता है तो ऐसी बातें पैदा होती हैं। गृहस्थी में ऐसी अनबन होती ही रहती है और पति पत्नि के विग्रह के बाद सधि भी हो जाती है, किन्तु जब मन संसार से उपरत-विरत हो जाता है और विषय विष के समान तथा भोग भुजग के समान प्रतीत होने लगते हैं, और

अन्त.करण मे वैराग्य की प्रबलतर तरगें तरगित होने लगती है, तो फिर ससार के प्रति राग भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी कारण गीता ने भी यही बतलाया कि पहले वैराग्य भाव लाओ और फिर अभ्यास करो। वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात अभ्यास करते करते मन कब्जे मे आजाता है तो केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और फिर मोक्ष प्राप्ति मे किसी प्रकार की बाधा नहीं रहती।

तो आज का प्रधान विषय यह है कि भगवान के नाम का सहारा लेने से लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार की विजय प्राप्त होती है। जैसे सूर्य की किरणें फैलने पर अन्धकार विनष्ट होजाता है, उसी प्रकार भगवान के नाम का जाप करने से युद्ध जनित भय विनष्ट होजाता है। अन्तरतर मे विलीन अज्ञानान्धकार दूर होजाता है और दिव्य ज्ञान की प्रखर रश्मियां आलोकित हो उठती हैं। यद्यपि भगवान के नाम स्मरण से द्रव्य विजय की भी प्राप्ति होती है तथापि वह नामस्मरण का तुच्छ फल है। भगवत स्मरण का वास्तविक फल तो उस भाव विजय को प्राप्त करना है, जिसके बाद कभी पराजय पास भी नहीं फटक सकती। इस महान् और एकान्त मगलमय विजय के सामने द्रव्य विजय का कुछ भी मूल्य नहीं है। खेती करने वाला कृषक धान्य प्राप्ति के उद्देश्य से खेती करता है पर खाखला तो उसे अनायास ही मिल जाता है। अगर कोई कृषक खाखले के लिये खेती करे तो उसे मूर्ख ही समझा जाएगा। इसी प्रकार आपको आध्यात्मिक विजय के लिये भगवान् का परम पावन नाम स्मरण करना चाहिये। फिर लौकिक विजय, जो खाखले के समान है, अनायास ही प्राप्त हो जाएगी।

कुछ शकाशील लोग कहते हैं—भगवान के नाम मे ऐसा क्या प्रभाव है कि उससे इतना महान फल प्राप्त होजाता है ? किन्तु यह

विषय ऐसा है कि श्रद्धा के अभाव में समझ मे नहीं आ सकता। प्रभु के नाम का चमत्कार, देखना है तो शास्त्रों के पन्ने पलट कर देखिये। आपको हजारों घटनाएं ऐसी मिलेंगी जिनसे इस सत्य की पुष्टि होती है। अगर उन शास्त्रों पर भी किसी को विश्वास नहीं है तो यही कहना पड़ेगा कि उसका रोग असाध्य है। श्रद्धा प्रगाढ़ विश्वास के बिना नाम महात्म्य के चमत्कार की परीक्षा भी नहीं की जा सकती। मगर लोग उचित तरीके से परीक्षा भी नहीं करना चाहते और परीक्षा किये बिना ही अपने विचार जैसे तैसे बना लेते हैं।

तो आपको भाव विजय प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्न शील होना चाहिये। अन्दर घुसे हुए शत्रुओं को जीते बिना मनुष्य को किस प्रकार शान्ति प्राप्त हो सकती है? कैसे उसके दुःखों और संकटों का अन्त आ सकता है? जिसके अन्दर अंधेरा है, उसके लिये बाह्य प्रकाश क्या काम आएगा?

सच्ची आत्म विजय प्राप्त करने के लिए भगवान् ने मार्ग प्रदर्शित किया है और अनेक प्रकार के साधनों का निर्देश किया है यद्यपि उन साधनों का अभ्यास और प्रयोग सदैव करते रहना चाहिए, तथापि उनका विशेष रूप से अभ्यास करने के लिए एक महान् पर्व का आयोजन किया गया है। वह पर्व पर्युषण पर्व के नाम से जैन जगत् मे प्रख्यात और सर्वमान्य है।

ग्रीष्म के तीव्र सन्ताप का उपशमन करने के लिए नैसर्गिक विधान के अनुसार वर्षा ऋतु का आगमन होता है। वर्षा का आगमन होते ही झुलसी हुई समस्त प्रकृति शीतल हो जाती है। धरा शस्य-श्यामला हो जाती है। सर्वत्र अनूठी हरीतिया ही हरीतिया दृष्टिगोचर

होने लगती है, मानों किसी ने हरा चादर बिछा दिया हो। प्राणी जगत् शान्ति की सास लेता है और उसमें नवीन जीवन और नूतन स्फूर्ति प्रकट होती है। इस उल्लास के समय में जनता के मस्तक पर काम-काज का बोझ भी कम हो जाता है और कुछ दिनों के लिए अवकाश मिल जाती है ऐसे समय मे पर्वराज का प्रतीत आगमन होता है।

इस मौसिम की एक बड़ी विशेषता और है। वर्षा काल के चार महीनों में साधु-सन्तों का एक ही स्थान पर निवास होता है। जब वे एक स्थान पर रहेंगे तो वहा की जनता सत्संग करके, घड़ी दो घड़ी धर्म की चर्चा करेगी। धर्म शास्त्र की शिक्षाओं को सुनेगी, अपने धार्मिक ज्ञान की वृद्धि करेगी, धर्म-क्रिया में समय लगाएगी, आत्मा के अभ्युत्थान का विचार करेगी और तपश्चर्या करके आत्म-शुद्धि करेगी। इस प्रकार चार मास विशेष रूप से धर्म ध्यान के लिए उपयुक्त हैं; मगर उनमें भी महापर्व पर्युषण के आठ दिवस तो खास तौर से आध्यात्मिक साधना के लिए निर्दिष्ट हैं।

संसार में समय-समय पर नाना प्रकार के त्यौहार मनाये जाते हैं, पर वे ऐहिक आनन्द की प्राप्ति के उद्देश्य से ही मनाये जाते हैं। उन त्यौहारों में इन्द्रियों का पोषण किया जाता है। लोग स्नान करके नवीन वस्त्राभूषण धारण करते हैं। सरस पकवान खाते हैं और अनेक प्रकार से मनोरञ्जन करते हैं। यह सब लौकिक पर्व कहलाते हैं और इनसे कोई आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति नहीं होती। यही नहा, किन्तु उलटा कर्म बन्ध होता है। इनसे विपरीत, पर्युषण पर्व में यथा शक्ति भोगोपभोगों का परित्याग किया जाता है। आत्मा को पुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। आत्म निरीक्षण होता है, तपश्चरण होता है और भविष्य के लिए अधिक धर्ममय जीवन

बनाने का सकल्प सबल किया जाता है। अतएव यह लोकोत्तर पर्व कहलाता है। यह पर्व आत्मा पर आत्मा की विजय का पर्व है और ईश्वरत्व की प्राप्ति के प्रयास का स्वर्णमय समय है। इस पर्व की महिमा असीम है। आप अपने भाग्य की सराहना कीजिए कि इसकी आराधना का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ है।

कल से ही पर्युषण महापर्व प्रारम्भ होरहा है। सब भाइयों और बहिनों को इससे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। कम से कम दो घड़ी व्यापार बद रखना और सावद्य योगों का त्याग करना चाहिए। दान, शील, तप और भावना रूप चतुर्विध धर्म की आराधना करनी चाहिए। जिनेन्द्र भगवान् की कल्याणकारिणी वाणी को श्रवण करना चाहिए। इस भूखी आत्मा को खुराक देने के यही दिन हैं।

यह आत्मा चिरकाल से बीमार चली आ रही है और अनेक प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु.खों से ग्रस्त है। धर्म रूपी औषध के सेवन से ही इसे स्वस्थता की प्राप्ति हो सकती है। धर्मौषध के सेवन का यही सुनहरा अवसर है। इसे यों ही न जाने देना।

इन आठ दिनों में आपको इतनी धार्मिक शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए कि वह वाद में भी काम आ सके। अपनी मनोवृत्ति को ऐसा दृढ कर लेना चाहिए कि वह प्रलोभन के अवसर पर सन्मार्ग से च्युत न हो और आप अपने कल्याण के प्रशस्त पथ पर निरन्तर आगे ही आगे प्रयाण करते जाएँ। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जीवन क्षण भगुर है। किसी भी समय इसका अन्त आ सकता है। कौन जाने, अगले वर्ष के पर्युषण पर्व तक यह जीवन टिकेगा या

भगवन ! जिस रण भूमि मे एक दूसरे के रक्त के पिपासु दो राजाओं की सेनाएँ लड रही हों, हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिकों की बहुसख्यक चतुरगी सेना हो, तीखी नोंक वाले भालों से पहाड सरीखे हाथियों का भेदन किया जा रहा हो और उनके रुधिर की सरिता प्रवाहित हो रही हो और उस सरिता का वेग इतना तीव्र हो कि उसे पार करना कठिन हो रहा हो, ऐसे भयानक युद्ध में भी जो आपके चरण-कमलों का आश्रय लेते हैं, वे दुर्जय से दुर्जय भी विरोधी पक्ष पर विजय प्राप्त कर लेते है। विजय श्री अनायास ही आकर उनके गले मे वरमाला पहना देती है।

भगवान् ऋषभदेव के नाम का अचिन्त्य माहात्म्य है। वास्तव में वह माहात्म्य इतना दुर्ज्ञेय है कि हमारी मति से अगोचर है। वहां तक हमारी कल्पना भी नहीं पहुँच सकती। जब बुद्धि और कल्पना भी उसे नहीं पकड सकती तो शब्दों की पहुँच तो हो ही कैसे सकती है। शब्दों का दायरा बहुत सकीर्ण है। ऐसी स्थिति में नाम का माहात्म्य साधक का अनुभव ही वास्तविक रूप से समझ सकता है। अगर हम अतीत की ओर दृष्टि दौड़ाएँ तो पता चलेगा कि भगवान के नाम का अविचल श्रद्धा और प्रकृष्ट भक्ति के साथ स्मरण करने का कितना महान् फल होता है ?

तीर्थङ्कर भगवान तपश्चर्या करने के पश्चात् जगत् के जीवों के कल्याण के लिए और उनके अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए प्रवचन का उपदेश करते है। सर्वथा निरीह होने पर भी तीर्थङ्कर नाम कर्म के उदय से उनकी उपदेश देने मे प्रवृत्ति होती है। उस उपदेश के अनुसार गणधर महाराज अग सूत्रों की रचना करते हैं। तत्पश्चात् विशिष्ट श्रुतधर स्थविर सन्त अगों के आधार पर इतर श्रुत-ग्रथों की रचना करते है। आज ३२ सूत्र ऐसे हैं जो स्वत प्रमाण भूत माने जाते हैं।

बत्तीस सूत्रों मे बारह अग प्रधान और मूलभूत है। उनमे से आठवा अग 'अन्तकृद्दशाग' है, जिसे अंतगड सूत्र भी कहते हैं। पर्युषण महापर्व के इन पावन दिनों मे अन्तगड सूत्र के पठन-पाठन की परम्परा प्रचलित है। तदनुसार आपके समक्ष आठ दिन पर्यन्त इसी सूत्र का वाचन और व्याख्यान किया जाएगा।

अन्तगड सूत्र आठ भागों मे विभक्त है। मुनि लाभचन्दजी तीसरे भाग तक का वृत्तान्त आपको सुना चुके हैं। उससे आपको विदित हुआ होगा कि प्रस्तुत सूत्र मे उन महान् और प्रात स्मरणीय महापुरुषों का जीवन वृत्तान्त है, जिन्होंने तपश्चरण के भीषण पथ पर प्रयास किया, आत्म शुद्धि के लिए अनेक प्रकार के कठिन से कठिन सकटों को समभाव से सहन किया, अपनी आत्मा मे वीतराग भाव की अनूठी ज्योति जागृत की, अपने विरोधियों पर भी परम करुणा की शीतल वर्षा की और राग, द्वेष, मोह तथा अज्ञान के सघन आवरणों में लिपटे हुए विश्व के समक्ष मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य और उद्देश्य प्रस्तुत किया। उन महापुरुषों के जीवन हमारे अन्त करण मे नूतन प्रेरणा जागृत करते हैं, अपने लोकोत्तर ध्येय को पूर्ण करने के लिए प्रबल शक्ति प्रदान करते हैं और कठिन से कठिन प्रसग पर एव विकट से विकट सकट के अवसर पर भी प्रशम भाव का परित्याग न करने का आदर्श उपस्थित करते हैं।

अन्तगड सूत्र हमारे सघ के गौरवमय अतीत का भव्य और बहुमूल्य शब्द चित्र है, जिसे देख कर हमारे हृदय श्रद्धा, भक्ति, हर्ष और उल्लास से परिप्लावित हो जाते हैं। भीषण से भीषण उपसर्गों के पागल तूफानों मे भी वे चट्टान के भाति अचल और अटल रहे और ससार के लिए बहुमूल्य उदाहरण बनकर, अपनी साधना को सिद्धि के रूप मे परिणत करके अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और

असीम आनन्द के भाजन बने। आओ, आज इस महान पर्व के प्रथम प्रभात में हम सब अपनी श्रद्धा-भक्ति उन वीतराग परम-पुरुषों के चरणों में समर्पित करें और कृतकृत्य बनें, अपने इस दुर्लभ जीवन को सफल बनावें और उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होकर निर्वाण के भागी बनें।

आज प्रथम गौतमकुमार का वृत्तान्त आपको श्रवण करना है। एक समय रात्रि में धारणी ने सिंह का स्वप्न देखा और सवा नौ मास पूर्ण होने पर शिशु का जन्म हुआ तो उसका गुणनिष्पन्न नाम रक्खा गया। जब विद्या और कला को सीखने योग्य हुआ तो कलाचार्य के पास भेजा गया और वहां रह कर वह ७२ कलाओं का अभ्यास करके कुशल हो गया। युवावस्था में प्रवेश करने पर आठ सुन्दर और सुशिक्षित कन्याओं के साथ उसका विवाह होगया। जो-जो चीजें दहेज में आई, वे सब उन्हें दे दी गई। पांचों इन्द्रियों के भोग भोगते हुए आनन्द पूर्वक उनका समय व्यतीत होने लगा।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ था कि एकदा ग्रामानुग्राम विचरते हुए और भव्य जीवों को आत्म कल्याण का पथ प्रदर्शित करते हुए बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्ट नेमि का पदार्पण हुआ। देवों द्वारा समवसरण की रचना की गई। भगवान् के शुभागमन की सूचना पाकर वासुदेव श्रीकृष्ण सजधज के साथ उन्हें वन्दन करने और धर्म कथा श्रवण करने के लिए पहुँचे। नगर की अधिकांश जनता भी पहुँची। चारों निकायों के देवगण और देवियां भी समवसरण में पहुँचीं।

नगर में अपूर्व चहल-पहल थी। भगवान के आगमन के कारण जनता के हृदय में अभूतपूर्व उल्लास था। जहां देखो, वहीं

भगवान् की चर्चा थी। लोगों की टोलियों की टोलिया उसी ओर जा रही थीं, जहां भगवान विराजमान थे। गौतमकुमार ने यह देखा तो जानने का कुतूहल हुआ कि आज यह चहल-पहल किस कारण से हो रही है ? किसी से पूछा—भाई, आज सब लोग कहां जा रहे हैं ? उसने बतलाया – आज त्रिलोकीनाथ विश्ववन्द्य, तरण तारण भगवान अरिष्ट नेमि का पदार्पण हुआ है। लोग भगवान की वाणी सुनने और वन्दन करने जा रहे हैं।

इस प्रकार भगवान के शुभागमन का शुभ वृत्तान्त जानकर गौतमकुमार को अतीव हर्ष हुआ। वे वस्त्राभरणों से सुसज्जित होकर सवारी मे बैठ कर भगवान् के दर्शनार्थ गये। भगवान् के दर्शन करके और उन्हे वन्दना नमस्कार करके, धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए बैठ गये। यथा समय प्रभु ने धर्मोपदेश दिया। भगवान की वाणी के ओज और माधुर्य का क्या कहना है। सुधास्त्रविणी वह कल्याणी वाणी जिसके श्रवण गोचर हुई वह धन्य धन्य होगया। श्रोताओं का हृदय आनन्द से व्याप्त हो गया और उनमे वैराग्य एवं प्रशम भाव की सरिता बहने लगी।

जब उपदेश समाप्त हुआ तो सब लोग भगवान के असाधारण और अनुपम गुणों का स्तवन और नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को लौट गये। तत्पश्चात् गौतमकुमार भगवान के निकट पहुँचे और यथोचित अभिवादन करके कहने लगे—'भगवन् ! आपके धर्मोपदेश को सुनकर मुझे इस ससार से वैराग्य उत्पन्न हुआ है। अत. अपने माता-पिता से पूछ कर आपका चरण-शरण ग्रहण करना चाहता हूँ और सयम अगीकार करके आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ।

भगवान ने सहज गम्भीर भाव से उत्तर दिया—'अहासुह देवाणुप्पिया ! अर्थात् हे देवों के वल्लभ ! जैसा करने से तुम्हें वास्तविक सुख की प्राप्ति हो, वैसा करो।

भगवान पूर्ण वीतराग थे। उनकी आत्मा को शिष्य मोह स्पर्श भी नहीं कर सकता था। जिन्होंने संसार के समस्त उत्कृष्ट वैभव को तृण की तरह त्याग दिया था। बडे से बड़ा साम्राज्य रजकण के समान गिना था और जिनके लिये आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उपादेय न था, उन्हें शिष्य का मोह हो ही कैसे सकता है।

गौतम कुमार भगवान को नमस्कार कर घर लौटे। माता पिता के समक्ष अपनी वैराग्य भावना व्यक्त की और सयम ग्रहण करने की अनुमति मांगी। पहले तो माता पिता ने उन्हें बहुत समझाया बुझाया, सांसारिक सुखों का प्रलोभन दिया और सयम जीवन की कठिनाइयां बतलाकर इरादा बदल देने का प्रयत्न किया, मगर जब देखा कि कुमार का रंग इतना पक्का है कि उतर नहीं सकता, तब इच्छा न होने पर भी स्वीकृति दे दी।

साधु अवस्था अगीकार करने के अनन्तर गौतम मुनि ने स्थविरों से ग्यारह अगों का ज्ञान प्राप्त किया और फिर तपस्या करते करते शरीर क्षीण होगया तो भगवान् की आज्ञा लेकर शत्रुजय पर्वत पर गये। वहा एक मास की सलेखना करके और समस्त कर्मों को तपस्या की अग्नि मे दग्ध करके अनन्त सिद्धि के स्वामी बने।

---

पूज्य श्री लालचन्दजी म० ने जैन धर्म के प्रधान अंग यतना के विषय में कहा है —

*जैन धर्म जतना में कह्यो श्रीजिनवर,*
*जैन बिना फैन हिसा धरम न होय रे।*
*जैन में जनम लीयो महाजन नाम दियो,*
*नीच नीच काम कियो गयो कुल खोय रे।*

*जयणा कीधी सुसल्या की जयणो कीधी परेवा की,*
*जयणा कीधी धर्म रुचि नेमि जिन जोय रे।*
*रिख लालचद कहे जयणा करे धर्म सहु,*
*जयणा बिन जग सहू रीतो गयो खोय रे॥*

वीतराग और सर्वज्ञ तीर्थङ्कर भगवन्तों का जो धर्म है, वही जैन धर्म कहलाता है। जैन धर्म प्राणी मात्र की रक्षा के लिए उपदेश देता है। जहां प्राणी-रक्षा का विधान है, वहीं उस अंश में जैन-धर्म है। जैन धर्म का दूसरा नाम आत्म धर्म है। जहां सिद्धान्त और व्यवहार में भी यतना नहीं है और हिंसा का घोर ताण्डव नृत्य होरहा है वहां धर्म हर्गिज सम्भव नहीं है।

यतना का प्रधान रूप जीव रक्षा है। अपने निमित्त से किसी भी प्राणी का घात न हो और अन्य किसी निमित्त से कोई जीव कष्ट पा रहा हो, सकट ग्रस्त हो, तो उसे यथोचित उपाय से कष्ट एव सकट से मुक्त करना यतना है।

करुणा सम्यक्त्व की एक पहचान है। जिस प्राणी में सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ होगा उसमें करुणा का प्रादुर्भाव अनिवार्य है। करुणा सम्यग्दर्शन के अभाव में भी पाई जा सकती है, मगर करुणा के अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं पाया जा सकता।

विकास की तरतमता होने पर भी साधारणतया प्राणी मात्र मे करुणा वृत्ति देखी जाती है। न केवल मनुष्यों में, वरन् पशुओं में भी यह भावना होती है और कभी-कभी तो उसका खासा विकसित स्वरूप भी उनमे विद्यमान रहता है।

आपने मेघकुमार का नाम सुना होगा। वह पूर्वभव में क्या थे? हाथी के पर्याय मे थे, मगर हाथी के पर्याय में भी उन्होंने करुणा से प्रेरित होकर प्राणी की रक्षा की और उसी करुणा के प्रभाव से श्रेणिक राजा के यहा मेघ कुमार के नाम से उत्पन्न हुए। वे एक भव करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

तो दूसरे लोग सुनकर आश्चर्य करेंगे कि क्या हाथी सरीखा जानवर किसी छोटे प्राणी की रक्षा के खातिर अपनी कुर्बानी कर सकता है? मगर क्यों नहीं! इस दृष्टांत से आपको विदित हो जाएगा कि पशुओं मे भी कभी कभी दया का स्रोत उमड़ पड़ता है और दया देवी उनके हृदय मंदिर मे भी विराजमान रहती है।

घटना यों हुई। जगल मे दावानल धधका हुआ था। वहां रहने वाले समस्त प्राणी मृत्यु के भय से सत्रस्त होकर इधर-उधर प्राणों की रक्षा के लिये दौड़ने लगे। उसी जगल में एक हाथी भी अपनी हथनियों के साथ रहता था। उसने समस्त प्राणियों को अग्नि से प्राण बचाने के लिये भयभीत होकर दौड़ते भागते देखा। वह स्वयं भी बड़ी कठिनाई में पडा। अपने और अपने यूथ की रक्षा करने में उसे बड़ी कठिनाई महसूस हुई। वह दावानल किसी प्रकार शान्त हुआ और उसके प्राण बचे गये। किंतु उसे भविष्यत् की चिंता हुई। उसने मन मे विचार किया—कई वार इस प्रकार का घोर संकट उपस्थित हो जाता है और प्राणों पर सकट के वादल मंडराने लगते हैं। क्यों न इसका प्रतीकार किया जाय?

इस विचार से प्रेरित होकर उसने जगल को चार कोस की दूरी में अपने यूथ की सहायता से साफ किया। अपनी-अपनी सूंडों में पानी ला-ला कर छिड़काव किया। उस जगह की तमाम वनस्पति

उखाड कर दूर फैंक दी। कई वार ऐसा करने से चार कोस का वह गोलाकार क्षेत्र पूरी तरह सफा होगया। वहा अग्नि पहुँचने का कोई भय न रहा।

कुछ समय बीता कि पुन दावानल सुलग उठा और फिर वही परिस्थिति उत्पन्न होगई। मगर अब हाथी की समझदारी के कारण एक सुरक्षित स्थान तैयार होगया था। इधर-उधर से भागते हुए प्राणी उस स्थान मे प्राण बचाने के लिये जमा होने लगे। चार कोस का वह क्षेत्र जगली जानवरों से ठसाठस भर गया। हाथी अपने यूथ के साथ वहां खडा हुआ था।

अचानक हाथी के शरीर में खुजली उत्पन्न हुई और खुजलाने के लिये उसने एक पैर ऊँचा उठाया। पैर उठाने से कुछ जगह खाली हुई और उस जगह एक खरगोश, जिसे ठहरने को स्थान नहीं मिल रहा था, उस जगह आ बैठा। हाथी ने ज्यों ही पैर टेकना चाहा, उसे खरगोश दिखाई दिया। नजर पडते ही उसे विचार आया कि अगर मैंने पैर जमीन पर टेक दिया तो इस लघुकाय सुकोमल प्राणी का कचूमर निकल जाएगा। यह प्राणों को बचाने के लिये इस जगह आया है, पर इस जगह आने से इसके प्राण विनष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार विचार करके उसे करुणा उत्पन्न हुई और उसने जमीन पर पैर नहीं रखा अधर ही रखा।

तीन दिन व्यतीत होगये। भारी भरकम शरीर वाले हाथी को तीन पैरों के सहारे तीन दिन तक खडे रहने मे कितनी कठिनाई हुई होगी, यह समझना सरल है। तत्पश्चात जब दावानल शान्त हो गया और वहां के पशु उदर पोषण के लिए इधर उधर चले गए तो हाथी ने अपना पैर धरती पर टेकना चाहा। मगर तीन दिन तक

निरन्तर एक ही स्थिति में रहने के कारण वह अकड चुका था। वह नीचा नहीं हुआ और हाथी स्वयं नीचे गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात उसकी मृत्यु होगई। मगर करुणा भाव के कारण मगधाधिपति सम्राट श्रेणिक के यहां राजकुमार के रूप मे उसका जन्म हुआ। इस अहिंसा के प्रभाव से उसका उद्धार होगया। यथाविधि संयम पालन करके इस समय वह देवलोक में स्वर्गीय सुखों का उपभोग कर रहे हैं और एक भव करके मुक्ति प्राप्त करेंगे।

दूसरा उदाहरण राजा मेघरथ का आपके सामने है। उन्होंने एक पक्षी के प्राणों की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया और शरणागत की रक्षा की।

बात दर असल यों हुई कि एक बार इन्द्र ने अपनी सभा मे राजा मेघरथ के दया भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वह प्रशसा दो देवों को सह्य न हो सकी। वे बाज और कबूतर का रूप धारण करके मर्त्यलोक में आए। कबूतर आकर उनकी गोद में गिर पड़ा। उस समय मेघरथ पोषधशाला में धर्म ध्यान कर रहे थे। अकस्मात् पक्षी के पडते ही उन्होंने ध्यान समाप्त किया और उसे उठा लिया। वह अत्यन्त घबराया हुआ और भय से कांपता हुआ प्रतीत हो रहा था अतएव वे उसे पपोलने लगे।

इतने में ही बाज वहां आ पहुँचा। उसने मनुष्य की भाषा में कहा—राजन्, यह मेरा शिकार है भक्ष्य है इसे मुझे दे दो।

राजा ने कहा-भाई, यह मेरी शरण मे आया है और शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का परम कर्तव्य है। हां, मैं तुम्हें भी भूखा नहीं मारना चाहता। इसके बदले जो चाहो मुझसे मांग लो।

बाज बोला—महाराज, कहना सरल होता है करना कठिन।

राजा—क्षत्रिय वचन का धनी होता है। वह कहकर मुकरना नहीं जानता।

इस प्रकार राजा को वचन बद्ध करके बाज ने कहा—ऐसा है तो इस कबूतर की तौल का अपने शरीर का मांस काट कर मुझे दे दो इससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊंगा।

राजा ने बिना किसी प्रकार की आनाकानी के उसी समय तराजू मगवाई। एक पलडे मे कबूतर को बिठला दिया और दूसरे पलडे मे अपनी जाघ का मास काट-काट कर रखा। मगर दैवी माया के कारण वह मांस कबूतर के बराबर नहीं होता था। जब दोनों जाघों का मांस भी उसके बराबर नहीं हुआ तो आखिर राजा स्वय उस पलड़े में बैठ गये।

किन्तु वह तो देवमाया थी। राजा के दयाभाव की परीक्षा के लिए ही यह सब आयोजन किया गया था। जब देवों ने उन्हे दया की परीक्षा में उत्तीर्ण पाया और इन्द्र द्वारा की गई प्रशसा की सचाई का प्रमाण पा लिया तो उन्होंने देवमाया को समेट कर राजा को स्वस्थ ज्यों का त्यों कर दिया। दोनों देव अपने असली देवरूप में उनके चरणों मे गिर पड़े और अपराध के लिए क्षमायाचना करके अपने स्थान को लौट गये।

इस जीवदया के कारण राजा मेघरथ के जीवन ने तीर्थङ्कर का महान् पद प्राप्त किया और भगवान शान्तिनाथ के रूप में वह विख्यात हुए। आज भी उनके शान्तिकर नाम से जगत् में शान्ति का प्रसार होता है।

धर्म रुचि अनगार के नाम से कौन अपरिचित होगा ? एक बार मासखमण की पारणा के निमित्त, गुरु से आज्ञा प्राप्त करके, वे भिक्षार्थ नगर मे गये। सधन-निर्धन कुलों में अटन करते हुए नाग श्री ब्राह्मणी के घर जा पहुँचे। उसके यहां उस दिन भोजन का विशेष आयोजन किया गया था। कई प्रकार की चीजें बनाई गई थीं, जिनमें तूंबे का शाक भी था। बनाने के बाद नागश्री ने वह शाक चखा तो मालूम हुआ—वह कडुवा है। उसने सोचा, अच्छा ही हुआ जो मैंने पहले चख लिया, अन्यथा मेरी शान मिट्टी मे मिल जाती। वह उसे फैंक देने के विचार मे ही थी कि महातपस्वी मुनिराज धर्म-रुचि पहुँच गए। वह ब्राह्मणी जैन मुनियों की द्वेषिणी थी। उन्हें द्वार पर आया देख उसने विचार किया—अनायास ही घर पर उकरड़ी आ गई है तो फिर अन्यत्र शाक फैंकने की आवश्यकता ही क्या है !

नाग श्री मुनिराज के सामने आई और बोली -महाराज ! आहार लीजिए। मुनिराज ने पात्र सामने किया तो उसने एकदम सारा शाक पात्र में उंडेल दिया।

मुनिराज उस शाक को लेकर गुरु महाराज के पास पहुँचे। पात्र निकाल कर उन्हें दिखलाया तो गुरु महाराज को उसमें से कडुवी गंध निकलती मालूम हुई। तब उन्होंने कहा—देवानुप्रिय, ऐसा कौन दानी मिला जिसने तुझे और तो कुछ नहीं दिया, केवल शाक ही शाक दिया। मगर मुझे तो इसमें दाल मे काला जान पड़ता है। उन्होंने उंगली से उसे चखा और कहा—शिष्य, यह हलाहल जहर है। तेरे खाने योग्य नहीं है। इसे खा लेगा तो यह शरीर छूट जाएगा। अतः मेरी आज्ञा है कि तू इसे ले जा और ऐसे किसी स्थान में परठ दे, जहां जीवों की विराधना न हो।

गुरु के आदेश को शिरोधार्य करके धर्म रुचि अनगार उस शाक के पात्र को एकान्त में ले गये और जहां ईंट पकाने का अवा

था, वहां परठने की तैयारी करने लगे। पहले उन्होंने एक बूंद जमीन पर डाली। उस बूंद के डालते ही चिकनाई के कारण कई कीडिया आ गई और उस शाक को मुंह लगाते ही मर गई। यह दृश्य देख कर मुनिराज ने विचार किया—सारा शाक परठ दूंगा तो न जाने कितनी कीडियों के प्राण नष्ट हो जाएँगे! गुरुजी का आदेश है कि ऐसी जगह परठना जहां परठने से जीवों की विराधना न हो। ऐसा स्थांन मेरा उदर ही है। मैं अपने उदर में इसे डाल लूंगा तो कीड़ियों के प्राण बच जाऍंगे। यह शरीर अब क्षीण प्राय हो चुका है। क्यों न इसका सदुपयोग किया जाय!

इस प्रकार विचार करके मुनिराज उस कटुक शाक को, कटुक औषध की तरह गले में उतार गए। अन्तिम संलेखना करके वहीं बैठ गये। उस जहर के प्रभाव से उनका शरीर निर्जीव हो गया। किन्तु जीव रक्षा की विशुद्ध भावना के कारण वे सर्वार्थ सिद्ध विमान में अहमिन्द्र देव हुए। एक भव धारण करने के पश्चात् उन्हें सिद्धि विमान में अहमिन्द्र देव हुए। एक भव धारण करने के पश्चात उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी।

दया के अवतार भगवान नेमिनाथ का उज्ज्वल जीवन भी आपके सामने है। उनके जीवन के विषय में कवि ने कहा है—

*समुद्र विजय शिवादेवी नदा,*
*भए जादव-कुल में चदा, जे भवियण के सुख कदा।*
*हरि की शस्त्र शाला मांही मित्र संग गया जो चलाई।*
*जपो नेमीश्वरजी, मेरी जान जपो नेमीश्वरजी,*
*नेमीश्वर बालब्रह्मचारी, वडाई है जग में ज्यारी ॥ टेक ॥*

भाइयों ! इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, शौरीपुर नामक नगर में, समुद्र विजयजी राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम शिवा-देवी था। उन्होंने किसी समय रात्रि में चौदह शुभ स्वप्न देखे। तत्पश्चात जागृत होकर वह पतिदेव के शयनागार में गई। उन्हें जगा कर अपने स्वप्न का हाल कहा। सुन कर समुद्रविजयजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—प्रिये ! यह महान् स्वप्न इस बात के सूचक हैं कि तुम अत्यन्त भाग्यवान् महान् पुत्र तीर्थङ्कर का प्रसव करोगी। महारानी स्वप्न के इष्ट फल को सुनकर अपने शयनागार में चली गई और शेष रात्रि जागरण करते ही व्यतीत की।

प्रात काल महाराजा समुद्रविजय ने नगर के स्वप्न शास्त्रियों को बुलवाया और उनका यथोचित सन्मान करके उनसे स्वप्न का फल पूछा। उन्होंने भी वही फलादेश किया जो महाराजा ने महारानी को किया था।

महारानी ने यथासमय पुत्र रत्न को जन्म दिया। पुत्र का जन्म होने पर केवल राजा-प्रजा ने ही महोत्सव नहीं मनाया, वरन् इन्द्रों ने भी उपस्थित होकर और नवप्रसूत शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ जन्मोत्सव मनाया। बारहवें दिन अशुचि-कर्म से निवृत्त होकर नामसंस्कार किया गया-'अरिष्टनेमि' नाम रक्खा गया। वही अरिष्ट नेमि आज जन-जन के मन मे श्रद्धा और भक्ति के पुनीत भाजन बने हुए हैं।

भगवान अरिष्ट नेमि जन्म से ही तीन ज्ञानों से सम्पन्न थे। भगवान का विस्तृत जीवन-चरित यहा नहीं बतलाया जा सकता। जिज्ञासु जन 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र' से 'हरिवंश पुराण' से अथवा 'ढालसागर' से जान सकते हैं। यहां तो संक्षेप में मुद्दे की बात ही कही जा सकती है।

जब अरिष्ट नेमि कुमारावस्था में थे, उसी समय श्रीकृष्ण वासुदेव तीन खड के अधिनायक बन गये थे और द्वारिका नगरी में निवास कर रहे थे। कृष्ण वासुदेव वसुदेवजी के पुत्र थे और अरिष्ट नेमि समुद्र विजयजी के। दोनों में चचेरे भाई का सम्बन्ध था।

कृष्ण महाराज आनन्द पूर्वक तीन खड का शासन कर रहे थे और उनकी छत्र-छाया मे नेमिकुमार अपना कुमार जीवन मित्रों के साथ हँसी-खुशी मे व्यतीत कर रहे थे। इसी बीच एक नवीन घटना घटित हुई। अरिष्टनेमि कुमार अपने मित्रों के साथ एक दिन कृष्णजी की आयुधशाला मे जा पहुँचे। वहा विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रक्खे हुए थे। उनमे एक धनुष भी था, जिसे उठाकर वासुदेव ही चढ़ा सकते थे, टंकार सकते थे। बातों ही बातों मे मित्रों ने अरिष्टनेमि से कहा—'इस शार्ङ्ग धनुष को तुम नहीं चढ़ा सकते। इसे तो वही चढ़ा सकता है जिसने कृष्णजी की जैसी माता का दूध पिया हो।'

कुमार अरिष्टनेमि ने यह शब्द सुने। वे तीन ज्ञानों के धारक थे और जानते थे कि जिस घटना का सूत्रपात हो रहा है, उसका दूरगामी परिणाम क्या होगा। फिर भी अपने मित्रों को समझाने के लिए उन्होंने क्या किया—

*नाक-श्वास से शख बजायो, ले धनुष टंकार सुनायो,*
*हार सुन मन अचरज पायो।*
*जाएयां श्री नेमिकुवर ताईं, कृष्णमन चिन्ता अधिकाई ॥२॥*

उसी समय अपने मित्रों के मनोरजन के लिए उन्होने वह धनुष उठा लिया और जोर की टकार लगाई। उसके बाद उन्होंने

पांच जन्य शख उठाया और नाक से हवा भर कर उसे फू क दिया। शंख की वह प्रचण्ड ध्वनि कृष्णजी के कानों मे पड़ी और सुनकर वे विस्मित और चकित रह गए! पांचजन्य शख उनके सिवाय कोई बजा नहीं सकता था, अतएव अपने इस विश्वास को भग हुआ देखकर वे सोचने लगे—इस शख को बजाने वाला यह नया कौन पैदा होगया! मेरे बल का मुकाबिला करने वाला यह कौन है?

और जब श्रीकृष्ण को पता चला कि धनुप-टकार करने वाला और पाचजन्य फू कने वाला कोई विरोधी या शत्रु नहीं, किन्तु भाई साहब ही हैं और उन्हें ही कुतूहल सूझा है, तब वे फौरन आयुध-शाला मे आए और कुमार अरिष्टनेमि की वीरता की प्रशसा करने लगे।

मगर इस घटना ने कृष्णजी के मन में उथल पुथल मचा दी। उनके चित्त में एक नवीन विचार प्रादुर्भू त हुआ। उन्होंने सोचा—'वीरभोग्या वसुन्धरा।' इस पृथ्वी पर किसी के बाप का पट्टा नहीं लिखा है। जो शूरवीर होता है वही पृथ्वी का, साम्राज्य का, स्वामी बनता है। वही राज्य कर सकता है। कुमार मुझसे भी अधिक बलवान् हैं, इसका अर्थ यह है कि मेरा राज्य छीनने वाला पैदा हो चुका है। मैं शंख को मुँह से बजा पाता हूँ, यह नाक से ही बजा लेते हैं! फिर राज्य छिन जाने में क्या कसर रह गई?

इसी विचार में निमग्न वासुदेव महलों में आ गए और विचार सागर में गोते लगाने लगे। उन्हें चिन्तातुर देख कर उनकी आठ पटरानियां उपस्थित हुई। यों तो उनकी बत्तीस हजार रानिया थीं, किन्तु उन सब मे आठ प्रधान थीं, अतएव वे पटरानियां कहलाती थीं, वे सोच रही थीं कि पतिदेव हमेशा तो प्रसन्न चित्त रहते थे,

किन्तु आज प्रसन्न क्यों नहीं ? उदास क्यों हैं ? तब उन्होंने पूछा—नाथ ! आज आपका मुख म्लान क्यों दिखलाई दे रहा है ? सदा की भांति मीठी मुस्कराहट आज ओठों पर क्यों नहीं दृष्टिगोचर हो रही है ?

श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिये, क्या तुमको पता नहीं है ?

तब एक ने कहा—तीन खंड के नाथ, यदि आपकी उदासी का कारण हमें मालूम होता तो पूछने की आवश्यकता ही क्या थी ?

श्रीकृष्ण—देखो, आज कुमार अरिष्टनेमि ने नाक से पांचजन्य शंख बजाया है और शार्ङ्ग धनुष को भी चढ़ाया है। यह दोनों काम वही कर सकता है जो मुझ से अधिक बलशाली हो और जब अरिष्टनेमि मुझ से अधिक बलवान् हैं तो मुझे न्यूनबल को कौन राज्य करने देगा ? यही सोचकर मैं चिन्तित हूँ।

तब रानियों ने कहा—आप चिन्ता न करें। इस चिन्ता को दूर करने का जिम्मा हमारे ऊपर छोड़ दीजिए।

तत्पश्चात् पहले रानियों ने मिलकर अपने देवर के अतिशय बल का कारण सोचा और उसे कम करने का उपाय भी निश्चित कर लिया। फिर वासुदेव के पास जाकर कहा—कुमार की इस बलवत्ता का कारण अखंड ब्रह्मचर्य है। यदि आप निश्चित रूप से राज्य करना चाहते हैं तो विपक्षी को दुर्बल बनाइए। दुर्बल बनाने का सर्वोत्तम और सुकोमल उपाय है—विवाह कर देना। विवाह होने पर वे कमजोर हो जाएँगे और फिर राज्य छिनने का आपका भय दूर हो जाएगा।

कृष्णजी ने कहा—तुम्हारा सुझाव तो समर्थन करने योग्य है, किन्तु अरिष्टनेमि सांसारिक भोगों में अनासक्त है। ऐसा लगता है जैसे उसे वासना का स्पर्श ही नहीं हो पाया है। इसी कारण महाराज समुद्रविजय, माता शिवादेवी और मैं प्रयत्न करके थक गये, मगर कुमार ने अभी तक हां नहीं भरी। कुमार की चित्तवृत्ति साधारणजनों से बिलकुल विपरीत है।

रानियों ने कहा—ऐसे विषयों में सफलता पाना आपका काम नहीं, हमारा काम है। हम कोई न कोई उपाय करके उनसे हां भरवा लेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—निस्सन्देह ऐसी समस्याओं को सुलझाने में नारियों की बुद्धि सौ गुनी काम करती है।

यह कह कर कृष्णजी सीधे समुद्रविजयजी के पास पहुँचे। बोले—पूज्य पितृव्य, कुमार अरिष्टनेमि विवाह योग्य हो चुके हैं। आप इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे रहे हैं। आखिर कब तक वह कुंवारे रहेंगे?

समुद्रविजयजी बोले—कृष्ण, मैं समझा-बुझा कर थक गया। वह तो हां भरता ही नहीं है।

कृष्ण—देखिए, प्रयत्न करता हूँ।

समुद्र—यदि तुम उसे विवाह के लिए सहमत कर सको तो इससे बढ़कर प्रसन्नता की दूसरी बात ही क्या हो सकती है। अवश्य प्रयत्न करो।

उस समय वसन्त ऋतु का साम्राज्य था। प्रकृति अपने नवीन परिधान से सुसज्जित होकर अद्भुत छटा प्रदर्शित कर रही थी।

फूलों और फलों से विनम्र बने वृक्ष कल्पवृक्ष सरीखे प्रतीत हो रहे थे। मनुष्यों के मन मे हर्ष और उल्लास की लहरें उठ रही थीं। एक ओर भ्रमरों की गु जार मन को आकर्षित कर रही थी तो दूसरी ओर कोकिला का कल कूजन आह्लाद उत्पन्न कर रहा था। सर्वत्र नई उमग दिखाई देती थी। ऐसे समय मे पटरानियों की सलाह से श्रीकृष्णजी ने अपने आलीशान बगीचे मे फाग खेलने का इरादा किया। कुमार अरिष्टनेमि को भी आमन्त्रित किया गया और आग्रह किया गया कि उन्हें अवश्य आना चाहिए।

श्री अरिष्टनेमि की फाग के आयोजन के प्रति तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी, फिर भी कृष्ण के अनुरोध को वे टालना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने वहा जाने का निश्चय कर लिया। नियत समय पर बगीचे मे सब प्रबन्ध हो गया। पटरानियों के साथ श्रीकृष्ण सज-धज कर जा पहुँचे। नेमिकुमार भी पहुँच गए।

कृष्णजी ने वसन्तोत्सव का उद्‌घाटन किया। रग से भरे हौज में से उन्होंने अपनी पिचकारी भरी और रानियों पर छोड़ी। तत्पश्चात उदगल सा मच गया। सभी अपनी अपनी पिचकारिया सम्भाल कर और उन्हे रग से भर कर एक दूसरे पर छोड़ने लगे और अबीर उछालने लगे। सारा वातावरण द्रव्य और भाव से 'अनुरागमय' बन गया। बाहर रग और अबीर की लालिमा फैली हुई थी तो अन्तर में स्नेह की लालिमा। इस प्रकार सब हर्ष से उन्मत्त थे, हसी के फौहारे छूट रहे थे। चुहल से समस्त वायु मण्डल व्याप्त था।

मगर अरिष्टनेमि ? उनकी मानसिक स्थिति अनूठी ही थी। वे उस बाल चेष्टा को देखकर मन ही मन सोच रहे थे कि ससारी

जीव किस प्रकार वैषयिक सुख मे निमग्न होकर अपनी वास्तविक अवस्था को भूल रहे है। उन्हें अपने भविष्य की कोई चिन्ता ही नहीं है मानो यही स्थिति सदा बनी रहेगी।

इस प्रकार विचार करते हुए तटस्थ दर्शक की तरह वे वैठे हुए थे। यह देखकर कृष्णजी की एक पटरानी ने कहा—

*देवरजी डर तो रहे, जाने लाडी सतावे हो।*
*लाडी विना कैसो लाडलो, वृथा जनम गमावे हो ॥ १ ॥*
*भौजाई व्याह मनावे हो, व्याह मनावे।*
*नेम को वहु वात वणावे हो ॥ टेक ॥*

रुक्मिणी कहती है—देवरजी, मालूम होता है, आप 'वींदणी' से डरते हो। मगर विना वींदणी के वींद कैसे कहलाओगे ?

'वींद' और 'वींदणी' राजस्थानी भाषा के शब्द है। उन्हें दूल्हा-दुल्हिन या वर-वधु भी कहते है।

हां, तो रुक्मिणी के द्वारा किये उपहास को सुनकर अरिष्टनेमी वोले —

*वृथा जनम छे तेहनो ते तो धर्म न जाने हो।*
*पाप मूल नारी तजी तेहने ज्ञानी वखाणे हो ॥ २ ॥*

नेमिकुमार कहते है—विषय भोगों की वातें तो पशु पक्षी भी जानते है। छोटे-मोटे सभी प्राणी अनायास और विना अभ्यास ही काम कला मे कुशल होते हैं, मगर धर्म की ठीक ठीक पहचान तो मनुष्य ही कर सकता है। मानव की विशेषता धर्म को समझ कर

उसका पालन करने में ही है। जिसने मानव भव पाकर धर्म को नहीं समझा और अपने जीवन में उसे मूर्त रूप नहीं दिया, उसका जन्म निरर्थक है।

अरिष्टनेमी का उत्तर सुन कर रुक्मिणी देवी बोली—

*पूर्वे परणया थायरां सास्तर में गावे हो।*
*जो परणआ में पाप हुए तो क्यों मोक्ष सिधावे हो ॥ ३ ॥*

हां-हां देवरजी! मैं तुम्हारी बातों को भलीभांति समझती हूँ। आज आप ही इस भूतल पर महापुरुष नहीं जन्मे हो। पहले भी अनेक महापुरुष जन्म ले चुके हैं और इस पृथ्वी को अलंकृत कर चुके हैं। मगर वे सब आप सरीखे ही नहीं थे। भगवान ऋषभदेव इस युग के आद्य महापुरुप थे। क्या उन्होंने लग्न नहीं किया था? सुनन्दा और सुमगला के साथ उनका विवाह हुआ था। सोलहवें तीर्थङ्कर शांतिनाथजी ने भी विवाह किया था, गृहस्थाश्रम का पालन किया था और फिर सयम लेकर मोक्ष प्राप्त किया था। क्या आप ही एक ऐसे हैं जिनका मोक्ष विवाह करने से रुक जाएगा?

तब नेमीकुमार ने कहा—

*पूर्वे परणया मायरां नहीं भोग प्रमाणे हो,*
*मुगत गया त्यागन करी, सो तो शास्त्र वखाणे हो ॥ ४ ॥*

अर्थात्—अतीतकालीन महापुरुषों ने भोगावली कर्मों का क्षय करने के लिये विवाह किया था, भोगलिप्सा से प्रेरित होकर नहीं। फिर भी वे भोग भोगने से मोक्ष नहीं गये, वरन् त्याग करके ही मोक्ष गये हैं। अतएव मोक्ष का कारण भोग नहीं, त्याग है।

रुक्मिणी कहती है—

*देवर ! नारी परण लो, किम् लोक हँसावे हो ।*
*ब्याह करी त्यागन करो, मात पिता सुख पावे हो ॥५॥*

*भौजाई मैं नहीं परणस्यां, किम इतनी ताणे हो ।*
*अभूगत भोगी सजम ग्रही, राम जासी निवाणे हो ॥६॥*

अर्थात्—यह ठीक है कि पूर्व काल के महापुरुष त्याग करके मोक्ष गये हैं और यह भी ठीक है कि त्याग से ही मोक्ष प्राप्त होता है। किंतु यह बताओ कि उन्होंने पहले भोग भोगा है या नहीं ? अगर विवाह न करते और भोग न भोगते तो त्याग काहे का करते ? ग्रहण किये बिना त्याग किसका करोगे ? अतएव हमारा अनुरोध है कि आप विवाह करना अंगीकार कर लो। एक नारी आपकी मुक्ति साधना में बाधक नहीं बन जाएगी। माता पिता का पुत्र पर काफी ऋण होता है। जो उस ऋण को भी नहीं चुका सकता, वह मोक्ष की क्या साधना करेगा ? आज आपको कुंवारा देख कर वे अत्यन्त दुखी हैं। हम सबको भी दुख है। विवाह करनें से सबका दुख दूर हो जाएगा और परम सन्तोष प्राप्त होगा। अतएव हमारा कहना मान लो।

अरिष्टनेमि मौन भाव से रुक्मिणी का कथन सुन रहे थे। उनके मौन से लाभ उठा कर दूसरी रानी ने कहा—रुक्मिणीजी, मौनं सम्मति लक्षणम्। जब कोई किसी बात को सुनकर मौन रह जाता है तो समझना चाहिये कि उसे वह बात स्वीकार है। देवरजी को विवाह करना स्वीकार है, तब मुंह से कहलाने का क्यों आग्रह कर रही हो ?

तीसरी रानी ने सहारा देते हुए कहा—सच है, देवरजी को अब ज्यादा हैरान मत करो। उन्होंने तुम्हारी बात मान ली है।

चौथी—हमारे देवरजी बहुत विनीत और लज्जाशील हैं इसीलिये बोलते नहीं मगर बात टाल नहीं सकते।

पांचवीं—धन्य हो रुक्मिणी देवी! आज आपने कुमार से अपनी बात मनवा ही ली। कुंवर साहब! आपको भी धन्य है कि आपने हम सब की चिरकालीन अभिलाषा की पूर्ति कर दी।

इसके पश्चात शेष रानियों ने भी हां-हां की और सबने एक प्रकार से यह घोषित कर दिया कि कुमार अरिष्टनेमी को विवाह करना स्वीकार है।

कुमार अपने ज्ञान से भविष्यत को भलीभांति देख रहे थे और जगत के जीवों के अज्ञान का विचार करके दयाद्रवित हो रहे थे।

फाग खेलने का कार्यक्रम समाप्त हुआ। जिस उद्देश्य से उसकी आयोजना की गई थी, वह सफल समझा गया। इसके अनन्तर कृष्णजी मन ही मन सोचने लगे—कुमार के लिये कौनसी कन्या उपयुक्त होगी? कन्या ऐसी होनी चाहिये जो उनके मन को मुग्ध कर ले। उनके विरक्त और सूखे हृदय के मरुस्थल में अनुराग की लहलहाती वाटिका उत्पन्न कर दे!

विचार करते करते उन्हें उग्रसेन महाराजा की कन्या राजीमति का खयाल आया। वह अनिंद्य सुन्दरी और सद्गुणवती है। अपने गुण, रूप, और सौंदर्य से अवश्य नेमि के मन को आकर्षित कर लेगी। राजीमती के विषय में कहा गया है—

*उग्रसेन राजा की पुत्री ऐसी,*
*सूत्र में कही आभा बीज जैसी।*
*ऐसो जदुपति २ परणावा पधारे सिरी राजीमती।टेर*

*तेहने व्याहन जावे नेमी कुमार,*
*बहुविध सज साथे कृष्ण मुरार॥*

तो वासुदेव कृष्ण राजा उग्रसेन के पास पहुँचे। उन्होंने कहा—मैं आपकी सुयोग्य कन्या राजीमती की अरिष्टनेमी के लिये मगनी करने उपस्थित हुआ हूँ।

उग्रसेन ने कहा—कन्या का सौभाग्य है कि आपने उसे अपने कुल के योग्य समझा। कुमार अरिष्टनेमि सरीखा दूसरा वर मिलना भी संभव नहीं है। यह तो घर बैठे कल्पवृक्ष का आना है। मगर एक बात विचारणीय है। आपके यहां सामने कन्या को लेजाने का रिवाज है, किंतु मुझे यह स्वीकार नहीं है। अगर आप बारात लेकर मेरे द्वार को पावन करने का अनुग्रह करें तो कन्या आपकी ही है।

कृष्णजी ने उग्रसेन की शर्त स्वीकार कर ली और विवाह की तिथि निश्चित हो गई। कृष्णजी लौट कर द्वारिका आये। दोनों ओर धूमधाम के साथ विवाह की तैयारियां होने लगी। वर और वधु के शरीर पर पीठी लगाई जाने लगी। विवाह के मंगल गीत गाये जाने लगे। हर्ष और उल्लास की उन्मादमयी कल्लोलिनी प्रवाहित होने लगी। आखिर विवाह का मुहुर्त सन्निकट आगया और बरात सज धज के साथ ले जाने की तैयारी शुरु होगई। भरत क्षेत्र के तीनें खडों के राजाओं को आमंत्रण दिया गया और बहुत से राजा महाराजा बरात में सम्मिलित होने के लिये द्वारिका में आने लगे

सब को यथोचित स्थानों में ठहराने आदि की समुचित व्यवस्था की गई।

जिस दिन बरात रवाना होने वाली थी, कुमार अरिष्टनेमि को विशेष रूप से स्नान करवा कर और बहुमूल्य वस्त्राभरणों से अलकृत करके सजाया गया। निसर्ग सुन्दर कुमार की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनको अनुपम शोभा की तुलना में स्वर्ग के अधिपति इन्द्र की सुन्दरता भी नगण्य थी।

यथा समय बरात रवाना हुई। जिस बरात मे अरिष्टनेमि जैसे दूल्हा हों, तीन खड के नाथ कृष्ण वासुदेव सरीखे प्रतापी सचालक और व्यवस्थापक हों, उसकी शान शौकत का क्या कहना है! कवि ने कहा है—

*कृष्ण और बलभद्र साथ दोई भ्रात बरात के माई रे*
*समुद्रविजय राजादिक सग कर कर जलुसाई रे।*
*नेमि बनड़ा के रे २ संग बरात चढी बड़ी धूमधडाके रे ॥*

अरिष्टनेमी दिग्गज के समान विशालकाय गजराज पर आरूढ़ थे। उनके ऊपर सुन्दर श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा था। दोनों पार्श्वों में सुसज्जित सेवक खडे चामर ढोर रहे थे। मनोहर वाद्यों की ध्वनि से दिशाएँ व्याप्त हो रहीं थी। कृष्ण और बलदेव अपार हर्ष के साथ अपने अपने रथों पर आरूढ थे। समुद्रविजयजी की चिरपोषित कामना आज मूर्त रूप ग्रहण कर रही थी। उनका स्वप्न साकार होने जा रहा है, यह सोच कर वे अत्यन्त हर्षित हो रहे थे। छप्पन कोटि यादव अपनी निराली शान के साथ विपुल ऐश्वर्य प्रदर्शित करते हुए चल रहे थे। बरात को देखकर ऐसा जान

पड़ता था, मानों सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का उल्लास, प्रमोद, ऐश्वर्य और आनन्द सिमट कर यहीं एकत्र होगया है !

*नेमजी की जान वडी भारी,*
*देखन को आवे नर नारी ॥ टेर ॥*
*संख्याता घोड़ा और हाथी,*
*मनुष्य की गिनती नहीं आती ।*
*ऊट पर धज्जा फहराती,*
*धमक से धरती थर्रानी ॥*

ऊटों पर नगाडे बज रहे थे और निशान फहरा रहे थे। ४९ प्रकार के वाद्यों का तुमुलनाद अनूठे वातावरण का निर्माण कर रहा था।

दृष्य वड़ा रमणीय था। सहस्त्रों नर और नारी टोले बना कर राज-पथ के दोनों ओर खड़े होकर उस दृश्य को देख रहे थे। भवनों के छज्जों और छतों से नारियां वरात की शोभा निहार रही थीं। सभी सोच रहे थे कि ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा और न देखने को मिलेगा। दूर दूर देहात से भी हजारों नर नारी वहां आ पहुँचे थे।

वि० सं० १९९९ मे, जोधपुर में जब राजकुमार हनुवन्तसिहजी की वरात धूम धाम से निकली, तब मैं भी सयोगवशात् भ्रमण करता करता वहीं पहुँचा हुआ था। मैंने देखा कि उस वरात को देखने के लिये दूर दूर से गावों से हजारों की सख्या में जनता पहुँची थी। जब एक सामान्य राज परिवार की वरात को देखने के लिये इतने मनुष्य जमा हो सकते हैं तो तीन खड के अधिपति परमैश्वर्य-शाली कृष्णजी के भाई की वरात की छटा देखने के लिये कितने आदमी न आए होंगे !

यथा समय बरात रवाना हुई। तब प्रथम देवलोक के इन्द्र ने अवधि ज्ञान से जाना कि द्वारिका नगरी के श्रीकृष्ण वासुदेव के भाई नेमिनाथ विवाह करने जा रहे हैं किन्तु यह विवाह होने वाला नहीं है। अच्छा हो मैं जाकर कृष्ण वासुदेव को समझा दूं। तब—

*शक्रेन्द्र ब्राह्मण रूप करी,*
*सम्मुख आई इम अरज करी ॥ ३ ॥*
*ऐसो जादुपति रे ऐसो जदुपति,*
*परणवा पधारे सिरी राजीमती ॥*

शक्रेन्द्र ने उसी समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया। कमर तीर की तरह नमी हुई थी। लाठी टेकता टेकता चल रहा था। वह बरातियों के सामने आया और कहने लगा—भाइयों, तुम सब कहां जा रहे हो ? अभी जाने का अवसर नहीं है।

बूढ़े ब्राह्मण की बात सुन कर कई लोगों ने हंस दिया, कईयों ने क्रोध प्रदर्शित किया और किसी ने कहा—हट जा बाबा सामने से। हमें जाने दे।

ब्राह्मण ने पूछा—अच्छा, यह तो बतला दो कि वर के पिता कौन हैं ?

किसी ने उत्तर दिया—किस लोभ से आ रहे हो ब्राह्मण देवता, जिन्हें इस बरात के वर के पिता का नाम नहीं मालूम है ? महाराज समुद्रविजय को नहीं पहचानते हो क्या ? वही वर के पिता हैं, मगर बरात के सर्वेसर्वा हैं कृष्ण वासुदेव।

तब वृद्ध कृष्णजी के पास पहुँचा और कहने लगा—

*लग्न में दीसे छे कोई अदूर,*
*इन अवसर नहीं परणे जरूर ॥ ४ ॥*

वासुदेवजी, आप कुमार का विवाह करने जा रहे हो, मगर मैं क्या मर गया था ? मुझसे पूछ क्यों नहीं लिया ? महाराज यह मुहूर्त विवाह के अनुकूल नहीं और मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ—इस मुहूर्त मे कुमार का विवाह होगा ही नहीं।

ब्राह्मण के वचन सुनकर कृष्णजी ने सोचा—अरे यह भविष्य-वेत्ता कहां से आ टपका ? कितनी कठिनाई से कुमार को मनाया और यह अपशकुन करने न जाने कहां से आ धमका ! मगर इस अवसर पर इसका तिरस्कार करना उचित नहीं । ऐसा सोच उन्होंने कहा—

*कृष्ण कहे रे ब्राह्मण आजो यहां,*
*पीला चावल थाने कौन दिया ? ॥ ५ ॥*

अर्थात—ब्राह्मण देवता ! निमन्त्रण तुम्हें किसने दिया था यहां आने का ? निमन्त्रण न मिलने के कारण ही तुम इस प्रकार कह रहे हो ? बिना बुलाए आना और फिर लट्ठ मारना तुम्हें योग्य नहीं। अच्छा, तुम्हें भी सन्तुष्ट किया जायगा।

यह कह कर वासुदेव ने अपने सेवक को एक घोड़ा देने का आदेश दिया।

ब्राह्मण बोला—महाराजा, विवाह ही नहीं होना है तो फिर मैं साथ चल कर या घोड़ा लेकर क्या करूँगा ! मैं तो तब जानू जब आप विवाह करके लौटो।

बरात आगे बढ़ी और यथा समय जूनागढ़ में प्रविष्ट हुई विवाह का दिन होने से राजीमती के हृदय में उमंग छाई हुई थी

भांति-भाति की सुनहरी कल्पनाएं उसके हृत्पट पर उदित हो रही थीं। अपनी उत्कंठित आखों से वह भी महल की छत से बरात का निरीक्षण कर रही थी। बहु सख्यक सखियां उसे घेरे थीं और अव-सर के अनुकूल ठिठोलियां कर रही थीं।

*ब्राह्मण दूर हुओ तिण वार,*
*तोरण पर आवे नेमिकुमार ॥ ६ ॥*

बरात का जुलूस आगे बढा तो देखा—

*पशुओं का वाट में वाड़ो भरयो ।*
*करुणा करी ने प्रभु पाछो फिरयो ॥ ७ ॥*

एक बाडे में तरह तरह के पशु भरे हुए हैं। कई पींजरों मे पक्षियों को अवरुद्ध करके रखा गया है। उनकी कर्णभेद चीत्कार सुन कर दिल दहलता है। ऐसा जान पडता है, मानों अनाथों के नाथ, अशरण शरण, त्रिलोक बान्धव श्री अरिष्टनेमि से दीन वचनों में, आर्त स्वर मे पुकार कर रहे थे कि भगवन्! हमें बचाओ हमे बचाओ!

भाइयों! आप जानते हैं कि शुद्ध अन्त करण से की गई प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। तो उत्तराध्ययन सूत्र के २२ वें अध्ययन मे बतलाया गया है कि उन पशुओं की करुण पुकार सुन कर भगवान के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई। बाड़े मे होने वाले करुण क्रन्दन की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। तब उन्होंने सारथी से पूछा - इस बाड़े मे पशु-पक्षी क्यों इकट्ठे किये गये हैं?

सारथी ने बतलाया आपके विवाह समारोह के अवसर पर होने वाले भोज के लिये यह इकट्ठे किये गये हैं। कन्या पक्ष वालों

की ओर से इनका वध करके मांस पकाया जाएगा और बरातियों को जिमाया जाएगा।

कुमार सारथी के यह वचन सुनते ही तीव्र दया से द्रवित हो उठे। उनके हृदय सागर में अनुकम्पा की उत्तुङ्ग तरंगे उठने लगीं उन्होंने सोचा—खेद है कि मनुष्य अपनी क्षणिक जिह्वा तृप्ति के लिए अपने ही सरीखे जीवधारी प्राणियों के प्राण नष्ट कर डालता है! यह मानवता नहीं, दानवता है! ऐसा करने वाले मनुष्य और पिशाच में क्या अन्तर है? मूक पशुओं की दया की ओर लोगों की दृष्टि आकर्षित करने का यह अच्छा अवसर है। अगर मैं इस पशु वध के विरोध में विवाह करना अस्वीकार कर दूं तो इस घटना का व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

कुमार अरिष्टनेमि ने तत्काल यह निश्चय करके सारथी को आदेश दिया—इन सब पशुओं को बाड़े का द्वार खोल कर मुक्त कर दो। सारथी ने उसी क्षण आदेश का पालन किया और सब पशुओं को स्वतन्त्र कर दिया सब पशु प्राण बचाकर भाग गये।

पशुओं से बाड़ा खाली होते ही कुमार ने सारथी को रथ पीछे घुमाने की आज्ञा दी। रथ वापिस फिरते ही बरात में तहलका मच गया। सब बड़ों बूढ़ों ने बहुतेरा समझाया, मगर कुमार का एक ही विनम्र उत्तर था—मुझे लग्न नहीं करना है। लग्न न करना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। श्रीकृष्णजी घबराये हुए आए और बोले—

*भाई तुम लोक हसावे हो,*
*भाई तुम लोक हसावे हो।*
*तोरण से फिर जावता तोने शरम न आवे हो ॥ टेर ॥*
*जो तू परणा नहीं चावतो, तो क्यूं जाण बणावे हो।*
*म्हाने लारे नहीं लावणा सह बात गमावे हो ॥ १ ॥*

हे भाई ! यदि तुम्हारा विचार विवाह करने का नहीं था तो इतना बड़ा जुलूस बना कर हम लोगों को साथ मे नहीं लाना था। जब आ ही गये हो तो इस प्रकार लौट जाने से लोगों मे हसाई होगी। लोग कहेंगे—तीन खड के नाथ का भाई विवाह करने गया था और विवाह किये बिना ही वापिस लौट गया ! भाई ! हम लोग तुम्हारे साथ आए है, अतएव तुम्हें हमारी इज्जत रखना चाहिये।

कृष्णजी की बात सुनकर नेमिनाथजी ने कहा –

*गांडो विवाह मडाणो फिर अवगुण गावे हो।*
*आडम्बर थाने कियो फिर मुझने दबावे हो ॥२॥*

*कहो कुण पल्लो पाथरयो मुझ घर तो मडावो हो।*
*विना मन बनणो कियो, विना मन परणावे हो ॥३॥*

*जादव जग में दीपता, मन में शरमावे हो।*
*अपनी मांग कोई परणतो, कहां कौन सरावे हो ॥४॥*

हे भाई ! मैंने कब कहा था कि ये सारे काम करना और मेरा विवाह करना ? आपने ही तो फाग रच कर और आपस में ही 'हां हां' कहकर स्वीकार कर लिया था। यह सब आडम्बर आपका ही किया हुआ है। अब आप व्यर्थ ही आकर मुझे दबा रहे हैं। मगर मैं अब दबने वाला नहीं हूँ, क्योंकि कहा है—

*झूठा सो डरे,*
*फूटा सो झरे,*
*पाका सो खिरे,*
*जनमा सो मरे,*
*करे सो भरे।*

आपने ही यह सारा प्रपंच रचा है और अब आप ही मुझे डराने आए हो। मगर यह मेरा अन्तिम निर्णय है कि मैं विवाह नहीं करूँगा।

कुमार का यह कथन सुनकर कृष्णजी बोले—भाई, मैं ही झूठा और प्रपची सही, किन्तु यादवों का इतना बड़ा परिवार साथ में है! अगर उनकी माग को कोई दूसरा व्याह लेगा तो क्या सारी प्रतिष्ठा धूल मे नहीं मिल जाएगी? मेरी, अपनी और समस्त यादवकुल की इज्जत कायम रखना अब तुम्हारे हाथ मे है।

कृष्णजी की यह बात सुनकर भी अरिष्टनेमि किसी प्रकार विवाह करने के लिए रजामद नहीं हुए और कहने लगे—

*मैं तो सयम आदरूं, मांग चाहे जा जावे हो।*
*माने तो जीव बंचाविया, राम चाहे ज्यूं गावे हो ॥५॥*

भाई साहब, मैं तो अब विवाह करने वाला नहीं हूँ। मैं जिस सुन्दरी के लिए यहां आया हूँ, उससे भी अधिक सुन्दरी मुझे ललचा रही है और अपने गले मे माला डालने के लिए आमंत्रित कर रही है। मेरा मन भी उसी की ओर आकर्षित है। मैं उसी को प्राप्त करने के लिए सयम और तपश्चरण अगीकार करूँगा, जिसका स्वरूप समस्त प्राणियों की रक्षा करना है।

इस प्रकार वासुदेव कृष्ण तथा दूसरों ने बहुतेरा समझाया, मनाया, मगर महापुरुषों का सत्संकल्प सुमेरु की तरह अटल होता है। उनका मनोबल ऐसा प्रबल होता है कि उसे कोई जीत नहीं सकता। अरिष्टनेमिजी ने जो भी निश्चय कर लिया था, उसे टालने

की किसी में शक्ति नहीं थी। वे तत्काल तोरण से वापिस मुड गये। लोग चकित और विस्मित नेत्रों से देखते ही रह गये।

आजकल भी तोरण पर पशु-पक्षियों के चित्र बनाये जाते हैं। यह भगवान् नेमिनाथ के जीवन की उसी उज्जवल घटना की स्मृति दिलाते हैं। मगर लोग उस मर्म तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं करते।

वींद जब हाथ मे तलवार लेकर तोरण पर मारता है तो वे पशु मानों सकेत करते है कि यदि तू दयावान् है तो लौट जा! किन्तु वींद कहता है—नहीं, मैं नहीं लौटू गा और तुम्हें मार दूँगा। तत्पश्चात सासू आरती लेकर आती है और जलता दीपक सामने करके मानो सकेत करती है कि मेरी बेटी के साथ सगत करेगा तो ऐसी जलजलती में जाएगा! तब वींद रुपये डाल कर कहता है—लो बोलो मत! फिर सासू कुभ कलश लेकर आती है और इस प्रकार बतलाती है कि स्त्री का संसर्ग करोगे तो कुंभी जैसे नरक में जाओगे। वह इस प्रकार सकेत करती है कि देख, अब भी सोच-समझ ले और मुड़ जा। किन्तु फिर भी वह रुपये निकाल कर रख देता है और इसका अर्थ है—लो, यह रिश्वत ले लो, बोलो मत।

फिर वींद चंवरी में बैठता है और वहा दोनों प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। दोनों को सात-सात प्रतिज्ञाएँ करनी पडती हैं। उस समय पुरोहित पहले वधू को और फिर वर को प्रतिज्ञाएँ दिलाता है। फिर अलग-अलग प्रदेशों के अलग-अलग रिवाज हैं।

जब फेरे होते हैं तो छह फेरों में स्त्री आगे-आगे रहती है, क्योंकि स्त्री की गति छठे नरक तक ही है। मानो स्त्री कहती है—तुम्हारे चक्कर में पडी हूँ तो छठे नरक तक जाने को तैयार हूँ। तब वर सातवें फेरे में आगे होकर कहता है—तेरी सगति में आने से

मुझे एक धक्का और लगेगा और मैं सातवीं तक जाऊँगा। पर अज्ञान के अन्धकार मे फॅसे हुए लोग इन सब मर्मो को समझने का प्रयत्न नहीं करते।

हां, तो भगवान अरिष्टनेमि ने पशुओं की रक्षा के लिए विवाह का परित्याग कर दिया! वे उसी समय वापिस लौट गये। वापिस लौटकर उन्होंने एक वर्ष तक वर्षी दान दिया। वर्षीदान देना तीर्थङ्करों का दीक्षा अगीकार करने से पहले का नियत आचार है। प्रत्येक तीर्थङ्कर एक वर्ष तक प्रतिदिन एक करोड आठ लाख स्वर्ण-मुद्राऍ दान दिया करते हैं और उन्हें अभेद भाव से आर्य-अनार्य सभी ले जाते हैं और ले जाकर अपने खजाने में रखते हैं।

जब कुमार अरिष्टनेमि दूल्हा बन कर राजीमती को व्याहने जा रहे थे, तो राजीमती के हर्ष का पार नहीं था। किन्तु ज्योंही उसने कुमार के वापिस लौट जाने का समाचार सुना तो उस पर जैसे बिजली टूट पड़ी! हृदय को इतना तीव्र आघात लगा कि संभल न सकी! मूर्छित होकर धड़ाम से धरती पर जा गिरी। समीपवर्ती सखियों द्वारा उपचार करने से राजीमती होश मे आई। तब सखियों ने समझाया 'सखी वे चले गये तो चले जाने दो। आप क्यों शोकाकुल होती हो? अभी तो आप कुआरी हो। दूसरा लग्न हो जाएगा। ससार मे अकेले अरिष्टनेमि ही तो योग्य वर नहीं हैं। 'बहुरत्ना वसुन्धरा।' इस पृथ्वी पर एक से एक बढ़कर रत्न विद्यमान हैं।'

राजीमती को अपनी सखियों की इस सान्त्वना से असीम वेदना हुई। उसने उत्तर मे कहा—सखियो! मेरे सामने ऐसे शब्द मत बोलो, क्योंकि —

*आर्य कन्या स्वप्न में भी धार लेती पति जिसे।*
*उसके सिवा फिर और भज सकती किसे?*

आर्य कुल की कन्या, समझ-बूझ कर तो क्या, स्वप्न में भी जिसे पति के रूप मे वरण कर लेती है, उसके सिवाय किसी अन्य की नहीं बन सकती। मैं आर्य कन्या हूँ और मैंने हृदय से कुमार को अंगीकार कर लिया है। वह मेरे हृदय के सर्वस्व बन चुके हैं। वही मेरे प्रियतम हैं, प्राण हैं। उनका मार्ग ही मेरा मार्ग है। उन्होंने पशुओं की रक्षा के लिए विवाह करना अस्वीकार कर दिया है तो मैं भी उन्हीं का अनुसरण करूँगी। इस जीवन में मैं उनसे विमुख नहीं हो सकती।

राजीमती का उत्तर सुनकर सखियां उदास हो गई। उनमें से एक ने कहा—सखी, भावुकता के अतिरेक में कोई महत्व पूर्ण निश्चय नहीं किया जाता। चित्त को स्वस्थ होने दो। फिर इस सम्बध मे परामर्श करना उचित होगा।

दूसरी ने समर्थन करते हुए कहा—हां हां, यही ठीक है। इस क्षोभमय वातावरण मे भविष्य का विचार करना कल्याण कर नहीं होगा।

किन्तु राजीमती ने स्पष्ट कह दिया—सखियों, आप मेरे लिए चिन्तित न हों। मेरा निश्चय अचल है, अटल है। वह भावुकता से नहीं, विवेक से किया गया है।

उधर वर्षीदान देने के पश्चात् अरिष्टनेमि—

*एक सहस्र पुरुष सग संजय ले,*
*केवल का कीना उजियाला।*
*कर्मों का लश्कर जीत लिया,*
*शिव पद को नेमी लाले ने॥*

आनन्द का डंका दुनिया में,
बजवा दिया नेमी लाले ने।
और ज्ञान का सूरज हर जहां में,
चमका दिया नेमी लाले ने॥

नेमिनाथ भगवान ने एक हजार साथियों के साथ सयम अंगीकार किया। कृष्ण वासुदेव ने ठाठ के साथ दीक्षा महोत्सव किया। भगवान् ने दीक्षित होकर महिमण्डल को विचरण करके पावन किया और ५४ दिन छद्मस्थ अवस्था में व्यतीत करके अनुत्तर केवल ज्ञान-दर्शन प्राप्त किया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर प्रभु ने जगत् के जीवों का कल्याण करने के लिए सद्धर्म का उपदेश दिया। चतुर्विध संघ की स्थापना की।

राजीमती दीक्षा अगीकार करने का सकल्प करके संयत एव विरक्त अवस्था में दिन व्यतीत कर रही थीं। भगवान के प्रथम उपदेश के पश्चात् ही उन्होंने ७०० रमणियों के साथ भागवती दीक्षा धारण की। भगवान् नेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रहे और सात सौ वर्ष सयम-अवस्था में। उनके सघ में अठारह हजार साधु और चालीस हजार साध्वियां दीक्षित हुई।

अन्त मे समस्त कर्मों का क्षय करके भगवान् मोक्ष मे पधारे। महासती राजमती ने भी तीव्र तपश्चर्या करके सिद्धि प्राप्त की।

पर्युषण पर्व के इस प्रसग पर आपने आज चौबीस महापुरुषों का वृत्तान्त सुना। यह वृत्तान्त सिर्फ सुनने को नहीं है। इसे हृदयंगम करके जीवन में उतारना चाहिए। इन महापुरुषों ने जिस पथ पर प्रयाण किया, वही परम कल्याण का पथ है और जो उस पथ पर चलेगा, वही अनन्त एवं अखण्ड शान्ति का लाभ कर सकेगा।

भाइयों, दूसरे लोग 'जन' कहलाते हैं, किन्तु आप 'महाजन' हैं। आप में साधारण जन की अपेक्षा कुछ महत्व होना चाहिए, कुछ विशेष गुण होने चाहिए। आप में ऐसी विशेषताएँ हों जिनके कारण आपका जीवन उज्जवल बन सके और साथ ही दूसरों को भी कुछ सीखने को मिले। आपके जीवन व्यवहार को देखकर ही लोग जैन धर्म की महत्ता का अकन कर लें। इस प्रकार का जीवन बनाने का यही सुन्दर अवसर है। इस महापर्व के प्रकाश मे अन्तरतर का अवलोकन करो और हृदय के जिस किसी कोने मे मलीनता हो, उसे शुद्ध भावना के सलिल से धोकर साफ कर दो। ऐसा करोगे तो इस लोक में और परलोक में सुखी बनोगे।

[ नोट—मुनिराज के इस प्रवचन से प्रभावित होकर श्री रूपचन्दजी मूथा ने सजोडे ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया तथा अनेकों भाइयों और बाइयों ने अनेक प्रकार के व्रत और प्रत्याख्यान अंगीकार किये। ]

बेंगलोर (कन्टोन्मेन्ट)
ता० ३१-८-५६
सोमवार





आनन्द का डंका दुनिया में,
    बजवा दिया नेमी लाले ने।
और ज्ञान का सूरज हर जहां में,
    चमका दिया नेमी लाले ने॥

नेमिनाथ भगवान ने एक हजार साथियों के साथ संयम अंगीकार किया। कृष्ण वासुदेव ने ठाठ के साथ दीक्षा महोत्सव किया। भगवान् ने दीक्षित होकर महिमण्डल को विचरण करके पावन किया और ५४ दिन छद्मस्थ अवस्था मे व्यतीत करके अनुत्तर केवल ज्ञान-दर्शन प्राप्त किया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर प्रभु ने जगत् के जीवों का कल्याण करने के लिए सद्धर्म का उपदेश दिया। चतुर्विध संघ की स्थापना की।

राजीमती दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प करके संयत एवं विरक्त अवस्था में दिन व्यतीत कर रही थीं। भगवान के प्रथम उपदेश के पश्चात् ही उन्होंने ७०० रमणियों के साथ भागवती दीक्षा धारण की। भगवान् नेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रहे और सात सौ वर्ष संयम-अवस्था में। उनके संघ में अठारह हजार साधु और चालीस हजार साध्वियां दीक्षित हुई।

अन्त में समस्त कर्मों का क्षय करके भगवान् मोक्ष मे पधारे। महासती राजमती ने भी तीव्र तपश्चर्या करके सिद्धि प्राप्त की।

पर्युषण पर्व के इस प्रसंग पर आपने आज चौबीस महापुरुषों का वृत्तान्त सुना। यह वृत्तान्त सिर्फ सुनने को नहीं है। इसे हृदयंगम करके जीवन में उतारना चाहिए। इन महापुरुषों ने जिस पथ पर प्रयाण किया, वही परम कल्याण का पथ है और जो उस पथ पर चलेगा, वही अनन्त एवं अखण्ड शान्ति का लाभ कर सकेगा।

भाइयों, दूसरे लोग 'जन' कहलाते हैं, किन्तु आप 'महाजन' हैं। आप में साधारण जन की अपेक्षा कुछ महत्व होना चाहिए, कुछ विशेष गुण होने चाहिए। आप में ऐसी विशेषताएँ हों जिनके कारण आपका जीवन उज्जवल बन सके और साथ ही दूसरों को भी कुछ सीखने को मिले। आपके जीवन व्यवहार को देखकर ही लोग जैन धर्म की महत्ता का अकन कर लें। इस प्रकार का जीवन बनाने का यही सुन्दर अवसर है। इस महापर्व के प्रकाश में अन्तरतर का अवलोकन करो और हृदय के जिस किसी कोने मे मलीनता हो, उसे शुद्ध भावना के सलिल से धोकर साफ कर दो। ऐसा करोगे तो इस लोक में और परलोक में सुखी बनोगे।

[ नोट'—मुनिराज के इस प्रवचन से प्रभावित होकर श्री रूपचन्दजी मूथा ने सजोडे ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया तथा अनेकों भाइयों और बाइयों ने अनेक प्रकार के व्रत और प्रत्याख्यान अगीकार किये। ]

बेंगलोर (कन्टोन्मेन्ट)<br>
ता० ३१–८–५६<br>
सोमवार

